॥ वन्दे जिनवरम् ॥

लघु गौतम पृच्छा

संग्रह-कर्ता

जैन धर्म के सुप्रसिद्ध-वक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज के गुरु भ्राता मुनि श्री हजारीमलजी महाराज के सुशिष्य वैयावृत्तिक मुनि श्री नाथु लालजी महाराज

प्रकाशक

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम।

तृतीयावृत्ति २००० | मूल्य एक आना | वीराब्द २४६२ वि०सं० १९९२

निवेदन।

प्रिय पाठक! संसार में नाना प्रकार के जीव कर्मों के मारे कष्ट उठाते हैं। उन कष्टों के होने में मुख्य क्या क्या कारण हैं? उनको जानने के लिए गौतम स्वामी ने महावीर प्रभु से प्रश्न किए उन प्रश्नों में से कतिपय प्रश्न यदि सर्व साधारण जन के लिए प्रकाश में आ जावें तो उस से आबालवृद्ध सभी नर नारी एकसा लाभ प्राप्त कर सकें। और उन्हें पढ़ कर, जिन कर्मों के करने से कष्ट प्राप्त होता है उन कर्मों से आप सावधान रह सकें। बस इसी उद्देश को लेकर बालब्रह्मचारी श्री मज्जैनाचार्य पूज्यवर श्री मन्नालालजी महाराज की सम्प्रदायानुयायी प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के गुरु भ्राता पंडित मुनि श्री हजारीमलजी महाराज के सुशिष्य वयोवृद्ध मुनि श्री नथमलजी महाराज ने ग्रंथों में से इस रूप में संग्रह किया। यह संग्रह उक्त मुनि महाराज की कृपा से प्राप्त हुआ उसे प्रकाशित कर पाठकों के हाथ में रख कर आशा रखता है कि इस पढ़ कर आप सब अवश्य लाभ उठावेंगे। पाठकों के लाभार्थ इस पुस्तक में पहिले ग विविध प्रश्नोत्तर बढ़ाये गये हैं।

भवदीय—

मन्त्री श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम

॥ वन्दे वीरम् ॥

लघु गौतम पृच्छा

॥ मङ्गलाचरण ॥

मंगलं भगवान् वीरो; मंगलं गौतम प्रभुः ॥
मंगलं स्थूलभद्राद्यो; जैन धर्मस्तु मंगलम् ॥ १ ॥

पाठकों! कैवल्य ज्ञान के धारक श्री भगवान महावीर स्वामीजी से श्री गौतम स्वामीजी ने विनय पूर्वक प्रश्न किये। उन प्रश्नों में से कुछेक यहां उद्धृत करते हैं।

(१) प्रश्न–हे प्रभो! मनुष्य निर्धन और कंगाल किस पाप के उदय से होता है?

उत्तर–हे गौतम! जिसने दूसरे के धन को चुराया हो, दान देते हुए को मना किया हो वह मनुष्य निर्धन और कंगाल होता है।

(२) प्रश्न-हे भगवन् ! भोग उपभोग की सामग्रियें सभी स्वाधीन होते हुए भी जो मनुष्य उन्हें भोग नहीं सकता यह किस पाप के उदय से ?

उत्तर-हे गौतम ! जो मनुष्य दान पुण्य कर फिर उसका पश्चाताप करता है कि मैंने बहुत बुरा किया है वह नर भोग (वह पदार्थ जो एक बार ही काम में आ सकती हो जैसे भोजन वगैरह) और उपभोग (जो बार बार काम में आ सकती हो जैसे वस्त्र आभूषण वगैरह) की सामग्रियें स्वाधीन होते हुए भी उन्हें भोग नहीं सकता है।

(३) प्रश्न-हे भगवन् ! किसी किसी मनुष्य के सन्तान नहीं होती है यह किस पाप के उदय से ?

उत्तर हे गौतम ! रास्ते पर के हरे भरे वृक्षों को काटने या दूसरों से कटवाने से उस मनुष्य के सन्तान नहीं होती है।

(४) प्रश्न-हे भगवन् ! स्त्री जो बन्ध्या होती है वह किस पाप से होती है।

उत्तर-हे गौतम ! औषधि आदि के द्वारा गर्भ गलाने से या सगर्भा मादा (स्त्री जाति) जानवरों को मारने से स्त्री वंध्या होती है।

(५) प्रश्न-हे भगवन् ! जिस स्त्री के लड़का या लड़की जन्मते ही मर जाता है ऐसी मृत-वंध्या किस पाप के उदय से होती है ?

उत्तर-हे गौतम ! बैंगन और कंद को हंस हंस कर खाने से तथा मुर्गी आदि के अण्डों के पान करने से स्त्री मृत वंध्या होती है।

(६) प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य एक आंख से काना किस पाप से होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जो हरी सब्जी (वनस्पति) को शस्त्र आदि से छेदन भेदन करता है। तथा फल फूल बीज आदि में सूई से छेदन भेदन कर उन्हें धागे में पिरो-कर गजरा हार आदि बनाता है वह मनु-ष्य एक आंख से काना होता है।

(७) प्रश्न-हे भगवन् ! किसी किसी स्त्री के अधुरे गर्भ गिर जाते हैं वह किस पाप से ?

उत्तर-हे गौतम ! वृक्षों के कच्चे फल तोड़ने से और झाड़ों पर पत्थर फेंकने से स्त्रियों के

उत्तर—हे गौतम ! अपने सेठ की चोरी करने से तथा अपने आप ही साहूकार बन दूसरे का धन हड़प कर लेने से मनुष्य बे डीलडौलवाला स्थूल शरीरी होता है।

(१४) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य कुष्ट (कोढ़) रोगवाला किस पाप कर्म के फल से होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! मयूर, सर्प, बिच्छु आदि के मारने से तथा जंगल में दावाग्नि लगा देने से मनुष्य कोढ़ी होता है।

(१५) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य के शरीर में अलग अलग होती हो ऐसी दाहज्वर की बिमारी किस पाप से होती है ?

उत्तर—हे गौतम ! घोड़े बैल आदि पशुओं को भूखे और प्यासे रखने से तथा उन पर हैसियत से अधिक बोझा लाद (भर) देने से दाहज्वर की बिमारी होती है।

(१६) प्रश्न हे भगवन् ! किसी किसी मनुष्य का चित्त भ्रम हो जाता है वह किस पाप से होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! अभिमान करने से तथा मद मांस और गुप्त रीति से अनाचारों का सेवन करने से मनुष्य का चित्त भ्रम हो जाता है।

(११) प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य किस पाप के उदय से बहरा होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जो लुक छिप कर दूसरे की निंदा सुनने में रत रहता हो और कपट युक्त मिठे मिठे शब्द बोल कर दूसरे के हृदय का भेद पा लेने में प्रयत्नशील हो। बस इसी पाप के बोझ से वह मनुष्य बहरा होता है।

(१२) प्रश्न-हे भगवन् ! जो मनुष्य रात दिन आधि व्याधियों से घिरा रहता हो वह किस पाप के उदय से ?

उत्तर-हे गौतम ! वह, पीपल के फलों तथा गुलरों को हँस हँस कर खाने से एवं चूहे आदि जानवरों के पकड़ने के पींजरों एवं फंदों को बेचने से वह मनुष्य दिन रात कुछ न कुछ रोग से घिरा ही रहता है।

(१३)-प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य इतना स्थूल शरीर वाला जो कि किसी प्रकार से अपना शारीरिक कार्य भी अपने हाथों से न कर सके ऐसा बे डौल डोल का शरीर किस पाप से होता है ?

कर्म ही गर्भ गिर जाते हैं ।

(८) प्रश्न–हे भगवन् ! जो जीव गर्भ में तथा योनि के समीप भटक कर मर जाता है वह किस पाप के उदय से ?

उत्तर हे गौतम ! दूसरे के अवगुणावाद बोलने से और झूठ बोलने से तथा निर्दोष आहार पानी के लेनेवाले को सदोष आहार पानी देने से गर्भ में तथा योनि के समीप रुककर जीव मर जाता है । फिर उसके शरीर का शस्त्रादि से काट काट कर बाहिर निकालते हैं ।

(९) प्रश्न–हे भगवन् ! मनुष्य किस पाप से अन्धा होता है ।

उत्तर–हे गौतम ! शहद के छत्ते के नीचे धूम वगैरह का प्रयोग करता हुआ मक्खियों को जलाकर छत्ता गिरा देने से मनुष्य अंधा होता है ।

(१०) प्रश्न–हे भगवन् ! मनुष्य किस पाप के उदय से गूंगा होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! छिद्रान्वेषी बन कर जो देव, गुरु की निन्दा करता है वह मनुष्य गूंगा होता है ।

(१७) प्रश्न–हे भगवन् ! मनुष्य के पत्थरी की व्याधि किस पाप से होती है ?

उत्तर–हे गौतम ! जो मनुष्य पुत्री, बहन, माता, मासी आदि कह कर उनके साथ गुप्त-रीति से व्यभिचार सेवन करता है उसके पत्थरी की बिमारी होती है।

(१८) प्रश्न–हे भगवन् ! स्त्री, पुरुष, पुत्र, पुत्री और शिष्य आदि किस पाप के फल स्वरूप में कुपात्र होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! निष्कारण ही सगे स्नेहियों के साथ या दूसरे मनुष्यों के बीच में बैर को खड़ा कर देते हैं अथवा बढ़ा देते हैं वे कुपात्र होते हैं।

(१९) प्रश्न- हे भगवन् ! मनुष्य के बडे ही लाड़ प्यार मे से पाला पोषा हुआ पुत्र युवावस्था ही में मर जाता है वह किस पापोदय से ?

उत्तर–हे गौतम ! दूसरों की रखी हुई अमानत को हड़प कर जाने से पाला पोषा हुवा पुत्र मर जाता है

उत्तर—हे गौतम ! अपने सेठ की चोरी करने से तथा अपने आप ही साहुकार बन दूसरे का धन हड़प कर लेने से मनुष्य बे डीलडौलवाला स्थूल शरीरी होता है।

(१४) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य कुष्ट (कोढ़) रोग-वाला किस पाप कर्म के फल से होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! मयूर, सर्प, बिच्छू आदि के मारने से तथा जंगल में दावाग्नि लगा देने से मनुष्य कोढ़ी होता है।

(१५) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य के शरीर में जलन जलन होती हो ऐसी दाहज्वर की बिमारी किस पाप से होती है ?

उत्तर—हे गौतम ! घोड़े बैल आदि पशुओं को भूखे और प्यासे रखने से तथा उन पर हैसियत से अधिक बोझा लाद (भर) देने से दाहज्वर की बिमारी होती है।

(१६) प्रश्न हे भगवन् ! किसी किसी मनुष्य का चित्त भ्रम हो जाता है वह किस पाप से होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! अभिमान करने से तथा मद्य मांस और गुप्त रीति से अनाचारों का सेवन करने से मनुष्य का चित्त भ्रम हो जाता है।

से अनेच्छा पूर्वक शील को पालन करती है वह स्त्री मर कर वैश्या होती है । फिर चाहे वह स्वर्ग में भी जावे तो उसी श्रेणी की देवियों में ही उत्पन्न होती है । अगर वह विधवा स्त्री इच्छा पूर्वक शील पाले तो इह लोक परलोक दोनों सुधरे ।

(२३) प्रश्न—हे भगवन् ! किसी मनुष्य की अल्प समय में ही स्त्रियां मर जाया करती है। इसका क्या कारण है । ?

उत्तर--हे गौतम ! जिस मनुष्य ने लिये हुए त्याग नियमों का भंग किया हो तथा चरती हुई गौ को जोरों से मारी हो उस मनुष्य की स्त्रियां थोड़े-थोड़े समय में ही मर जाया करती हैं ।

(२४) प्रश्न--हे भगवन् ! मनुष्य काला कुवर्ण किस पाप से होता है ?

उत्तर--हे गौतम ! जो मनुष्य कोतवाल होकर द्रव्यादि की लालसा से लोगों से कहे कि तुम अमुक सरकार के गुनहगार हो ऐसे झूँठे इलजाम उनके सिर लगा के उनके मार्मिक स्थान एवं हाथ, पांव, नाक, कान आदि अवयवों को छेदन भेदन किया हो

(२०) प्रश्न–हे भगवन्! मनुष्य के पेट का रोग किस पाप से होता है ?

उत्तर–हे गौतम! पंच महाव्रतधारी मुनि को नीरस और असाताकारी आहारादि देने से मनुष्य के पेट में रोग उत्पन्न होता है।

(२१) प्रश्न–हे भगवन्! कोई कोई स्त्री बाल विधवा हो जाती है वह किस पाप से होती है ?

उत्तर–हे गौतम! अपने आप को तो सती कहलाती है पर अपने पति का पूरा २ अपमान करने में राई रति भर भी कोर कसर नहीं रखती है। कपट तो उसके जीवन के साथ साथी होकर रहता है और पर पुरुष के साथ व्यभिचार सेवन में वह कभी चूकती भी नहीं है वही स्त्री बाल विधवा होती है ?

(२२) प्रश्न–हे भगवन्! वेश्या किस पाप कर्म के फल स्वरूप में होती है ? ।

उत्तर–हे गौतम! उत्तम कुल की विधवा स्त्री के दिल में विषय भोग सेवन करने की तीव्र अभिलाषा होते हुए भी वह अपने माता पिता, सासु, श्वसुर, पीयर, सासरे की लज्जा

प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति में बाधा आ खड़ी होती है।

(२८) प्रश्न–हे भगवन् ! नपुन्सक किस पाप से होता है?

उत्तर–हे गौतम ! जो बैल, घोड़े, मनुष्य आदि के अंडकोषों को शस्त्र पत्थर आदि से छेदन भेदन करता हो तथा औषधि आदि के द्वारा मर्द को नामर्द (नपुन्सक) बनाता हो अथवा कपट सेवन करने में चूर चूर रहता हो बस वही नपुन्सक होता है।

(२९) प्रश्न--हे भगवन् ! मनुष्य मर कर नरक में किस पाप कर्म के उदय से जाता है?

उत्तर- हे गौतम ! जूँआ खेलने से, मांस खाने से, मदिरा पीने से, वैश्या और पर स्त्री गमन करने से, शिकार और चोरी करने से मनुष्य नरक में जाता है।

(३०) प्रश्न–हे भगवन् ! लक्ष्मीवान् किस पुण्य के फल स्वरूप होता है?

उत्तर–हे गौतम ! सुपात्र (मुनि) पात्र (श्रावक अल्पपात्र (सम्यक्दर्शी) आदि को साताकारी आहार पानी देने से तथा अनाथ, दीन अनाश्रितों को समय-समय पर उचित दान देने से मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है।

तथा जिसने अपने शरीर के सुन्दर रूप का अभिमान किया हो वह काला कुरूप काला मनुष्य होता है।

(२५) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य के शरीर में कीड़े किस पाप से पड़ जाते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस मनुष्य ने मच्छी, केकड़े आदि मूक जीवों को त्रास पूर्वक मार कर खूब खाया हो उस मनुष्य के शरीर में कीड़े पड़ जाया करते हैं।

(२६) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य या स्त्री पर मिथ्या कलंक किस पाप से आता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिसने दूसर के सिर पर जैसा मिथ्या कलंक दिया हो वैसा ही मिथ्या कलंक उस मनुष्य या स्त्री के सिर पर भी आता है।

(२७) प्रश्न—हे भगवन् ! कोई भी रोजी आदि की प्राप्ति में बाधा (विघ्न) आकर खड़ी होती है वह किस पाप से होती है ?

उत्तर—हे गौतम ! अन्य जीवों को भोगोपभोग की सामग्रियां मिलती हों उनमें रोड़े अटका दिये हों तथा रोजी एवं व्यापार आदि में भी बाधा खड़ी कर दी हो उस मनुष्य के

मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को प्राप्त करता है ।

(३५) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य को दुखःमयी दीर्घ जीवन किस दुर्भाग्य से मिलता है ?

उत्तर—हे गौतम चलते फिरते त्रस जीवों की हिंसा करने से, मिथ्या भाषण करने से और मुनि को असाताकारी आहार पानी देने से मनुष्य को दुखःमयी दीर्घ जीवन मिलता है ।

(३६) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य को सुखमयी दीर्घ जीवन किस पुण्य-फल से मिलता है ?

उत्तर—हे गौतम ! त्रस जीवों की रक्षा करने से, सत्य भाषण करने से, और मुनियों को निर्दोष साताकारी आहार पानी देने से सुखमयी दीर्घ जीवन मनुष्य को मिलता है ।

(३७) प्रश्न—हे भगवन् ! बहुत ऐसे मनुष्य हैं जिनको भय होता ही नहीं है वह किस पुण्योदय के फल स्वरूप ?

उत्तर—हे गौतम ! भय से भयभीत जीवों को निर्भयी किये हों अर्थात् अभयदान दिया हो ।

(३८) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य ताकतवान किन शुभ कर्मों से होता है ?

(२१) प्रश्न—हे भगवन् ! जिस मनुष्य के सत्य कहने पर भी उसके वचनों पर कोई विश्वास नहीं रखता है इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस मनुष्य ने झूँठी गवाह (साक्षी) दी हो उस पाप के फल स्वरूप उसके वचनों को न तो कोई सत्य ही समझता है। और न उसके वचनों पर कोई विश्वास ही रखता है।

(२२) प्रश्न—हे भगवन् ! मनोच्छित भोगोपभोग की सामग्रियाँ किस पुण्योदय से मिलती है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस मनुष्य ने भूत दया वगैरह परोपकार खूब ही किया हो उस मनुष्य को मनोच्छित भोग मिलते हैं।

(२३) प्रश्न हे भगवन् ! सुंदर रूप, लावण्य, चातुर्यता आदि की प्राप्ति किस शुभकरणी से होती है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिनाज्ञा पूर्वक जिसने ब्रह्मचर्य पाला है और तपस्या की हो वह सुंदर रूप सम्पदादि पाता है।

(२४) प्रश्न—हे भगवन् ! स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति किस से होती है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस मनुष्य ने सम्यक् प्रकार से तप संयम की आराधना की हो वह

उत्तर-हे गौतम ! जाति अहङ्कार करने से नीच जाति में पैदा होता है।

(४३) प्रश्न-हे भगवन् ! हीन कुल में किस पाप से पैदा होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! कुल का अहंकार करने से कुल हीन होता है।

(४४) प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य किस पाप से दुर्बल होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! बल का घमण्ड करने से दुर्बल होता है।

(४५) प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य जन्म किस करणी से मिलता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जो जीव प्रकृति का विनीत हो, भद्रिक हो, अमात्सर्य भावी हो और विषम वाद करके रहित हो वह जीव मनुष्य जन्म पाता है।

(४६) प्रश्न-हे भगवन् ! किसी मनुष्य के एक पैसे की भी आमदनी न होती हो वह किस पाप कर्म से ?

उत्तर-हे गौतम ! पैसे की खूब आमदनी देखकर जिसने घमण्ड किया हो उसे विशेष आर्थिक प्राप्ति नहीं होती है।

उत्तर—हे गौतम ! जिसने वृद्ध, तपस्वी और व्याधि वाला की वैयावृत्य (सेवा) खूब ही जी तोड़ कर की हो वह मनुष्य बलवान होता है।

(३६) प्रश्न—हे भगवन् ! जिस के वचनों में मधुरता टपकती हो सभी उसके वचनों को सुन कर आनन्द मानते है वह किस शुभ कर्म के फल स्वरूप ?

उत्तर—हे गौतम ! सारे जीवन में जिसने सत्य भाषण का ही प्रयोग किया हो वह प्रिय वचनी होता है। उसके वचन श्रवण कर आनान्दित होते हैं।

(४०) प्रश्न-हे भगवन् ! कोई मनुष्य ऐसा होता है जो सभी का वल्लभ लगता है इस का क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिसने खूब ही धर्म आराधना की हो वह मनुष्य सभी को वल्लभ होता है।

(४१) प्रश्न—हे भगवन् ! सर्व मान्य किस कारण से होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! पर हित कार्य करने से सर्व प्रिय होता है।

(४२) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य नीच जाति में किस पाप से पैदा होता है ?

सार्वभौम नरेन्द्र हूं इस प्रकार ऐश्वर्यता का घमंड करने से मनुष्य को चाकर पना (दासवृति) प्राप्त होती है।

(५०) प्रश्न–हे भगवन् ! सुर, असुर, देव, दानव इन्द्र और नरेन्द्रों के द्वारा मनुष्य पूजनिक किन शुभ कामों से होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! जिसने मन, वचन और काया मे शुद्ध भावनापूर्वक अखड ब्रह्मचर्य पाला हो वह मनुष्य इन्द्र नरेन्द्रों के द्वारा पूजनीय होता है ?

(५१) प्रश्न–हे भगवन् ! चौदह पूर्व का सार क्या है ?

उत्तर- हे गौतम ! चौदह पूर्व का सार नमस्कार मंत्र है

(५२) प्रश्न -हे भगवन्। बाल वय ही में माता पिता किस पापोदय से मरते है ?

उत्तर--हे गौतम ! मनुष्य पशु आदि के छोटे२ बच्चों के माता पिताओं को मारने वाले प्राणी के बचपन में ही माता पिता मर जाते हैं।

(५३) प्रश्न--हे भगवन् ! स्त्री पुरुष के परस्पर विरोध भाव किस कारण से होता है ?

उत्तर--हे गौतम ! पूर्व भव में स्त्री भर्तार के परस्पर का प्रेम-भाव तुढा देने से वैर विरोध होता है।

(५४) प्रश्न--हे भगवन् ! मनुष्य पंगुला किस पाप से होता है ?

(४७) प्रश्न–हे भगवन् ! किसी मनुष्य को व्रत उपवास करने में महान् कष्ट होता है जिससे उपवास व्रत एकासना आदि उससे बिलकुल बने नहीं आते इसका क्या कारण है ?

उत्तर–हे गौतम ! तपस्या का घमण्ड करने से अर्थात् ऐसा विचार करे कि मेरे सात सात और आठ आठ रोज की तपस्या वा उपवास कैसे निकलती है। मेरे लिए तपस्या करना बड़ा ही सरल है। दूसरे के लिए उपवास तक करना कठिन है। मेरे सामने दूसरा क्या तपस्या कर सकता है ? इस प्रकार का घमण्ड करने से उससे तपस्या नहीं होती है।

(४८) प्रश्न–हे भगवन् ! सूत्र सिद्धान्तों का ज्ञान महान् परिश्रम के साथ अभ्यास करने पर भी प्राप्त नहीं होता है इसका क्या कारण ?

उत्तर–हे गौतम ! जिसने मनुष्य से सिद्धान्तों का ज्ञान अध्ययन कर घमण्ड किया हो उस मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

(४९) प्रश्न–हे भगवन् ! मनुष्य चाकरपने में किस पाप से पैदा होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! ऐश्वर्यता का अभिमान् मैं भरतपति हूं, मैं छत्रपति हूं, मैं पृथ्वीपति हूं मैं

से नहीं देखे हों वे भंजर होते हैं।

(५६) प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य 'वावन' (छोटे कद का) किस पाप के फल से होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस मनुष्य ने पूर्व भव में अपने शरीर का अभिमान किया हो वह मनुष्य बावना होता है।

(६०) प्रश्न—हे प्रभो ! शरीर में भगंदर रोग किस पाप के फल स्वरूप में होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जो पूर्व भव में पंचेन्द्रिय जीवों के प्राण हरण करता है। उसके शरीर में भगंदर रोग उत्पन्न होता है।

(६१) प्रश्न-हे प्रभो ! कंठमाला का रोग किस पाप के फल से होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जो पूर्व भव में मछलियों का शिकार करता है उसे कंठमाला का रोग होता है।

(६२) प्रश्न-हे प्रभो ! पथरी का रोग किस कारण से होता है ?

उत्तर- जो पूर्व भव में परस्त्री के साथ मैथुन सेवन करता है। वह पथरी रोग का शिकार होता है।

(६३) प्रश्न हे प्रभो ! नारू (वाला) किस पाप के फल

उत्तर—हे गौतम ! पैरों से प्राणधारी जीवों को मसल (कुचल) कर मार देने से जीव पंगुला होता है।

(५५) प्रश्न–हे भगवन् ! मनुष्य के फोड़े फुँसी आदि किस पाप से होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! फलों के अन्दर मसाले भर भर कर अचार किये हों तथा उन्हें चूस चूस कर के हँस हँस कर खाये हों उस मनुष्य के फोड़े फुंसी होते हैं।

(५६) प्रश्न–हे भगवन् ! करोड़ों रुपये की सम्पत्ति पाकर के भी उसके द्वारा सुख नहीं भोग सकता इसका क्या कारण है ?

उत्तर–हे गौतम ! जिसने दान देकर पश्चाताप किया हो वह सम्पत्ति मिलने पर भी सुख नहीं भोग सकता।

(५७) प्रश्न–हे भगवन् ! अनायास लक्ष्मी की प्राप्ति किस पुण्य से होती है ?

उत्तर हे गौतम ! शुद्ध दान देने से अनायास अखूट लक्ष्मी मिलती है।

(५८) प्रश्न–हे भगवन् ! मनुष्य आंखों से अन्धा किस पाप के फल से होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! जिसने पूर्व भव में सबको समदृष्टि

पापस्थान मिथ्यात्व दर्शन शल्य का सेवन बारंबार करता हो देव गुरु धर्म को न मान कर उपट चला हो, उसके सिर झूठा कलंक लगता है।

(६८) प्रश्न हे भगवन् ! मनुष्य को अत्यधिक निद्रा किस पाप के फल से आती है ?

उत्तर-हे गौतम ! जो पूर्व भव में मदिरा पान करता है उसे नींद अधिक लगती है।

(६९) प्रश्न-हे भगवन् ! जीव को अधिक रोग किस कारण से प्राप्त होते हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! जो जीव पूर्व भव में अनन्तकाय कंदों का आहार खुश होकर करता है, वह अधिक रोग ग्रस्त होता है।

(७०) प्रश्न-हे भगवन् ! कोई जीव संसारी जीवों को तथा माता पिताओं को प्रिय नहीं लगता है, वह किस पाप के उदय से ?

उत्तर-हे गौतम ! जो मनुष्य पूर्व भव में विकलेंद्रिय (कीड़े आदि) जीवों को हनन करते हैं वह अप्रिय मालूम होते हैं।

(७१) प्रश्न-हे भगवन् तरुण पुरुषों को स्त्री का वियोग किस पाप के फल से होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! जिस पुरुष ने पूर्व भव में बला-

रूप होता है ?

उत्तर-जो जो जीव बिना छना जल पीते हैं उन्हें नारू उत्पन्न होता है।

(६४) प्रश्न-हे भगवन्! शरीर में प्रत्यक्ष कोई रोग न दिखाई दे। परन्तु जीव अनेकों दुःखों से दुःखित रहता है। यह किस पाप के फल रूप में होता है?

उत्तर-जो जीव घूंस (रिश्वत) खाकर सच्चे को झूँठा बनाता है। उसे यह दुःख होता है।

(६५) प्रश्न-शरीर काला कुरूप किस पाप से होता है?

उत्तर-जिसमें पूर्व भव में अनेक फल बीजादि तोड़ कर उनसे अपना रूप सुंदर बनाया हो वह कुरूप होता है।

(६६) प्रश्न-हे प्रभो! कोई २ जीव बहुत ही मीठे बोलते हैं परन्तु वह कटु मालूम होता है। यह किस पाप कर्म के उदय से?

उत्तर-हे गौतम! जिसने पूर्व भव में पंचेन्द्रियादि जीवों का भक्षण किया हो उसको मिष्ट भाषा भी अप्रिय मालूम होती है।

(६७) प्रश्न-हे भगवन्! मनुष्य के सिर झूँठा कलंक किस पाप के फल स्वरूप लगता है?

उत्तर-हे गौतम! जो मनुष्य पूर्व भव में अठारह भी

स्वार पूर्वक कदर्प (काम भोग) सवन किया हो। वह तरुणाई में स्त्री का वियोग प्राप्त करता है।

(७२) प्रश्न–हे भगवन् ! तरुणावस्था में स्त्री का पति का वियोग क्यों होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! जो स्त्री पुरुष सयोग की वशीकर आदि औषधियां करती है वह पति वियोग को प्राप्त होती है।

(७३) प्रश्न–हे भगवन् ! नासुर रोग किस पाप के फल से होता है ?

उत्तर–हे गौतम ! पूर्व भव में कसाई का कर्म करने से नासुर रोग की उत्पत्ति होती है।

(७४) प्रश्न–हे भगवन ! शरीर में १६ रोग एक ही साथ किस पाप से होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जिसने बहुत से ग्राम नगरों को जलाये हों वह एक ही साथ १६ रोगों का शिकार होता है।

(७५) प्रश्न–हे भगवन ! अनेक मनुष्यों को फांसी पर लटकना पड़ता है। यह किस पाप के फल से ?

उत्तर–जिसने पूर्व भव में असपर आमों का बहुत मारें हों वे फांसी की सजा पाते हैं।

पुष्प नं० १७

उदयपुर में—

जैन धर्म्म के सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित महा मुनि

श्री चौथमल्लजी महाराज से हिन्दू कुल सूर्य

श्रीमान् महारानाजी साहिब व श्रीमान्

महाराज कुँमार की भेंट और

धर्म्मोपदेश.

लेखक

साहित्य प्रेमी पण्डित मुनि श्रीप्यारचन्दजी

महाराज.

प्रकाशक

श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति

रतलाम, [मालवा]

श्री जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस रतलाम, सी आई.

पुष्प नं० १७

उदयपुर में-

जैन धर्म्म के सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित महा मुनि

श्रीचौथमल्लजी महाराज से हिन्दू कुल सूर्य

श्रीमान् महारानाजी साहिब व श्रीमान्

महाराज कुँमार की भेंट और

धर्म्मोपदेश.

लेखक

साहित्य प्रेमी पण्डित मुनि श्रीप्यारचन्दजी

महाराज.

प्रकाशक

श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति

रतलाम, [मालवा]

श्री जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस रतलाम, सी आई.

इस संस्था के जन्म दाता

श्रीमान् प्रसिद्ध वक्ता पंडित
मुनि श्री १००८ श्री
चौथमलजी महाराज

इस संस्था के स्तंभ

राय बहादुर श्रीमान् सेठ
कुन्दनमलजी लालचंदजी सा
ब्यावर

पुष्प नं० १७

उदयपुर में-

जैन धर्म्म के सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित महा मुनि
श्रीचौथमल्लजी महाराज से हिन्दू कुल सूर्य्य
श्रीमान् महारानाजी साहिब व श्रीमान्
महाराज कुँमार की भेंट और

धर्म्मोपदेश.

लेखक
साहित्य प्रेमी पण्डित मुनि श्रीप्यारचन्दजी
महाराज.

प्रकाशक
श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम, [मालवा]

सर्वाधिकार-सुरक्षित वीराब्द २४५२ | मूल्य ≡,॥ | तृतीयावृत्ति २००० विक्रम सं० १९८३

प्रकाशक–
मास्टर मिश्रीमल
श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम

मुद्रकः–
मैनेजर लक्ष्मीचन्द्र सनीतमाला
जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस
रतलाम (मालवा)

भूमिका

**** यों तो इस छोटे से निबन्ध की भूमिका ही क्या हो सकती है परन्तु इस में जो बातें लिखी गई हैं वे बड़े ही महत्त्व की हैं।

हाँ तो, इस पुस्तक में क्या बातें लिखीं गई हैं ? इस में वे ही बातें लिखीं गई हैं, जो सर्वस्व त्यागी एवम् प्रसिद्ध व्याख्यान दाता महामुनि श्रीमान् चौथमलजी महाराज का हिन्दू गौरवादर्श छत्रपति वर्तमान् मेवाड़ाधिपति श्री १०८ श्री महाराजाधिराज श्रीमान् महारानाजी साहिब बहादुर और परम दयालु उदार हृदय उनके युवराज महोदय श्रीमान् महाराज कुँमार बापजी श्री श्री १०५ श्री सर श्री भूपालसिंहजी के सी आई. ई, ने राजोचित भक्ति-भाव पूर्वक स्वागत करके अपनी असीम श्रद्धा के साथ उपदेश श्रवण किया था।

सब से महत्त्व की बात तो वाचक वर्ग इस में यह देखेंगे कि सत्ययुग में एक अच्छे से महर्षि का अपनी मर्यादा में स्थित रहने वाले सच्चे एवम् नरपुगव नरेशों द्वारा जैसा अपूर्व सम्मान होना आर्षग्रन्थों में लिखा मिलता है, उसका ज्वलन्त उदाहरण यहाँ आप लोगों की आँखों के सामने विद्यमान है।

साथ में प्रिय पाठकों से निवेदन है कि सशोधन करने वाले की या प्रेस वालों की दृष्टि दोष से कोई अशुद्धि रह गई हो तो सुधार कर पढ़ें।

भवदीय

मास्टर मिश्रीमल

———

धर्मोपदेश

। जो दृढ रक्खे धर्मको, तिहि रक्खे करतार ।

श्रीमान हिन्दू कुलसूर्य श्री १०८ श्री हिज हाईनेस
महा राजाधिराज महाराना साहिब

चित्र परिचय

इस में पहिला चित्र नरेन्द्र मुकुट मणि, छत्रपति, हिन्दूकुल सूर्य श्री श्री १०८ श्री हिज हाइनेस हि महाराजाधिराज महाराना साहिब श्रीमान् सर फतहसिंहजी बहादुर जी सी. एस आई. जी सी आई. ई, जी सी वही ओ वर्तमान मेदपाटेश्वर का है।

आप के घराने और वंश परिपाटी का परिचय देना अनावश्यक है। इस लिये कि, इस महिमण्डल का कोई देश ऐसा नहीं है जिस को इस घराने की वीरगाथा का पता न हो। कृतयुग और त्रेता के हरिश्चन्द्र और रामकी कथाओं को जाने दीजिए, कलि-युग में होने वाले महारानाओं का इतिहास ही बहुत है। बल्कि तीन सौ वर्ष पूर्व की महाराना प्रताप की जीवनी ही ऐसी है कि, जो गगन चुम्बी राजप्रासादों से लेकर गरीब की कुटीर तक में विद्यमान है। कौन ऐसा हृदयहीन अभागा है जो इन रघुवंशियों का मुसलमान बादशाहों को बेटी नहीं देने की बातको न जानता हो। जिसको थोड़ा भी इतिहास का ज्ञान होगा वह मेवाड़ के इतिहास से अवश्य ही परिचित होगा। इस राज्य का राज्यचिन्ह ही ऐसाहै कि, जिसको पढ़ने मात्रसे इसका परिचय पाजाता है।
... के राज्यचिन्ह में गर्वोक्ति छुनक नहीं गई है। अहा! कितना आदर्श है ' जो दृढ रक्खे धर्म को तिहि रक्खे करतार "
... को कोइ राजाचिन्ह नहीं कहेगा। किन्तु स्वर्गीय

चित्र परिचय

इस में पहिला चित्र नरेन्द्र मुकुट मणि, छत्रपति, हिन्दूकुल सूर्य श्री श्री १०८ श्री हिज हाइनेस हि महाराजाधिराज महाराना साहिब श्रीमान् सर फतहसिंहजी बहादुर जी सी. एस आई., जी सी आई. ई जी सी व्ही ओ वर्तमान मेदपाटेश्वर का है।

आप के घराने और वश परिपाटी का परिचय देना अनावश्यक है। इस लिये कि, इस महिमण्डल का कोई देश ऐसा नहीं है जिस को इस घराने की वीरगाथा का पता न हो। कृतयुग और त्रेता के हरिश्चन्द्र और रामकी कथाओं को जाने दीजिए, कलि-युग में होने वाले महारानाओं का इतिहास ही बहुत है। बल्कि तीन सौ वर्ष पूर्व की महाराना प्रताप की जीवनी ही ऐसी है कि, जो गगन चुम्बी राजप्रासादों से लेकर गरीब की कुटीर तक में विद्यमान है। कौन ऐसा हृदयहीन अभागा है जो इन रघुवंशियों का मुसलमान बादशाहों को बेटी नहीं देने की बातको न जानता हो। जिसको थोड़ा भी इतिहास का ज्ञान होगा वह मेवाड़ के इतिहास से अवश्य ही परिचित होगा। इस राज्य का राज्यचिन्ह ही ऐसाहै कि, जिसको पढने मात्रसे इसका परिचय पाजाता है। यहाँ के राज्यचिन्ह में गर्वोक्ति छूतक नहीं गई है। अहा! कितना ऊंचा आदर्श है ' जो दृढ रक्खे धर्म्म को, तिहि रक्खे करतार " इस राजाचिन्ह को कोइ राजाचिन्ह नहीं कहेगा। किन्तु स्वर्गीय

चिन्ह कहेगा। इस राज्य में सब ही धर्मानुयायियों को यथोचित मान दिया जाता है।

वर्तमान् महाराणा साहिब भी अपने पूर्वजों के अनुसार ही धर्म धुरीण और वीरकेसरी हैं। आप के राज्य में कभी किसी को कोई कष्ट न हुआ। आप के राज्य शासन को रामराज्य की समता देवी जाय तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। आप सोलह बत्तीस वीर उमरावों से सुशोभित हैं। जैसे कि वासुदेव श्री कृष्णचन्द्र महाराज सोलह हजार मुकुट बन्द राजाओं से और बत्तीस हजार द्वितीय श्रेणी के सरदारों से सुशोभित थे। उस से बढ़कर तो आपका न्यायगत चरित है। आप का चरित्र निष्कलंक और उदार है। आप की वीरता धीरता शान्ति एवं आत्मोत्सर्ग अन्य नरेशों के लिये अनुकरणीय है। आप [illegible] की तो प्रतिमूर्ति हैं। आप। दुर्व्यसन भी आप के कोई छूता नहीं है। राज्य कार्य्य की चतुरता भी आपकी प्रशंसनीय है। आप पक्षपात रहित हो कर न्याय शासन करते हैं। आप के समय में बड़े बड़े बन उपवन तड़ागादि की रचना हुई। कई नवीन न्यायालयों चिकित्सालयों और विद्यालयों का उद्घाटन हुआ। उदयपुर चित्तौड़ रेलवे भी आप ही के समय में जारी हुई। आप धर्म नीति की प्रथम पताका हैं।

इस के कई अद्भुत और अनूठे उदाहरण विद्यमान हैं परन्तु विस्तारभय से यहां नहीं दिये गए हैं केवल एक ही उदाहरण पाठकों के आगे रख देना ही पर्याप्त होगा।

एकबार जब आप दौरे में थे और आप का शिविर भयानक जंगलों में लगा हुआ था। उस समय एक दिन दो पहर को जब आप के भोजन परोसा गया और आपने जीमने के लिये हाथ बढ़ाया

ही था कि, कई फर्यादी आ उपस्थित हुए और पुकार २ कर कहने लगे—तीन सौ चार सौ लुटेरे हमारी गौएँ और वस्त्र हरण कर ले गए हैं। महारानाजी हमें बचाइये" महारानाजी साहिब ने भोजन से हाथ खींच लिया और स्वयम् लुटेरों से गौएँ छुड़ाने के लिए जाने लगे। उस समय अनुगामी शूर सामन्तों ने प्रार्थना की कि, अन्नदाताजी! हजूर क्यों कष्ट उठाते हैं? यह तो छोटा सा कार्य है हम ही पूरा कर सकेंगे। ऐसा कहकर वे शूर सामन्त शीघ्र ही लुटेरों का पीछा करने को चले गए। महाराना साहिब ने फरमाया—" गौएँ छुड़ाने की खबर न आएगी! तब तक भोजन न करेंगे" तदनुसार ही गौए छुड़ाने की सूचना जब तक प्राप्त नहीं हुई तब तक महाराना साहिब ने भोजन नहीं किया था धन्य है आपकी दयालुता और धर्म रक्षकता को।

हमारी भी महाराना साहिब के प्रति यही भावना है कि, आप की रुचि धर्म में उत्तरोत्तर बढती रहे और आप अपनी पुत्रवत् प्रजा का पालन करते रहें।

दूसरा चित्र श्रीमन्त महाराना साहिब के सुयोग्य पुत्र रत्न युवराज महोदय श्रीमान्, महाराज कुमार सर भूपालसिंहजी बहादुर के सी आई ई, का है।

आप भी अपनी वंशपरपरा के अनुसार वीरता, धीरता और प्रजा वत्सलयता आदि अनेक शुभ गुणों से अलकृत है। कोई २ गुण सब में ही बढी हुई मात्रा में होता है, इसी प्रकार आप में भी उदारता का गुण सब से बढकर है। आप दयालुता की सौम्य मूर्ति हैं। आप के द्वारा यदि किसी का भला होना हो तो आप अपने मुख से कभी भी नकार का उच्चारण नहीं करते हैं।

सौधर्मगच्छीयहुकमीचन्द्रजिन्सूरीश्वरेभ्यो नमः ।

धर्मोपदेश

❀ मङ्गलाचरण ❀

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्
धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधाना-
द्व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ १ ॥

✻ प्रस्तावना ✻

प्रिय पाठक ! आप जानते हैं कि " परोपकाराय सतां विभूतय " इस उक्ति के अनुसार साधु सन्तोंका जन्म संसार में परोपकार के लिए ही होता है और उनका चरित्र तुलसीजी के शब्दों में- " साधु चरित शुभ सरिस कपासू । निरसविशद गुण-मय फल जासू ॥ जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा । वन्दनीय जेहि जग जस पावा " ॥ है । क्योंकि इन के कर्म बहुत उच्च होते हैं । जैसे-" सन्त विटप सरिता गिरि धरनी, परहित हेत

हृदय की करनी"। सन्तों का हृदय भी बहुत कोमल होता है। शायद तुलसीदासजी सन्तों के हृदय को अनुभव की कसौटी पर कस कर यह कह सकते हैं। सामने भी अपना सीना तान रहे हैं। वे कहते हैं-

"सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहा न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता, पर दुख द्रव सो संत पुनीता॥

वे इसी करुणा हृदय को साथ लेकर परोपकार के पथ का अनुसरण करते हुए, सर्वत्र बिना सवारी शहर और गाँवों में पैदल ही पर्यटन कर जनता को सदुपदेश देते फिरते हैं। और अपनी पीयूष वर्षिणी वाणी द्वारा अत्याचारों को रोकते हैं।

इस कथनकी सत्यता के लिए "आदर्श मुनि" नामक पुस्तक पढ़िये जिस में मुनि श्रीचौथमलजी महाराज का अमौलिक का जीवन चरित्र सविस्तार दिया हुआ है उस के पूरे ५२० [पाच सौ पचास] पृष्ठ इस बातकी साक्षी दे रहे हैं कि हमारे मुनिवर ने कहाँ कहाँ परिभ्रमण कर जनता का क्या २ उपकार पहुँचाया है और उस पढ़ कर सुनकर, प्रत्येक धर्म-प्रेमी अपना जीवन सुधार कर जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने का कुछ न कुछ उपाय दूँढ़ ही निकालता है।

यही हमारे मुनिवर श्री इस देश की दिशा-विदिशाओं के कई स्थलों में पर्यटन कर के अपनी असीम और अद्भुत पर-उपकार की सरिता बहाते हुए तारीख ११-१२ १६५२ ई० को चौदह शिष्यों की मण्डली सहित हम्पपुर पधारे। यहाँ की जनता (क्या जैन और क्या जैनतर) सब ही बिरह से मुनि

श्री के उपदेशों को सुन ने के लिए, अत्यन्त लालायित हो रही थी। क्योंकि, आप का जो उपदेश व भाषण होता है वह सर्व-प्रिय और सार्वजनिक होता है। जिस के लिए किसी जैनेतर कवि ने कहा है—

कवित।

काम क्रोध लोभ मोह सकल विनाशन को,
अमल अनूप ज्योति पुण्य प्रगटानी है।
व्यास वालमीक शुक नारदादि शारद पै,
पावन पुनीत नहीं जात सो बखानी है।
महाभव अन्धकार पुंज को विदारि कर,
दार्शनिक गौतम की धर्म नीति आनी है।
ऋषिराज मुनिराज चौथमल जू की अस,
जग वशकरनी निर्वानप्रद वाणी है॥

जिस समय पब्लिक में आप अपनी वक्तृता देने को उपस्थित होते हैं उस समय जनता अपने हर्षोल्लास में जय घोषणा करके नभ मण्डल को निनादित कर देती है। और ज्यों ही आप अपने भाव का गंभीर शब्दों में अभिभाषण आरंभ करते हैं जनता में सन्नाटा छा जाता है। आप धर्म रण भूमि के महारथी हैं। आप की गंभीर गर्जना से पापियों के हृदय दहल उठते हैं आपकी वाणी में सत्य का सुन्दर आलोक विलसित होता है। आप जहाँ विरा-

जन है यहाँ धर्म का पवित्र धारा प्रबल रूप से बहा करती है। और दया का अन्तस्पर्शी समुद्र कल्लोल करता हुआ उमड़ पड़ता है। आप के साम्य भाव में अखण्ड शान्ति का साम्राज्य रहता है। जैन वैष्णव मुसलिम क्रिश्चियन सब ही आप के भाषण को आदर सहित सुनते उस समय कोई किसी भी धार्मिक विचार का महत्व-पूर्ण आवश्यकीय कार्य पर क्यों न जा रहा हो एक बार तो यह वहाँ ठहर ही जाता है। और फिर उस के ठहर जाने पर वह अपने हृदय गत प्रस्थानित कार्य के महत्व को भूल कर उतने समय के लिए यह वहाँ से चलना उचित नहीं समझता जहाँ तक कि वह आप के भाषण के अन्तिम शब्दों का रसास्वादन न कर ले। इस के बयान में किसी कवि ने कहा है।

कवित।

वृन्द वनितान के, वितान तर सोहत हैं,
रस पल मानवों के, ठट्ट जम जात हैं।
ऐसी महामण्डप में भीर होत भारी तहाँ,
एकन के पास एक बैठ न समात हैं।
महाराज मुनिवर चन्द्र चौथमल जू जब,
अदभुत अनाखी निज बाखी बरसात हैं।
तब नरनारी सब ही के चित्त दौरी दौरी,
सन्त समागम में समाधी सी लगात हैं॥

आप के सारगर्भित भाषणों को श्रवण कर जनता ने क्या, क्या, लाभ उठाया और कौन कौनसी कुरीतियों का परित्याग किया यह बात उदयपुर की जनता भली भांति जानती है। एसी दशा में उनका वर्णन करना अनावश्यक है।

जिन दिनों आप उदयपुरकी जनता को अपनी रसमयी वाणीका रसास्वादन करा रहे थे उन ही दिनों उन की प्रशंसा प्रत्येक नर नारियों की हृदयतंत्री में झंकरित हो रही थी और जनता की जिह्वा पर शारदा नटी होकर नाच रही थी। यह ख्याति धीरे धीरे हिन्दू कुल सूर्य हिज हाईनस दि महाराजाधिराज महाराना साहिब श्रीमान् सर फतहसिंहजी साहिब बहादुर जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई, जी० सी० वी० ओ०, महारानाजी ऑफ उदयपुर और आप ही के सुपुत्र-रत्न, स्वनाम धन्य श्रीमन्त युवराज महाराज कुमार साहिब सर भूपालसिंहजी साहिब बहादुर के० सी० आई० ई, के श्रवणों तक भी पहुँची। तब महाराज कुँमार साहिब ने डौडीवाले महताजी साहिब स्वनाम धन्य श्रीमान मदनसिंहजी महोदय व कोठारीजी साहिब श्रीमान् रगलालजी और इनके सुपुत्र स्वनाम धन्य श्रीमान कारुलालजी महोदय आदि उच्च पदाधिकारियोंके द्वारा, मुनिवर के पास संदेशा भेजा, कि आप समोर में पधार कर दर्शन देवें। उक्त संदेशा पा कर मुनि श्री ता० १६-१-२६ को सज्जननिवास उद्यान के समोर नामक प्रसाद में पधारे। प्राचीन ऋषि मुनियों की भांति युवराज महाराज कुँमार साहिबने, श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मुनि श्री का स्वागत किया आसन ग्रहण करने के पश्चात् श्रीमहाराज कुँमार साहिबने आपका कब पदार्पण हुआ यह प्रश्न किया। इस के उत्तर

में मुनि श्री से कहा कि आप की इस बस्ती में तारीख ११-१२ १९२५ को आगमन हुआ है । इस के पश्चात् मुनि, श्री ने उपदेश आरम्भ किया ।

उपदेश ।

हे श्री मन् ! इस संसार में राजा प्रजा सेठ (श्रेष्ठ) साहूकार, रईस और गरीब जितने भी इस संसार में चराचर हैं वे सब अपने अपने पूर्वकृत पुण्यानुसार ही उच्च या हीन अवस्थाओं को प्राप्त होकर सुख या दुःख का भोग करते हैं । वरना हाथ पांव नाक कान आदि इन्द्रियां तो सब के समान ही होती है परन्तु ये सब राजा ही होकर संसार में नहीं आते । इस से ज्ञात पड़ता है कि कोई पुरुष राजा पूर्व-कृत पुण्य से हीन श्रेणी के होते हैं। अतः आपने भी अपने पूर्व भव में राजा बनने योग्य राजा ही क्यों एक उच्च क्षत्रिय वंशोत्पन्न राजा बनने के योग्य सुकृतों का संचय किया था। इसी प्रकार जिस जिस ने पूर्व जन्म में जैसे जैसे कर्म किये उन्हीं के अनुसार वे अभी इस भव में मजा उड़ा रहे हैं । और अब इस भव में जिन क्रियाओं का व्यवहार हो रहा है उन्हीं के अनुसार परलोक बनेगा व बिगड़ेगा । क्योंकि परभव में साथ रहने वाली चीज केवल कर्म ही है । और समस्त सांसारिक विभूतियां तो यहां की यहीं देह के साथ ही साथ छोड़ देती हैं। इसी लिए किसी ने कहा है कि

धर्मोपदेश.

। जो दृढ रक्खे धर्मको, तिहि रक्खे करतार ।

श्रीमान महाराज कुमार श्री १०८ श्री
सर भूपालसिंहजी साहेब बहादुर
के. सी आई ई आफ उदयपुर (मेवाड़)
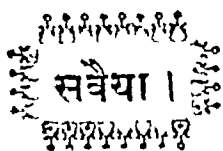
सवैया।

कञ्चन के आसन, बासन सब कञ्चन के,
कञ्चन के पलंग, सब इनामत ही धरे रहे।
हाथी हुड सालन में, घोडे घुड सालन में,
कपड़े जामदानन में, घडीबन्द योंही रहे।
बेटा बहू बेटी अरु, दौलत का पार नहीं,
जोहरात के डिब्बों पर, तालेही जडे रहे।
याते देह छोड के, लम्बे बने नर जब,
कुल के कुटुम्बी सब, रीतेही खड़े रहे॥

अस्तु। मनुष्य का उत्तम देह पाकर, सदैव धर्म ही एक मात्र परभव का साथी है, यह समझते हुए, मनुष्य मात्र को सुकर्म में प्रवेश होना चाहिए। किसी महात्माका कथन है—

तन अनित्य, संगी धरम,
प्रभु यशमयी सोय।
तीन बात जो जानई,
तासों खोट न होय॥

संसार की सम्पति जमीन की जमीन ही में रहजाती है। हाथी और घोड़े यों के यों बधे रह जाते हैं। स्त्रिया जो कल चिर-संगिनी बनने का दम भर रही थी, और जी जान बिछाने को हाजिर हो रही थी, घर की घर में ही रो कर बैठी रह जाती हैं। सज्जन, सम्बन्धी, नौकर चाकर, बादे और गुलाम स्मशान तक

के ही साथी हैं और बड़े यत्नों से लालित पालित यह परम प्रिय मानव शरीर भी यहीं का यहीं मिट्टी ही में मग्मी भूत होकर अपना अस्तित्व का कर पड़ा रह जाता है। वस्तु किसी का भी इस कराल काल के आग और जुल्म नहीं चलता। फिर चाहे वह राजा हो या रङ्क सम्राट हो या माण्डलिक एक दिन पार-लौकिक पासपोर्ट कटताही है। अन्तर बस इतनाही होता है, कि कोई दस दिन दूरी से आता है और कोई दो दिन पहले ही। जैसा जैनागम में कहा है कि

जहइ सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नइ हु अन्तकाले
न तस्स माया व पीया व भाया, कालम्मि तम्मंस हरा भवंति

उत्तराध्ययन अ० १३ स० २२

जैसे मृग को सिंह अपने अधिकार में करता है और तब मृग का कुछ और नहीं चलता एसे ही जब मौत आकर खड़ी होती है तब माता पिता भाई बन्धु, सुसरी यदि गुलाम कोई भी मौत से बचा नहीं सकते। बचाना तो दूर रहा मौत का एक मिनिट का विलम्ब तक सहन नहीं है। सब के सब माली यहां के ऐश आराम की मदा के लिए यहीं के यहीं छोड़ कर, केवल कृत शुभ या अशुभ कर्मों को ही लेकर, पर-भव को जाते हैं। इसके लिए एक कवि का यों कथन है कि

तर्ज बहर तवील

पहले आये यहां से तो आये नगन,
फिर जाओगे अन्त नगन के नगन।

या तो देवेंगे फूक लगाके अगन,
या कर देंगे मिट्टी में खोद दफन ।
दो चीजों का साथ चलेगा वजन,
शुभ अशुभ कर्म जो जो बांधे है मन ।
देखो, एक दिन होवेगा यहां से गमन,
करो उस पे अमल जो है सत्य वचन ।
क्रोध लोभ की लग रही तेज अगन,
चाहे देख लो हाथ में ले दर्पन ॥

संसार की यही दशा देख कर, मुनि जन और महात्मागण, इस लोक की विभूतियों को नश्वर जानते हुए अपनी हृत तन्त्री के तारों को झनका कर कहते हैं, कि

अर्ब खर्ब लौ द्रव्य है, उदय अस्त लौ राज ।
जो तुलसी निज मरन है, तो आवे केहि काज ॥

जिस समय इस शरीर का जन्म होता है उस समय इस के पास न तो ओढने का दुशाला व दुपट्टा ही रहता है और न अन्य भूषण और वस्त्र ही । और जब यहां से जाता है, तब भी नंगा का नगा ही । हिन्दु होगा, तो वह जला दिया जावेगा और मुसलमान होगा तो जमीन खोद कर उसे गाड़ दिया जावेगा । आगे यदि साथ आने वाले कोई हैं तो पुण्य वा पाप ही । फिर, पुण्य जैसा इस भव में सुखदाई होता है वैसा वह परलोक में भी सुख प्रद है और पाप का परिणाम यहा पर भी खराब और परभव में भी तदनुरूप ही । इस लिए, हमारी तो संसार के प्रति यही उद्घोषना है, कि कोई किसी को कभी न सतावे । एक सद्कविने कहा है कि

काँटा किसी को मत लगा गिरस गुल फूला है तू ।
इक मैं तेरे तीन हैं; किस बात पर भूला है तू ॥

जो यहाँ पर बिना अपराध ही किसी को काँटा चुभाया जावे तो परभव में वक्रवृद्धि के हिसाब से चतुर व्यवहारियों के समान दैव इसी काँटे का तीर बना कर बदला निकलवाता है। कर्मों का बदला किसी को छोड़ता नहीं। चाहे वह फिर एक मण्डलाधीश ही हो या एक कुटिया का कंगाल नर ही। चाहे वह अवतार ही क्यों न हो परन्तु इन कर्मों का बदला अवश्य सब को चुकाना ही पड़ता है। अतएव कभी भी किसी को किसी भी रूप से न सताया जावे। अपनी हैसियत चाहे कितनी क्यों न हो पर निर्बल को दुःख देना ठीक नहीं है। जो शक्ति मनुष्यों के पास है वह उस "शक्तिः परेषाम् पर पीडनाय" का समर्थन करने को नहीं वरन् उस का सदुपयोग कर के उस के द्वारा अज्ञानी जीवों को सन्मार्ग का पथिक बनाने को है दुःखी दर्दियों की सेवा करने को है। इस के लिये एक कवि का कथन इस प्रकार है-

सबल होय के निबल को, दुख न दीजिये सन्त ।
आखिर मुश्किल होयगा, तन से भी दन ॥

जैसे किसी एक रहँट के चारों पलड़ों में मनुष्य बैठे हुए थे। ऊपर के पलड़े वाले ने चक्कर कर कूदने का विचार किया।

इतने ही में नीचे के पलड़े वाले ने कहा कि "देख भाई! कूदना मत! नहीं तो मेरे ऊपर लगाव हो जायेगा। परन्तु उस ने उसकी बात पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया और इतना भी नहीं सोचा कि यहीं ही रहँट में मेरा पलड़ा भी नीचे आयगा। अन्त में उत्थान की ऐश्वर्य के मद में हो उसने कूद ही तो दिया

और उस थूक से नीचे वाले के कपड़े खराब हो गये। पर अबकी बार रहँट वाले के चक्कर देते ही नीचे के पलड़े वाले की बारी ऊपर होने का आई और ऊपर वाला नीचे को आ गया। बस, फिर क्या था अब वह ऊपर वाला जिस के कपड़े थूक से खराब हो चुके थे नीचे वाले के ऊपर पेशाब करने की चेष्टा करने लगा। यह देख कर नीचे वाले ने कहा, कि देख भाई! मेरे कपड़े बहुत ही अधिक खराब हो जायेंगे। तब उसने उत्तर दिया, कि भाई! यह तो तेरे थूक का बदला है। इस प्रकार से जो जिस के हक में एक नुकसान करने को उतारू होता है, उसे उसका बदला मूल और ब्याज के रूप में सो गुना सहने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये। अतएव, प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह पाप से सदा दूर रहने का सतत् प्रयत्न करें और कन्जूस जिस भांति धन संग्रह में रात दिन लगा रहता है, उसी प्रकार वह भी पुण्योपार्जन करने में ही अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य समझे। पुण्योपार्जन, यह परभव के लिये खर्ची है। जिस प्रकार आप कभी बाहर पधारें तो रसद डेरे डाँडे, आदि का इन्तिजाम पहिले ही से करवा रखना पड़ता है; उसी प्रकार से, परभव का भी इन्तिजाम, इसी भव में करना, करवाना अत्यन्त आवश्यकीय बात है। और वह इन्तिजाम यही है कि सर्व प्राणी मात्र पर सदैव दया का विशेष भाव रक्खे। दया, यह सारे धार्मिक सद् ग्रन्थों का सार रूप मसाला है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने भी कहा है –

> " अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
> दया भूतेष्वलोलुप्त्वं, मार्दवह्रीर चापलम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १६ श्लोक२

और एक ऐसी सन्दूक लगवादी जावे कि जिस में प्रत्येक दुखी-दर्दी गरीब और असहाय प्रजा अपने अन्तःकरण के पुकार की अर्जियां उस में डाल सके फिर आप स्वतः उस सन्दूक को खोल और मोहरी मार्का द्वारा प्रस्त प्रजा के अन्तर्पट की अन्तर्वेदना को जानें। इसके विपरीत उन की अर्जियां आप महानुभावों के पास पहुँचने में मार्ग में अनेक बड़ी बड़ी बाधाएं हैं। अतः इस के लिये एक ऐसा सुगम मार्ग का अनुसन्धान और अवलम्बन किया जावे कि जिस से राज्यान्तर्गत अन्तर्वेदना का सच्चा और वास्तविक ज्ञान आपको हो जावे और अपनी स्वाभाविक प्रिय प्रजा के साथ अन्त में सहानुभूति दिखाने का यह मार्ग एक उत्तम राजपूत का काम हो जाता है और आपको ऐसा करना भी चाहिये क्योंकि इस समय राज्य के कार्यों का सञ्चालन आप करते हैं विशेष क्या कहा जाय आप स्वयं अधिकारियों के भय से सम्पूर्ण हैं-असमर्थित हैं हम जो भी कहते हैं वह केवल स्वार्थ शून्य मार्ग से प्रेरित होकर कहन और करते हैं। आप जानते हैं न तो हमें किसी स मठ में जमीन लेने की इच्छा है न हम धन जागीरी-प्राप्ति के लिये ही साधु वेष धारण किये हुए हैं। अतएव हमें किसी भी बात की कोई भी इच्छा नहीं। यदि इच्छा और याचना है तो केवल यही की आप जैसे नर केशरियों के राज्य में प्राणी मात्र को अभय दान का शुभ सन्देश मिले अर्थात् हमारे आगमन और गमन के दोनों दिवस राजधानी में जीव हिंसा न होने के लिये अमता पलाया जावे। बस यही हमारी उत्तम और प्राणों से भी प्यारी भेंट और अभ्यर्थना है। इत्यलम्

श्रीमान् महाराज कुँमार साहिब का चित्त इस सार आदी भावना को श्रवण कर बडा प्रसन्न हुआ और भेट देने की स्वीकृति कर सारे शहर ने मगता पलाने के लिये सनद् नम्बर २१७६७ का हुक्म जारी कर के अपनी दयार्द्रता का परिचय दिया ।

इस के पीछे हिन्दू कुल सूर्य हिन्दू गौरवादर्श छत्रपति राजेश्वर वर्तमान् मेवाड़ाधिपति श्रीमान् महाराणाजी साहिब की ओर से तारीख २०-१-२६ को मेवाड़ राज्य के दिवान राय बहादुर स्वर्गीय महताजी साहिब श्रीमान् पन्नालालजी सी० आई० के सुपुत्र महताजी साहिब स्वनाम धन्य श्रीमान फतह० लालजी महोदय द्वारा सूचना मिली कि' मुनि श्री का यहाँ पधरावें " सूचना मिलने पर मुनि श्री अपने चौदह शिष्यों की मण्डली सहित शिव-निवास नामक राज प्रासाद में पधरा० राये गये । श्रीमान् महाराणाजी साहिब ने विनय और भाव-भक्ति पूर्वक मुनि श्री का स्वागत किया । तदुपरान्त महाराणाजी साहिब ने कहा, " आप पधारवा की वड़ी कृपा कीधी " । उत्तर में मुनि श्री ने कहा कि हमारा तो यही कर्तव्य है " पश्चात् निम्न लिखित श्लोक कहा—

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमोनमः ॥ १ ॥

ॐ यह पवित्र शब्द परमात्मा वाची है । इस का रटन, बड़े २ ऋषि, मुनि और सांसारिकजन, सब ही निर्वाण-पद की प्राप्ति के लिये करते हैं । इस के रटन से, उस विश्व बन्धु को नमस्कार होता है । इस शब्द की उत्पत्ति

योनों में महामोह के आवर्त में फंसी है। यह एक भीषणाकार है। इस के बोने का क्षेत्र अधिकारी मनुष्य का हृदय ही। क्षेत्र ही है इस के निवास में अवगम की कोई चूक। सुमन इस का रं पर्युष्ठ हो नहीं होती। बस यही सु में एक उत्तम स्थान है। देवता भी इस क्षेत्र के लिए व्याकुल रहते हैं वैसी सदा इसी धुन में लालायित होकर अनिमेष नेत्रों से टकटकी लगाये रहते हैं कि कब हमभी मनुष्य होकर परमात्मा के जाप का रस पान कर सकें और कब निर्वाण-पद का प्राप्तिका सुगम सपान पावें। मानव शरीर ही एक ऐसा साधन है जिस के द्वारा मनुष्य नर से नारायण बन सकता है। प्रथम तो महत्वपूर्ण मानव शरीर का मिलनाही दुर्लभ है तिस पर भी दुर्लभ है उसका आरम चिन्नकल-रत होना बिना पूर्व सत्कृति और सुकृत शाली के ऐसा नर-जन्म मिलना नसीब ही कहां होता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत् के ग्यारहवें स्कन्ध में कहा है कि:—

> नृदेहमाद्यं सुलभ सुदुर्लभ
> प्लव सुकल्प गुरु कर्णधारम् ।
> मयानुकूलेन नभस्वतेरित
> पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥

मुनि

श्रीसे महाराजाजी साहिबने कहा कि "इस श्लोक का क्या अर्थ है।" तब मुनि श्री ने आचार्य कहा कि हे हिम्मतकुल रूप मन हरणिगणि ! चौरासी लाख योनियों में मनुष्य जन्म का मिलना अति कठिन है। पाप पुण्य के पुण्योदय से, मनुष्य देह की प्राप्ति हो भी गई पर आर्य क्षेत्र

नहीं मिला, तो वह मानव जन्म किस कामका है? यदि मनुष्य जन्म और आर्य-क्षेत्र दोनों की प्राप्ति हो गई, पर कुल न मिला, तो भी जन्म की खेप व्यर्थ ही गई। यदि, प्रगाढ़ पुण्यों के प्रताप से मनुष्यजन्म, आर्य-क्षेत्र, और उत्तम कुल तीनों ही मिल गये। पर फिर भी चिरन्तन आयु की अप्राप्ति ही रही, तो भी नरजन्म व्यर्थ ही है। फिर नरजन्म आर्य क्षेत्र उत्तम कुल और चिरन्तन आयु भी मिली, पर पूर्ण इन्द्रियों का अप्राप्ति ही रही, तो भी यह नरदेह किसी काम की नहीं। फिर, यदि इन पाचों की प्राप्ति भी होगई; पर शारीरिक-निरोग्यता का फिरभी अभाव ही रहा, तोभी यह मानव-देह व्यर्थ है। अब इन छहों की प्राप्ति भी होजाय, पर, यदि निष्पृही उपदेशक का अभाव बनाही रहे तो भी सदुपदेश न सुनने से ज्ञानकी अप्राप्ति ही रहेगी और "ज्ञानेन हीन पशुभि समान" नरदेह हो जायगी। अब यदि सातों की दैव संयोग से प्राप्ति हुई भी गई, तोभी सदुपदेश के वचनों में आस्तिक भाव रख कर विश्वास करना-घोर कठिन है। अब, यदि विश्वास भी कर लिया जाय, तोभी तदनुरूप कार्य करना अति ही कठिन होगा। अब यदि तदनुरूप कार्य करने की शक्ति भी मिलजाय, तो भी प्रत्येक पुरुष को ऊपर की प्रत्येक बातों का क्रमशः मिलना ही घोरातिघोर कठिन है, तब तो इन सबका अनायास और अनायास ता मिलना, महानुतम से महानुतम दुर्लभ है परन्तु, ये सब बातें साहजिक रूप मे ही आपको सम्प्राप्त हैं अतएव मानना होगा कि आपने परभव में घोरातिघोर तपस्या की होगी। यह, उसी तपश्चर्या का जीता-जागता प्रत्यक्ष फल है कि यह सब राजसी वैभव वर्तमान में आपको सुलभ हो रहा है, श्रीमानों के पसीने की बूंद पड़ने देखय खड़े हुए

इस की यह दशा देख कर, उन दोनों सखियों में से एक ने दूसरी से यों पूछा कि-

दोहा

हाथी चढ़ घोडे चढया, घोड़े चढ़ सुख पांव।
कब का थाकया ए सखी, अबे दबावे पांव ॥

हे सखी ! हाथी पर चढ़ कर फिर घोड़े पर बैठे और फिर घोड़े से सुखपाल में बैठे, एक कदम भी पैदल चले नहीं और और पड़े पड़े पाव दबा रहे हैं, तो ये कब के थके हुवे हैं, सो पांव दबा रहे हैं। उत्तर में, दूसरी सखी ने कहा कि-

दोहा

भूखा मर भूवां परे, कीन्हा उग्र गमन।
जब का थाकया ऐ सखी, अबे दबावे चरन ॥

हे सखी ! पूर्व भव में इन्हों ने तपस्या की, जीवों के प्रति दया पालन की, जहां तहां जमीन पर पड़े रहे और बिनाही सवारी धूप घाम और शीत सहकर के नगे पैर ही विहार (गमन) किया, तभी से ये थके हुए हैं और अब हे सखी ये पैर दबवा रहे हैं। यह सब पूर्व भव के किये हुए पुण्यों का प्रत्यक्ष फल है। इस लिये, मनुष्य मात्र का परमकर्तव्य है कि यदि वह सुखी बनना चाहे तो प्राणी मात्र से द्वेष छोड़ निरन्तर कार्य रूप से 'आत्मवत् सर्व भूतेषु" और 'वसुधैव कुटुम्बकम्" इन महामन्त्रों का पाठ करता हुआ, पुण्यों का सञ्चय

करें। ऐसा करने पर भवश्य ही उन्हें यहां और पर भव में सुख का प्राप्त होती है। और भन्त में उन्हें मोक्ष मिलता है। श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज ने गीता में कहा है कि–

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः सम दुःख सुखः क्षमी ॥

श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १२ श्लोक १३ वां

अतएव आप मूक जीवों पर विशेष रूप से कृपा दृष्टि रक्खें और रखवावें। अतिथि और दीन दुखियों की बातों को पहले श्रवण करें प्रजा जो है वह आप के पुत्र तुल्य है और जिस पुत्र पिता के आधार पर अवलम्बित रहता है वैसे ही प्रजा भी आप के आधार पर अवलम्बित है और प्रजा का भी चाहिये कि वह भी अपने मन साथ की आज्ञाओं को अपने पिता की आज्ञाओं के समान परिपालन करें और कभी उल्लङ्घन न करें। हम सदैव यही बात प्रजा को भी उपदेश करते हैं कि कोई भी किसी को द्रोह की दृष्टि से मत देखो झूठ मत बोलो परस्त्रीगमन मत करो पर धन का अपहरण करना छोड़ दो झूठी गवाही मत दो किसी के साथ छल कपट और दगाबाजी मत करो यदि इसी उद्देश के अनुसार प्रजा चलने लग तो फिर न तो पुलिस की ही जरूरत रहे और न केदखानों ही का काम कसरत से जारी रहे। तब श्रीमान महाराणाजी साहब ने श्रीमुख से कहा कि–

" हां सही बात है फिर केदखाना की कोई जरूरत है "

नव

मुनि श्री फिर बोले, कि मैं आप की इस बस्ती में लग भग २५ दिन से प्रजा को उपदेश दे रहा हूं और आप ने भी सुधार के लिये, हाकिम, मुत्सद्दी पुलिस, सेना सेणाओं आदि का इन्तिजाम प्रत्येक गांव में, सवनन कर रक्खा है। और हम लोग तो निस्वार्थ ही आप की प्रजाको सुधारने का ढग दिखा रहे हैं। तब महाराणाजी साहिब बोले, कि " वो काम तो कई है यो आपको कामहीज मोटा है "।

तदुपरान्त मुनि श्री ने अपने उपदेश को स्थगित कर स्व-स्थितस्थान पर जाने की चेष्टा की। इतने ही में, फिर महाराणाजी साहिब ने फर्माया, कि ' अब आप अठे कतराक दिन तक और बिराजोगा " उत्तर में मुनि श्री ने कहा कि यदि हम यहां पूर्ण कल्प करें, तो, चार या पांच रोज और ठहर सकते हैं और नहीं ठहरें तो आज कल ही में विहार कर जावें। और जिस दिन विहार करेंगे, उस दिन श्रीमान् युवराज महाराज कुमार साहिब ने अगता रखवाने के लिये, सनद् नं० २९७६७ की लिखदी है। यह सुन कर श्रीमान् महाराणाजी साहिब ने अगने के लिये महाराज कुमार के साथ हृदय से सम्मान और सहानुभूति प्रदर्शित की, और उपदेश सुन कर बड़ेही प्रसन्न हुए। तदुपरान्त आपने कहा कि " आप लोगा का दर्शन कर मने बड़ी खुशी हुई अतरा दिन पहली मने आपकी मालुम नहीं थी"। आदि कथनोपकथन के पश्चात् मुनि श्री स्व शिष्य मंडल सहित अपने निवास स्थान को पधारे तदनन्तर मुनि श्री माघ शुक्ला १२ सोमवार को उदयपुर से विहार कर हाथीपोल के बाहिर सरकारी सराय में विराजे थे। उस रोज का विहार दृश्य भी अब

शोकनीय था। राजपथ पर सहस्रों मनुष्यों की भीड़ थी। सब ही प्राणियों के म्लान हुए और पश्चिम महाराज श्री के दर्शनों के लिए उमड़ पड़े थे। स्थान २ पर लोग एक दूसरे को पूछ रहे थे कि महाराज ने कहाँ विहार किया?

विहार — के राज श्रीमान् दयालु हिन्दुआ सूर्य श्री महाराणाजी साहिब व श्री कुँवरजी बापजी।

राज की ओर से सारे शहर में नम्बर २६७६७ के हुक्मकी पा बन्दी में घोषणा कराई गई कि "कोई जीवहिंसकी महाराज विहार करेगा सो अगतो राखजो नहीं राखोगा तो सरकार का कसूरवार होवेगा" इस प्रकार की शहर में घोषणा होने ही लोगों में प्रसन्नता छाई।

आप काल का सुलम्बर रावतजी साहिब श्रीमान् * ओनाड़-सिंहजी साहिब मुनि श्री के दर्शनों को पधारे। दर्शन और वार्तालाप करने से उनका चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ और कहा कि "अब मैं यहाँ आया हूँ तो कुछ न कुछ दया विषयक आप के भेंट करना मुझे जरूरी है अतः" सिंहल शिकार जानवर मारने की मुझ अत्यन्त इच्छा रहती है मुझ ही वश पर शिकार मांस को रहती है किन्तु आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उसे नहीं मारूँगा।

एक व्याख्यान वहाँ दिया सद्बोध श्रवण करने को जनता व हुल आई। पारसोली के रावतजी साहिब श्रीमान् × लक्ष्मणसिंहजी

---

* × हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के सोलह उमरावों में से आप उमराव हैं।

महोदय ने भी व्याख्यान श्रवण किया। तदनु वहां से विहार कर मुनि श्री आहिड़ पधारे वहां पर पुनः सुलम्बर रावतजी साहिब एक ही दिन में दो वक्त मुनि श्री के दर्शनों को पधारे। वहा से विहार कर मुनि श्री डबोक पधारे। वहां पर करजाली महाराज साहिब श्रीमान् लक्ष्मणसिंहजी जो कि महारानाजी साहिब के भतीजे हैं वे भी मुनि श्री के दर्शनार्थ पधारे। वहा से मुनि श्री विहार कर मार्ग में अनेक गावों में धर्मोपदेश करते हुवे रतलाम पधारे। वहां करीब एक महिने तक जनता को उपदेश किया। उस समय उदयपुर संघ व जनता की ओर से सज्जनों ने रतलाम आकर मुनि श्री से उदयपुर में चातुर्मास करने के लिये अत्याग्रह किया। उस को स्वीकार मुनि श्री ने उदयपुरकी ओर विहार किया। ग्रामग्राम होते हुए सैलाना (स्टट) पधारे। वहा प्रजावत्सल्य सरकार श्रीमान श्रीदलीपसिंहजी साहिब ने तीन व्याख्यान श्रवण किये। और प्रसन्न चित्त होकर मुनि श्री की प्रशंसा करते हुए सरकार ने कहा-" सच-मुच में, आप जैसे स्वार्थत्यागी महोपदेशकों की वाणी में ही ओजस्विता और आकर्षण शक्ति रहती है और इस के द्वारा अनेक उपकार होते रहते हैं। आप से प्रार्थना है, कि यह चातुर्मास आप यहीं करें? उत्तर में मुनि श्री ने कहा, कि इस चातुर्मास की विनती तो उदयपुर के लिये स्वीकार कर ली गई है। तब उपस्थित जनता की ओर देख कर श्रीमान सैलाना सरकार ने कहा कि इस चातुर्मास के बाद (सं० १६८४) का चातुर्मास यहीं कराने की तुम लोग भरसक कोशिश करना। और मुनि श्री से कहा कि जब ये लोग आप के पास विनती करने को आवें तो इनकी विनती अवश्य स्वीकार की जावे।

वहाँ से विहार कर मुनि श्री आवण सम्मोर, श्री नथ होते हुए बड़ी सादड़ी (मेवाड़) पधारे। वहां दो व्याख्यान श्रीमान राजराणा * सुलतानसिंहजी साहिबान श्रवण किये। और कहा कि जो आपका दया विषयक उपदेश हुआ उस से मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। मुझे रुपये देकर यहां कसाई मांस बेचने की दुकान खोलना चाहता है पर मैंने उसका अस्वीकार किया कि लोभ के लिये यहाँ ऐसा अन्याय क्यों करावें महाराज! मैंने मना कर दिया उत्तर में मुनि श्री ने कहा कि बहुत ठीक किया पश्चात् राजराणा साहिब ने मुनि श्री की सेवा में भेट स्वरूप अभयदान का निम्नांकित "पट्टा" कर दिया।

॥ श्रीरामजी ॥

मोहर छाप
बड़ी सादड़ी

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्रीचौथमलजी ज्येष्ठ कृ० १ को बड़ी सादड़ी में पधारे। कुछ समय व्याख्यान श्रवण होने से [illegible] तथा ग्राम एवं महलों में पधार व्याख्यान दिया आप के धर्मोपदेश प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत आनन्द प्राप्त हुआ मुनासिब समझ प्रार्थना की जाती है।

(१) पक्षी जीवों की शिकार इच्छा करके नहीं करेंगे।
(२) मादीन जानवरों का भी इच्छा करके शिकार नहीं की जायगी।
(३) तालाब में मच्छियें मारने आदि जीवों की शिकार निषेध रखा

---

* हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान महाराणाजी साहिब के खास उमरावों में से आप उमराव हैं।

जत कोई नहीं कर सकेंगे। इसके लिये एक शिलालेख भी ता॰ लाव की पाल पर मुनासिब जगह स्थापित कर दिया जायगा।

हु॰ नम्बर १५६४

मुलाजमान कोतवाली को हिदायत हो कि तालाब में किसी जानवर की शिकार कोई करने न पावे यदि इस के खिलाफ कोई शख्स करे तो फौरन रिपोर्ट करें। आज के व्याख्यान में कितनक जागीरदार हजूरिये आदिन हिंसा वगैरः न करने की प्रतिज्ञा की है उम्मेद है वे मुवाफिक प्रतिज्ञा पाबन्द रहेंगे। नकल इसकी सूचनार्थ चौथमलजी महाराज के पास भेजदी जावे।

* सं॰ १९८२ ज्येष्ठ शुक्ला ३ ता॰ १३-६-१९२६, उपरोक्त पट्टा स्वयं राजराणा साहिबने भेंट कर अपने जागीरदारों और अन्य राज्यकर्मचारियों से भी यथा योग्य त्याग और प्रतिज्ञा कराई गई जिसका उल्लेख यहां पर पुस्तक बढने के भयसे नहीं किया गया है।

बड़ी सादड़ी से विहार कर मुनि श्री बोहड़े पधारे। वहां पर भी श्रीमान् रावतजी साहब श्रीमान् * नाहरसिंहजी और आपके पुत्ररत्न श्रीमान् नारायणसिंहजी साहिब ने तीन व्याख्यान श्रवण किये। जिसके फल स्वरूप रावतजी साहिब ने मुनि श्री की सेवा में अभय दानका पट्टा कर दिया है। उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है।

॥ श्रीरामजी ॥

श्रीगोपालजी

मोहर छाप
बोहड़ा

---

* मेवाड राज्य में श्रावण से नूतन संवत् बदलता है।

* आप हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के बत्तीस उमरावों में से उमराव हैं।

धर्मोपदेश

धर्मप्रेमी श्रीमान् रावतजी साहेब
श्री केशरीसिंहजी महोदय
कानोड़ (मेवाड़)

आज यहां जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमलजी ने इनका व्याख्यान उपदेश किया परमेश्वर स्मरण दया सत्य धर्म जीव रक्षा न्याय विषय पर जो मर्मस्पर्शी व पूर्ण हितकारी सर्व जनों के लाभ दायक पूर्ण परमार्थ पर हुआ। आप के उपदेश से चित्त प्रसन्न हो कर मानता का जाती है।

(१) मादीन जानवरों की हरहमेश शिकार न की जायगी।

(२) चीड़ पक्षी चिड़ियाओं की शिकार करने की रोक की जायगी।

(३) मोर कबूतर फाकता (सफेद हैंसलु) जो मुसलमान लोग मारते हैं न मारन दिये जावेंगे।

(४) पशुगणों में व खास पत्र में खास तौर पर पेचने को जो चकर आदि काटते हैं उन को रोक की जायगी।

(५) पशुगणों में कसाई खाने की भट्टियें बन्द रखी जावेंगी

सं० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ल ५ सोमे

(द०) नाहरसिंह

यहाँ से विहार कर मुनि श्री सूमदे पधारे। यहां के रावतजी साहिब श्रीमान् * नाहरसिंहजी और आप के कुँवर साहिब ने मुनि श्री का प्रभावशाली भाषण और अमूल्य उपदेश श्रवण किया। पश्चात् रावतजी साहिब ने मुनि श्री की सेवा में भेंट स्वरूप अभयदान का पट्टा कर दिया है। वह इस प्रकार है।

॥ श्रीरामजी ॥

श्रीकरेश्वरजी

सही (सूमदा की)

---

* आप हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के बत्तीस उमरावों में से उमराव हैं।

धर्मप्रेमी श्रीमान् रावतजी साहेब
श्री केशरीसिंहजी महोदय
कानोड (मेवाड)

आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमलजी ने कृपया व्याख्यान उपदेश किया जो प्रशंसनीय व पूरा हितकारी सर्व जनों के लाभ दायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आप के उपदेश से चित्त प्रसन्न हो कर प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) छोटे पक्षी की शिकार करने की रोक की जायगी।

(२) वैशाख मासमें खरगोश की शिकार इरादतन न की जायगी।

(३) मादीन जानवरों की इरादतन शिकार नहीं की जायगी।

(४) नदी गोमती व महादेवजी श्रीकेरेश्वरजी के पास श्रावण मास में मच्छियों की शिकार की रोक की जायगी।

सम्वत् १९८२ का ज्यष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार

(द.) जवानसिंह

वहां से विहार कर मुनि श्री कानोड़ पधारे। वहां पर रावतजी साहिब श्रीमान * केशरीसिंहजी महोदय ने मुनि श्रीका उपदेश श्रवण किया पश्चात् रावतजी साहिब ने मुनि श्री की सेवा में अभयदान का पट्टा भेंट किया वह इस प्रकार है।

॥ श्रीरामजी ॥

श्रीमहालक्ष्मीजी

मोहर छाप

कानोड़

जैन संप्रदाय के मुनि महाराज श्रीचौथमलजी का हवा मगरी के महल में आज व्याख्यान हुआ। जो श्रवण कर बहुत आनन्द

---

* आप हिन्दूकुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के सोलह उमरावों में से है।

धारना होकर आज मिति आप ढ कृष्णा ५ को महलों में धर्म व अहिंसा के विषय में व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव अच्छा पड़ा। और मुझको भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि।

(१) हिरन व छोटे पक्षियों की शिकार नहीं की जायगी।

(२) इन महाराज के आगमन व प्रस्थान के दिवस भिणडर में खटीकों की दूकाने बन्द रहेगी। उपरोक्त प्रतिज्ञा की पाबन्दी रहेगी लिहाजा

हु० नम्बर २३४२

खटीकों की दूकानों के लिये मुआफिक मजर तामील बाबत थानेदारको हिदायत की जाव। और नकल इस की चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे सम्वत् १९८२ आषाढ़ कृष्णा ५ ता० ३०, जून सन् १९२६ ईस्वी

यहां के कितने ही राजपूत सरदारों एवम् अन्य कर्मचारियों ने भी महाराज के सदुपदेश से मदिरा, मांस, जीव हिंसा नहीं करने का त्याग किया। जिस का विवरण निबन्ध बढ़ने के भय से यहाँ नहीं दिया गया है। वहाँ से विहार कर मुनि श्री बंबोरे पधारे। वहाँ पर रावतजी साहिब श्रीमान् * मोड़सिंहजी महोदय ने दो व्याख्यान श्रवण किये। और उन्हों ने भी मुनि श्री की सेवा में भेट स्वरूप अभय दान का पट्टा कर दिया वह इस प्रकार है।

॥ श्रीरामजी ॥ | मोहर छाप बम्बोरा | नम्बर १३

* आप हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहब के बत्तीस उमरावों में से हैं।

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्रीचौथमलजी के दर्शनों की अभिलाषा थी व आषाढ़ कृ० ६ को बघोरे पधारे और कृष्णा १० रविवार को महाराज का व्याख्यान बाजार में था वहाँ पर सुबह आठ बजे से १० बजे तक श्रीमहाराज के व्याख्यान श्रवण करके चित्त को आनन्द प्राप्त हुआ मैं भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से चित्त आनन्द होकर नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूं

(१) मैं अपने हाथ से जानवर, पखेरू नहीं मारूंगा न मच्छी मारूंगा।

(२) हमेशा के लिये ग्यारस के दिन मेरे रसोड़े में मांस नहीं बनेगा नहीं खाऊंगा और बघोरे में कसाई की भी दुकानें व कलालों की दुकानें बन्ध रहेगी व कुम्हारों के अवाड़ा नहीं पकेगा, बन्ध रहेगा।

(३) नदी में सनरसे के नीचे से बहुवा तक कोई भी मच्छी नहीं मारेगा।

(४) ग्यारस के रोज बघोरे में ऊँट गाड़ी नहीं लादने दिये जावेंगे।

(५) आप का बघोरे में पधारना होगा उस रोज व वापिस पधारना होगा उस रोज अगता पलेगा यानी कसाईयों की कलालों की दुकानें बन्ध रहेगी व कुम्हार अवाड़ा नहीं पकावेगा वगैरा २।

(६) सात बकरे अमरिये किये जावेंगे।

ऊपर लिखे मुजब प्रतिज्ञा की गई है और मेरे यहां किलमदार सरदार वगैराओं ने भी प्रतिज्ञा की है जिसकी फहरिस्त उनकी तरफ से अलग नजर हुई है दिन सुक्रम सं० १९८० अषाढ़ कृ० ?

वहाँ पर मुनि श्री के सदुपदेश से अन्य नरनारी इत्यादि ने भी मृगया मांस भक्षण जीव हिंसा आदि नहीं करने के त्याग किये।

जिनका विवरण निबन्ध बढ़ने के भय से यहां नहीं दिया गया है।

वहां से प्रस्थानित हो कर महामुनि कुरावड पधारे वहां के रावतजी साहिब श्रीमान् * बलवन्तसिंहजी महोदय ने दो व्याख्यान श्रवण किए। पश्चात् रावतजी साहिब ने आप की सेवा में अभय दान का पट्टा समर्पित किया, वह इस प्रकार है।

॥ श्रीरामजी ॥

श्रीएकलिंगजी

जैन सम्प्रदाय के श्रीमान् महाराज श्री चौथमलजी का दो दिन कुरावड़ महलों में मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा, परोपकार, क्षमा आदि विषयों पर हृदयग्राही व्याख्यान हुआ जिस के प्रभाव से चित्त द्रवीभूत होकर निम्न लिखित प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) कुरावड़ में नदी तालाव पर जलचर जीवों की हत्या रोक रहेगी।

(२) आप के शुभागमन व प्रस्थान के दिन यहां पर जीव हिंसा का अगता रहेगा।

(३) मादीन जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) पक्षियों में सात जातियों के जानवरों के सिवाय दूसरे जाति की हिंसा नहीं की जावेगी-इन सातों की गिनती इस तरह होगा कि जिस तरह से इत्तफाक पड़ता जावेगा वो ही गिनती में शुमार होंगे।

---

* आप हिन्दू कुल सूर्य्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के सोलह उमरावों में से हैं।

(५) भाद्रपद कृष्णा सप्तमी से सुद पूर्णिमा तक कसाईयों की दूकानें बन्द रहेगा।

(६) भादवा में पहिले से अगता रखे हैं सो बदस्तूर रहेगा और इन में सर्व हिंसा व कसाईयों की दूकानें भी बन्द रहेगा।

(७) प्रतिमास एकादशी वा अमावस्या पूर्णिमा का अगतो हमेशा सू रखे है सो बदस्तूर रहेगा और कसाईयों की दूकानें बिलकुल बन्द रहेगा।

(८) आश्विन मास की नवरात्रि में एक दिन (आसोज सुद ९) माताजी के बलिदान दस्तूर नहीं होयगा वो बकरा ने अमरिया कर दियो जावेगा।

(९) दशहरा नवरात्रि में एक पाडो हमेशा बलिदान होवे सो बन्द रहेगा।

(१०) नवरात्रि में माताजी करणीजी पोगलीजी के पाडा नहीं चढ़ाया जावेगा।

(११) दश बकरा अमरिया कराया जावेगा।

करार लिखे मुजब फक अमल दरामद रहना जरूरी लिखाया
हुँ० नम्बर २०३

नकल इस की मालिमत कोतवाली में भेजी जावे। दूसरी नकल महाराज चौथमलजी के पास मुलाहिजा भेजी जावे। दूसरे मारवाड़ नगरों में भी बहुत सी प्रतिज्ञा की है उसकी फेहरिस्त अलग है संवत् १९८२ माघ व कृष्णा १४।

महामुनि के शुभ मद उपदेशों से यहाँ के अन्य जागीरदार सरदार वगैरह कई महानुभावों ने मांस मदिरा जीव हिंसा, शिकार आदि नहीं करने के त्याग किए। जिनका उल्लेख पुस्तक बढ़ने के भय से यहाँ नहीं किया गया है।

वहां से विहार कर मुनि श्री बाठरड़े पधारे। वहां पर रावतजी साहिब श्रीमान * दलीपसिंहजी महोदय ने दो व्याख्यान श्रवण किये। तदनु रावतजी साहिब ने दया विषयक मुनि श्री की सेवा में भेट स्वरूप अभय दान का पट्टा निम्न लिखित कर दिया।

॥ श्रीरामजी ॥

श्रीएकलिंगजी

रावतजी साहिब के हस्ताक्षर इंग्रेजी लिपि में	मोहर छाप बाठरड़ा	Batera, Udaipur Rajputana

स्वस्ति श्री राजस्थान बाठरड़ा शुभस्थाने रावतजी श्री दलीपसिंहजी वचनात्। जैन साधुमार्गीय २२ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता स्वामी श्रीचौथमलजी महाराज का शुभागमन यहां आषाढ़ वदी ३० को हुआ यहां की जनता को आप के धर्म विषयक व्याख्यानों के श्रवण करने का लाभ प्राप्त हुआ। आप का व्याख्यान राज्य द्वार में भी हुआ। आप ने अपने व्याख्यान में मनुष्य जन्म की दुर्लभता, आर्य देश में सत्कुल में जन्म, पूर्णायु, सर्वाङ्ग सम्पन्न होने के कारण भूत धर्माचरण को बता कर धर्म के अङ्ग स्वरूप क्षमा, दया, अहिंसा, परोपकार, इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्य तप, ईश्वर स्मरण भजन, आदि सदाचार का विशद रूप से वर्णन करके इन को ग्रहण करने एवं अधोगति को ले जाने वाले हिंसा क्रोध, व्यभिचार मिथ्याभाषण, परहानी विषयपरायणता आदि दुराचारों का यथाशक्य त्यागने

---

* आप हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के बत्तीस उमरावों में से उमराव हैं।

का समायोगात्मक उपदेश किया जो कि सनातन वैदिक धर्म के दा अनुकूल है। आप के व्याख्यान सावदशिक सार्वभौमिक सर्वधर्म सम्मत किस प्रकार के आदर्श रहित हुआ करते हैं यहाँ स आप के भेट स्वरूप निम्न लिखित कर्तव्य पालन कराने व। प्रतिज्ञाए की जाती है।

(१) हिंसा के विषय में

१ भादों आसपाद की आसाढ इच्छा पूर्वक नहीं की जायगी।
२ पड़पड़ वा मांस भक्षण नहीं ।। या जायगा।
३ मार कबूतर आदि पक्षियों की शिकार प्रायः मुसलमान लाग करते हैं उनको रोक करा दी जायगी।
४ नवरात्रि दशहरा पर जो चौगात्था वा माताजी के बलिदान के लिए पाड़े बकरे किये जाते हैं व अब नहीं किये जावेंगे।
५ तालाब कुम्भसागर में मछलियें नहीं मारी जावेंगी।

(२) निम्न लि खत तिथियों तथा पर्वों पर अगते रक्खाये जावेंगे याने कसाईयों की दुकानें कलालों की दुकानें तैलियों की घाणियें हलवाइयों की दुकानें कुम्हारों के आवे आदि बन्द रहेंगे।

१ प्रत्येक मास में दोनों एकादशी पूर्णिमा का दिन।
२ विशेष पर्वो पर जन्म अष्टमी रामनवमी शिवरात्रि बसन्त पचमी पैत सुद १३ भादु वदि ५।
३ श्रावणमास म।
४ स्वामी श्री चौथमलजी महाराज के यहाँ आगमन व प्रयाण के दिन।

(३) प्रमय दान में ५ पांच बकरों को अभयदान दिया जायगा। उपरोक्त कर्तव्यों का पालन कराने के लिये कचहरी में लिख दिया जावे। इस की एक नकल श्री चौथमलजी महाराज के भेट

हो और एक नकल समस्त महाजन पंचों को दी जावे शुभ मिति सं० १९८२ का आषाढ सुदि ३।

यहा मे मुनि श्री विहार कर दरोली, डबोक गुडली होते हुए आषाढ शुक्ला ५ को आहिड पधारे उस रोज उदयपुर में घोषणापत्र नम्बर ५८३ के अनुसार श्रीमान्, दयालु हिन्दवा सूर्य श्रीमान महाराणाजी साहिब व कुंवरजी बापजी राज की ओर से घोषणा कराई गई कि-" काले चौथमलजी महाराज पधारेगा सो अगतो राखजो, नहीं राखोगा तो सरकार का कसूरवार होवोगा " इस प्रकार घोषणा होते ही लोगों ने अगता पाला और घोषणा द्वारा जनता को मुनि श्री के शुभागमन का शुभ सन्देश भी मिला।

सन्देश क्या मिला मानो नौ ही निधि प्राप्त हो गई। लोगों में सहसा नवीन जागृति का सञ्चार हो गया। और उनका हृदय आनन्द अपार समुद्र की गंभीर तरंगों में पड़कर मुनि श्री के महान् उपदेशों के भावी सुखों का अनुभव करने की अभिलाषा से आषाढ शुक्ला ६ का मुनि श्री के स्वागत के लिये सैकड़ों नर नारी गये। जय ध्वनि के साथ आम मार्ग चौक बाजार में घण्टा घर के पास बनड़ा राजा साहिब श्रीमान् * श्रीअमरसिंहजी महोदय की हवेली में पदार्पण कराया गया। आप वेही दयालु राजाजी साहेब हैं कि जिन्होंने सम्वत् १९८१ के चैत्र में जब मुनि श्रीवनेड़ पधारे थ तब सत्सग का खुब लाभ लियाथा जिसका संक्षेप विवर्ण ' आदर्शमुनि " नामक पुस्तक में छप चुका है। उस समय आपने भी भेट स्वरूप में अभय दान का निम्नाङ्कित् पट्टा कर दिया था —

---

* आप हिन्दू कुल सूर्य श्रीमान् महाराणाजी साहिब के सोलह उमरावों में से हैं।

का प्रभावोत्पादक उपदेश किया जो कि सनातन वैदिक धर्म्म के ही अनुकूल है। आप के व्याख्यान साम्प्रदायिक सार्वजनिक, सर्वधर्म सम्मत किसी प्रकार के आक्षेपों रहित हुआ करते हैं यहां से आप के भेंट स्वरूप निम्न लिखित कर्त्तव्य पालन करने की स्वीकृति दी जाती है।

(१) हिंसा के निषेध में

१ भाद्र आनवर की शिकार इच्छा पूर्वक नहीं की जायगी।
२ पटपड़ का मांस अब्राप नहीं लिया जायगा।
३ मोर कबूतर आदि पक्षियों की शिकार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं उनको रोक करा दी जायगी।
४ नवरात्रि दशहरे पर जो चौसठया या माताजी के बलिदान के लिए पाड़े वध किये जाते हैं वे अब नहीं किये जायेंगे।
५ तालाब फूलसागर में मछलियें नहीं मारी जायेंगी।

(२) निम्न लिखित तिथियों तथा पर्वों पर अगते रखाये जायेंगे यानि खटीकों की दुकानें कलालों की दुकानें तैलियों की घाणियें हलवाईयों की दुकानें कुम्हारों के आव आदि बन्द रहेंगे।

१ प्रत्येक मास में दोनों एकादशी पूर्णिमा का दिन।
२ विशेष पर्वों पर जन्म अष्टमी रामनवमी शिवरात्रि बसन्त पंचमी चैत्र सुदि १३ भाद्र वदि ५।
३ श्राद्धपक्ष में।
४ स्वामी श्री चौथमलजी महाराज के यहां आगमन व प्रयाण के दिन।

(३) अमर दान में ५ पांच बकरों को जीवदान दिया जायगा।

उपरोक्त कर्त्तव्यों का पालन कराने के लिये कचहरी में लिख दिया जावे। इस की एक नकल श्री चौथमलजी महाराज के भेंट

नम्बर ६७३५

जुमले मंद निगानको मारफत महकमे माल हिदायत दी जाय कि वह आसामियानको आगाह कर देवे कि तालाबों में मच्छी आदि वगैरा का शिकार कोई मरश बिना इजाजत न करने पावे। खिलाफ इस के अमल करे उसकी बा जाबता रीपोर्ट कर ! तातील बाबत हर वक्त महकमे जात में इत्तला दी जावे नीज इन के जरिये नकल हाजा मुनि महाराज को भी सूचित किया जावे फक्त १९८० वैशाख सुदी २ ता० ६-मई सन १९२४ ई

द० राजा साहेब के

मुनि श्रीके उदयपुर में पधारने के, रोज अगता, निम्नोक्त हुक्म के अनुसार रक्खा गया था।

॥ श्रीरामजी ॥

श्रीएकलिंगजी

नम्बर ५४३

सिद्धश्री पुलिस जाग राज श्री महकमें खास अप्रंच चौथमलजी महाराजका चातुर्मास शहर में होने से यो यहा आवे उस रोज अगता पलाये जाने बाबत दरख्वास्त श्री महावीर मंडल जैन उदयपुर पेश होकर लिखी जावे है के ये आवे वी दिन को अगतो पलावोगा स० १९८२ का आषाढ़ वदि १ ता० १ जुलाई सन् १९२६ईस्वी।

मोहर छाप
राजश्री महकमे
खास
उदयपुर मेवाड़

ओम् शान्ति, शान्ति, शान्ति

॥ श्रीमते गोपालजी ॥

Banera
Mewar

राजा स्वपति प्रजाः

जैन मजहब के मुनि महाराज श्रीदेवीलालजी व श्रीपोथमलजी महाराज बनेड़ा में वैशाख वदी ११ का पधारे और श्री ऋषभदेवजी महाराज के मन्दिर में इन के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य मुझको प्राप्त हुवा आपसे मजर बाग व महलों में भी व्याख्यान दिये आप के व्याख्यानों से बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुवा जिस से मुनासिब समझ कर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

(१) पजूषणों में हम शिकार नहीं करेंगे।
(२) मादीन जानवरों की शीकार इरादतन कभी नहीं करेंगे।
(३) चैत्र सुदी १३ श्रीमहावीर स्वामी जी का जन्म दिन होने से उस दिन तातील रहेगी ताकि सब लोग मन्दिर* में सामिल होकर व्याख्यान आदि सुन कर लाभ प्राप्त करें व तीज (सुद) उस रोज शिकार भी नहीं करेंगे।
(४) राज्य बनेड़े व मपालियात के तालाबों में मच्छी मार कमीन की शीकार बीना इजाजत कोई नहीं करने पायेगा लिहाजा।

---

* बनेड़े (मेवाड़) में जो भी श्वेताम्बर स्थानक वासी साधु आते हैं वे सब ऋषभदेवजी के मन्दिर ही में ठहरते हैं और चातुर्मास का निवास भी उसी मन्दिर में करते हैं। अतः व्याख्यान भी उसी मन्दिर में होते हैं और सब श्रावक गण सामायिक प्रतिक्रमणादि, तथा पौषध वगैरह यहीं करते हैं।

क्या आप नहीं जानते ?

सब रोगों की एक प्रसिद्ध दवा "अमीधारा" हम क्या कहें लाभ उठाकर आप खुद तारीफ करेंगे। मुल्य प्रति शीशी आठ आना सेवन विधि पुस्तक सहित।

आज ही आर्डर भेज मंगाइये।

६ शीशी पर डाक खर्च माफ

[१] "अमीधारा" P O मांदडी [राजपुताना]

[२] "अमीधारा" झवेरी बाजार पटवाचाल बम्बई २
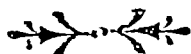
चूलणी पिता

वाराणसी नगरी मे जित शत्रु नामक राजा राज्य करता था । वहीं पर चूलणी-पिता नामक एक बड़ा गृह-पति अपनी श्यामा नामक भार्या के साथ रहता था । उसके पास आठ हिरण्य कोटी संचित रूप में, आठ व्याज में और आठ घर संबन्धी काम काज में लगी हुई थीं । दस दस हजार गायों वाले ८ व्रज उसके पास थे ।

वाराणसी कोष्टक के चैत्य मे अनेक साधु साध्वियों के साथ भगवान महावीर पधारे । उनके दर्शनार्थ नगर के लोग झुंड के झुंड जाने लगे । चूलणी पिता भी भगवान् के समोशरण मे अपने परिवार, सेवक, सुजन सबन्धी आदि के साथ वहां दर्शनार्थ गया ।

भगवान को वन्दना करने के लिये जो लोग गये थे, उनके वन्दना कर चुकने पर तथा यथा स्थान बैठ जाने पर भगवान ने उस बृहद् जन-समुदाय को धर्मोपदेश दिया । भगवान के मुखार बिन्द से निकले हुए धर्मोपदेश को श्रवण करके वाराणसी नगरी के अन्य सब लोग तो भगवान को वन्दना कर कर के अपने घर चले गये, परन्तु चूलणीपिता वहीं ठहरा रहा ।

यद्यपि भगवान के उपदेश को बहुत से लोगों ने सुना था परन्तु भगवान का उपदेश सुनने से जो आनन्द पृथ्वीपिता को आया वह दूसरे को नहीं आया; या आया भी हो तो उसका इतिहास मौजूद नहीं है। भगवान का उपदेश श्रवण करने पर पृथ्वीपिता को वैसा ही हर्ष हुआ जैसा हर्ष तापपीड़ित को छाया मिलने से और तृषा पीड़ित को जल मिलने से होता है।

जिस प्रकार उत्तम स्वादवाला भोजन भी तभी शक्तिवाला होता है जब कि वह पच जावे ठीक उसी प्रकार उत्तम उपदेश भी तभी लाभप्रद होता है जब उसका मनन किया जावे।

बहुत से लोग उपदेशक के समीप आते हैं। उपदेश श्रवण करने के नाम से परन्तु सुन कर मनन करना तो दूर रहा उपदेश को अच्छी तरह सुनते भी नहीं। कई लोग वहीं बातें करने लगते हैं या अपना मस्तक हो हल्ला मचा कर आप स्वयं भी नहीं सुनते और दूसरों को भी सुनने से वंचित रखते हैं। उनका पूर्व पाप उन्हें भी धर्मोपदेश नहीं सुनने देता तथा दूसरों के सुनने में उनके द्वारा बाधा डलवा कर और पाप करवाता है।

भगवान का उपदेश श्रवण करके पृथ्वीपिता का रोम-रोम खिल खिल हो उठा। प्रफुल्ल-हृदय पृथ्वीपिता भगवान को धन्यवाद देकर अपने आप के लिये आज का दिन धन्य मानने लगा। वह विचारने लगा कि भगवान ने जो उपदेश सुनाया है उसे इसी इहलोक में-यथाशक्ति नहीं तो किसी अन्य में-सार्थक करना उचित है।

जो काम उत्साह से हो सकता है, उत्साह न रहने पर उस रूप मे होना कठिन हो जाता है। हाँ, उत्साह में किया हुआ काम होगा वैसा ही अच्छा या बुरा, जैसा अच्छा या बुरा उत्साह होगा। अर्थात् उत्साह अच्छा होगा, तो काम भी अच्छा होगा और उत्साह बुरा होगा, तो काम भी बुरा होगा। उत्साह के वश बुरा काम-जिसका परिणाम पश्चात्तापपूर्ण हो-तो कभी न करना चाहिए, परन्तु अच्छे काम के उत्साह को निकल जाने देना बुद्धिमानी नहीं है। उसे तो सार्थक करना ही उत्तम है। अस्तु।

सब लोगो के चले जाने पर चूलणीपिता ने भगवान महावीर को तीनवार प्रदक्षिणा की और हाथ जोड कर भगवान से प्रार्थना करके कहने लगा-भगवन्! आपका धर्मोपदेश सुन कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मै आपके वचनो पर विश्वास करता हूँ और इस निर्ग्रन्थ धर्म पर विश्वास रखता हूँ। मुझे इस निर्ग्रन्थ धर्म से उत्तम कोई भी धर्म नहीं जान पडता। प्रभो! यद्यपि मैं निर्ग्रन्थ धर्म को उत्तम मानता हूँ, इस पर श्रद्धा रखता हूँ और विश्वास करता हूँ, तथापि जिस प्रकार अन्य राजकुमारादि आपके पास दीक्षित होकर इस निर्ग्रन्थ धर्म का पूर्णतया पालन करते हैं, उस तरह से पालन करने मे दीक्षा लेने में— मै दुर्भाग्यवश असमर्थ हूँ। इसलिये मै देश से ही धर्म को पालन करना चाहता हूँ और गृहस्थ लोग धर्म का पालन करने के लिये जिन बारह व्रतों को धारण करते हैं, उन्हे मैं भी धारण करना चाहता हूँ।

चूलणीपिता अपने आप को दीक्षा के लिये असमर्थ बताता है,

तेरे बडे लडके को तेरे पास लाकर, उसे मार कर, उसके मांस के टुकडे कर खौलते हुए कडाह में तेरे सामने ही उबालूंगा और उसके रुधिर और मास को तुझ पर छींटूंगा।

उस देवता के तीन बार ऐसा कहने पर भी चूलणी पिता निर्भयता के साथ अपने ध्यान मे तत्पर रहा। इसपर क्रोध से लाल २ होकर देवने उसके सन्मुख उसके बडे लडके को ला उसके टुकडे २ करके खौलते हुए कडाह में डाल कर रक्त और मास को उसके शरीर पर छिटक दिया।

चूलणी पिताने इस तीव्र वेदना को बडी शांति से सहन कर लिया।

देवने उसको अडिग जान कर उसके मझलाले और सब से छोटे लडके को उसके समन्मुख मार कर कडाही मे उबालने को डाल दिया। परन्तु इतना होने पर भी चूलणी पिता अडिग ही रहा।

अन्त में उसको डिगाने के लिए देवने चूलणी पिता को अपनी भद्रा नाम की माता के टुकडे २ करने की धमकी दी।

देव के इस प्रकार दो तीन वार कहने पर चूलनी पिता को इस प्रकार विचार आने लगे —"यह अनार्य और अनार्य बुद्धिवाला। ऐसे अनार्य पाप कर्म मेरे सन्मुख करता है। इसने मेरे पुत्रों को तो मेरे सन्मुख मार डाला है; अब यह मेरी देवगुरु समान जननी को भी—जिसने मेरे लिए अनेक कठोर दुःख सहन किये हैं—उसे भी मार कर उबालने को तैयार हुआ है। इसलिए इसको तो अब पकड ही लेना चाहिए।

व्रत धारण कराने की ही भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने चूलनी पिता पर यह दबाव नहीं डाला कि तुम अनगार धर्म ही धारण करो। एक तो वीतराग का धर्म ही यह होता है कि जिस की शक्ति है उससे अधिक धर्म के पालन करने को वे प्रेरणा नहीं करते हैं। दूसरे भगवान जानते हैं कि मैंने आगार धर्म और अनगार धर्म दोनों ही का उपदेश दिया है और अनगार धर्म के लिए अपने का महत्व बताता हूँ तो फिर इस पर आगार धर्म धारण करने के लिये जोर देना या जबरदस्ती करना ठीक नहीं। यह अपनी शक्ति के अनुसार जिस आगार धर्म को धारण कर रहा है इस समय के लिये वही उपयुक्त है।

चूलनी पिता ने भगवान महावीर से आगार धर्म के बारह व्रतों* को धारण किया। व्रतों को स्वीकार कर चूलनी पिता भगवान को वन्दन नमस्कार करके रथ में बैठ अपने मकान को चला गया।

एक बार एक मायावी और मिथ्यादृष्टि देव चूलनी पिता को उसके ध्यान और धर्म से भ्रष्ट करने के लिए पिशाच का रूप धारण कर नंगी तलवार लेकर आया और कहने लगा—

हे दुरन्त प्रान्त लक्षण वाले! अप्रार्थितों के प्रार्थी! ह्री श्री और कीर्ति से रहित! मांस के पिपासु चूलनी पिता श्रमणोपासक! जो तू शीलव्रत और गुणव्रत को नहीं छोड़ेगा तो मैं आज और अभी

---

* स्थूल अहिंसा व्रत, सत्यव्रत, अस्तेयव्रत, ब्रह्मचर्य व्रत, परिग्रह परिमाण, दिशा परिमाण, भोगोपभोग परिमाण, अनर्थदण्ड निवर्तन, सामायिक व्रत, देशावकाशिक व्रत, पौषध व्रत, और अतिथि संविभाग व्रत।

उसका कोलाहल सुनकर उसकी माता जाग उठी और उसके पास आकर कहने लगी "हे पुत्र इस तरह कोलाहल क्यों मचा रहे हो !"

इसके अनन्तर उस भद्रा सार्थवाहिनी ने कहा कि हे चुलणी प्रिय ! तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र से लेकर यावत् कनिष्ठ पुत्र को घर से बाहर लाकर तुम्हारे समक्ष किसी ने भी नहीं मारा है। यह तुम्हारे पर किसी ने उपसर्ग किया है तुमने जा देखा है वह मिथ्या दृश्य था। इस समय तुम्हारे व्रत नियम और पोषध नष्ट हो गये हैं। यह ऊपर लिखे मूलपाठ का अर्थ है। (मूलार्थ)

इस मूलपाठ में भद्रासार्थवाहिनी ने चुलणी प्रिय के व्रत नियम और पोषध भंग होने की जो बात कही है इसका कारण बतलाते हुए टीकाकार ने यह कहा है—

चूलणी प्रिय श्रावक का स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत भाव से नष्ट हो गया क्योंकि वह क्रोध करके हिंसक को मारने के लिये दौड़ा था। व्रत में अपराधी प्राणी को भी मारने का त्याग होता है। उत्तर गुण—क्रोध नहीं करने का जो अभिग्रह था वह क्रोध करने से नष्ट हो गया और अत्यन्त पूर्वक दौड़ने से उसका अव्यापार पोषध नष्ट हो गया यह टीका का अर्थ है। (टीकार्थ)

यहां टीकाकार ने व्रत नियम और पोषध भंग का कारण बतलाते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि "हिंसक पर क्रोध करके मारनार्थ दौड़ने से चुलणी प्रिय के व्रत नियम और पोषध नष्ट हुए थे" मातृरक्षा का भाव

ऐसा विचार कर क्रोध करके मारने के लिए दौड़ा । उसको दौड़ते हुए देखकर वह देव एकदम आकाश में उड़ा और चुलणी पिता के हाथ में केवल खम्भा ही रह गया । खम्भा हाथ में आते ही वह बड़ा कोलाहल करने लगा ।

माता की रक्षा के लिये प्रवृत्त होने में चुलणी पिता के व्रत नियम का भंग बताना अज्ञान है क्योंकि हिंसक पुरुष पर क्रोध करके उस मारनार्थ दौड़ने से चुलणी पिता के व्रत नियम भंग हुए थे माता की रक्षा का भाव आने से नहीं । देखिए वहां का मूलपाठ और टीका यह है— . (भ्रमविध्वंसन पृष्ठ १५२ से १५६ का उत्तर)

"तएणं सा भद्दा सात्थवाही चुलणी पिय समणोवासए एवं वयासी नो खलु केइ पुरिसे तव जाव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ णिणेइ २ त्ता तव अग्गओ घाएइ । एसणं केइ पुरिसे तव उव-सग्गं करेइ एसणं तुमे विदरिसणे दिट्ठे तएणं तुमं इयाणिं भग्गवए भग्गणियमे भग्गपोसहे विहरसि"

'भग्गवए,, त्ति भग्नव्रत' स्थूलप्राणातिपातविरतेर्भावतोभग्नत्वात् तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात् । सापराधस्यापि व्रतविषयीकृतत्वात् भग्ननियम' कोपोदये नोत्तरगुणस्य' क्रोधाभिग्रहरूपस्य भग्नत्वात् । भग्नपोषध' अव्यापार पोषधरूपस्य भंगत्वात् (टीका)

चुल्णी पिताने बड़ी विनय मे माता के कथन को स्वीकार किया, और अपने तोड़े हुए नियम का प्रायश्चित कर उनका फिर से स्वीकार किया तथा पूर्ववत ही रहने लगा। श्रावक धर्म का पालन करते हुए बहुत अनुकम्पा की। इनकी यह प्ररूपणा शास्त्र विरुद्ध है। टीका के प्रमाण से भी पहले बतला दिया गया है कि क्रोधित होकर हिंसक के मारणार्थ दौडने मे चुल्णी पिता का व्रत नष्ट हुआ था माता की अनुकम्पा से नहीं क्योंकि व्रत पोषध के समय श्रावक को हिंसा का त्याग होता है अनुकम्पा का त्याग नहीं होता अत हिंसा के भाव आने से ही व्रत भंग हो सकता है अनुकम्पा के भाव आने मे नहीं। भीषण जी ने सामायक और पोषध के समय अग्नि सर्पादिका भय होने पर जयणा के साथ निकल जाने की आज्ञा दी है। जैसे कि उन्होंने लिखा है—

"लाय सर्पादिकरा भयथकी, जयणासूं निसर जाय जी। राख्या ते द्रव्य ले जावता सामाइरो भग न थाय जी पोषाने सामायक व्रतना सरीखा छै पच्चक्खाणजी पोषाने सामायक व्रत मे, या दोया में सरीखा आगारजी" (श्रावक धर्म विचार नवम व्रत की ढाल)

इस ढाल मे भीषणजी ने यह आज्ञा दी है कि "अग्नि सर्पादिका भय होने पर श्रावक यदि जयणा के साथ निकल जाय तो उसका व्रत नष्ट नहीं होता।"

यदि सामायक और पौषध के समय अनुकम्पा करना बुरा है तो अग्नि सर्पादिका भय होने पर श्रावक जयणा के साथ कैसे निकल सकता है? क्योंकि यह भी तो अपने ऊपर अनुकम्पा ही करता है। यदि कहो

चुल्लणी पिता ने उस सब देखी हुई घटना का विवरण सुनाया। माता ने कहा "पुत्र! इसप्रकार और यहाँ कोई भी मनुष्य आया नहीं। और न किसी ने तेरे पुत्रों को मारा या कष्ट दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तूने कोई भयानक स्वप्न देखा है और इसी कारण तू अपने व्रत नियम पौषध से चलित हो गया है। इसलिए तू उसकी आलोचना कर और फिर से उसको स्वीकार कर। जिस तरह तू पूर्व में रहता था उसी तरह रह।

आने से व्रत नियम और पौषध भंग होना नहीं कहा है अतः चुल्लणी पिय के हृदय में मातृ रक्षा के भाव आने से और मातृ रक्षार्थ प्रवृत्त होने से उसके व्रत नियम और पौषध का भंग बताना भूल है।

भीखण जी ने माता की अनुकम्पा करने से चुल्लणी पिय का व्रत भंग होना कहा है। जैसे—

"हिम सुणनै चुल्लणी पिया, कह्यो माने राखण रो करे उपाय रे।
कोलो पुरुष कमायो कर जिसो झाल राखूं ज्यों न करे घात रे।
दीठा भद्रा कचपच ऊठियो इसरे खाम्भो आयो हाथ रे।
अनुकम्पा माणी जननी तणी, तो भांग्या व्रत ने नेम रे।
देखो मोह अनुकम्पा पहली लिम मैं कर्म बहीजे केम रे।"
(अनुकम्पा विचार ढाल ७ कड़ी १५)

इसके कहने का भाव यह है कि किसी मरते प्राणी की प्राणरक्षार्थ अनुकम्पा करना मोह अनुकम्पा है। चुल्लणी पिय ने माता की रक्षा के लिये अनुकम्पा की थी इसी से उसका व्रत भंग हुआ क्योंकि वह मोह

ऐसा विचार करके गृह कार्य का भार, अपने बड़े लडके को सौंप दिया और आप—इस ओर से स्वतन्त्र हो—श्रावक की ग्यारह प्रतिज्ञाएँ स्वीकार कर, पौपध-शाला मे धर्म कार्य करते हुए रहने लगा। बहुत दिनों तक तन-मन से धर्म की आराधना करता रहा। अन्त में, उसने सन्थारा (संलेखना) कर लिया— अर्थात्, समस्त खाद्य पदार्थों को

सुनाया। यह सुन कर धन्ना ने कहा कि हे देवानुप्रिय ! किसी ने भी तुम्हारे ज्येष्ट पुत्र से लेकर यावत् कनिष्ट पुत्र को नहीं मारा है और कोई भी तुम्हारे शरीर में एक ही साथ सोलह रोग नहीं डाल रहा था किन्तु यह किसी ने तुम्हारे ऊपर उपसर्ग किया है। शेष बातें चूर्णीप्रिय की माता के समान धन्ना ने अपने पति से कही। अर्थात् "तुम्हारा व्रत नियम और पौपध इस समय भग हो गये" यह धन्ना ने अपने पति से कहा।

यहाँ मूलपाठ में चूर्णी प्रिय श्रावक के समान ही सुरादेव श्रावक का व्रत नियम और पौपध भग होना कहा गया है अत उनसे पूछना चाहिये कि "सुरादेव का व्रत नियम और पौपध क्यों भग हुए"?। सुरादेव ने अपनी अनुकम्पा की थी दूसरे की नहीं की थी, और अपनी अनुकम्पा से व्रत नियम और पौपध का भग होना भीषण जी ने भी नहीं माना है फिर सुरादेव के व्रत नियम और पौपध भग होने का क्या कारण है?। यदि कहो कि सुरादेव के व्रत नियम और पौपध अपनी अनुकम्पा के कारण नहीं नष्ट हुए किन्तु अपराधी को मारणार्थ क्रोधित होकर दौडने मे नष्ट हुए तो फिर यही बात चूर्णी प्रिय श्रावक के विषय

समय व्यतीत हो चुकने पर एक दिन उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह सांसारिक धन वैभव तो यहीं रह जायेगा साथ न जायेगा। साथ तो केवल धर्म ही जायेगा। इसलिए मुझे उचित है कि मैं सब स्वजन सम्बन्धियों के सम्मुख घर-गृहस्थी का भार अपने बड़े लड़के को सौंप—पौषध-शाला में रहता हुआ—आत्मा का, निरन्तर धर्म चिन्तन में लगा दूं। अब मेरे लिए, ऐसा ही करना श्रेयस्कर है।

कि अपने पर अनुकम्पा करने से व्रत भंग नहीं होता किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा करने से होता है इस लिये सामायक और पौषध में अपनी अनुकम्पा के लिये उपमा के साथ निकल जाने में कोई दोष नहीं है तो फिर सुरादेव का व्रत भंग क्यों हुआ था क्योंकि उसने किसी दूसरे पर अनुकम्पा नहीं करके अपने पर अनुकम्पा की थी। देखिये वह पाठ यह है—

"तएणं से सुरादेव समणोवासए धन्नं भारियं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए ! केवि पुरिसे तहेव कहेइ जहा चुलणी पिया। धन्नावि पडिभणइ—जाव कणीयसं नो खलु देवाणुप्पिया! तुब्भेकेऽवि पुरिसे सरीरं सि जमगं समगं सोलस रोगायंके पक्खिवइ। एसणं केवि पुरिसे तुब्भं उवसग्गं करेइ सेसं जहा चुलणी पियस्स तहा भणइ" (उपासक दशांग अ० ४)

इसके अनन्तर उस सुरादेव श्रमणोपासक ने धन्ना नामक अपनी भार्या से अपना सारा वृत्तान्त चूलणी पिता श्रावक के समान ही कह

कृतज्ञता-प्रदर्शन

जीवन-ग्रंथ माला की लोकप्रियता का इससे अधिक प्रमाण क्या होगा कि अनेक धर्म भाव प्रेमी महानुभाव 'माला' से प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के छपने के पूर्व ही ग्राहक हो जाते हैं। ग्रंथमाला की ओर से हम ऐसे महानुभावों की नामावली देते हुए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। इसके साथ ही हम अन्य धर्मप्राण महानुभावों से भी प्रार्थना करते हैं कि दया दान द्वारा सत्साहित्य के प्रचार में वे हमारा हाथ बटावें जिससे हम सेवा करने में अधिकाधिक योग दे सकें। कम से कम २५ पुस्तकें एक साथ लेने वाले सज्जन का शुभनाम हम इस लिस्ट में देंगे।

श्रीमान्	सेठ	ज्ञानमलजी गोदावत	छोटी सादडी
"	"	रिखबदासजी नथमलजी नलवाया	छोटी सादडी
"	"	गुमानमलजी पृथ्वीराजजी नाहर	छोटी सादडी
"	"	चम्पालालजी कोठारी	चुरू
"	"	धनपतसिंहजी "	चुरू
"	"	भँवरलालजी रूपावत	जावद
"	"	माणकचन्दजी डागा	बीकानेर
"	"	सिरेमलजी जौरीमलजी लोढा	अजमेर
"	"	श्रीचन्दजी सब्याणी	ब्यावर
"	"	तनसुखदासजी दूगड	सरदारशहर
"	"	खूबचन्दजी चण्डालिया	सरदारशहर
"	"	नथमलजी दस्साणी	बीकानेर
"	"	हीरालालजी सिंघी	बीकानेर
"	"	अनंदराजजी सुराणा	एशियन एश्युरेन्स कंपनी दिल्ली

त्याग कर, धर्म के लिये शरीर उत्सर्ग कर दिया। समाधि में रहते हुए काल धर्म पाकर वह सौधर्म कल्प के अरुणाभविमान में देवता को प्राप्त हुआ। वहां से वह महाविदेहक्षेत्र पाकर वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेगा।

में भी उसको मानना चाहिये। चूलणी पिता और सुरादेव के सम्बन्ध में आये हुए पाठों में बिल्कुल समानता है केवल भेद इतना ही है कि चूलणी पिता ने अपनी माता पर अनुकम्पा की थी और सुरादेव ने अपने ऊपर की थी। यदि माता के ऊपर अनुकम्पा करने से चूलणी पिता का व्रत भग्न होना मानते हो तो फिर सुरादेव का अपने पर अनुकम्पा करने से व्रत भंग मानना पड़ेगा और जैसे चूलणी पिता की मातृ अनुकम्पा को सावद्य कहते हो उसी तरह सुरादेव की अपनी अनुकम्पा को भी सावद्य कहना होगा ऐसी दशा में भीखण जी ने उक्त पाठ में सामायिक और पौषध में अपने पर अनुकम्पा करके अग्नि सर्पादि के भय से बचने के लिए उपाय के साथ पद विचार करने की आज्ञा दी है वह बिल्कुल मिथ्या सिद्ध होगी अतः अपनी अनुकम्पा को उक्त मतानुयायी सावद्य नहीं कह सकते अतः जैसे सुरादेव की अपनी अनुकम्पा सावद्य नहीं थी और उससे व्रत नियम तथा पौषध भग्न नहीं हुए थे उसी तरह चूलणी पिता की भी माता के ऊपर अनुकम्पा सावद्य नहीं थी और उससे उनके व्रत नियम भग्न नहीं हुए थे इसलिये चूलणी पिता का उदाहरण देकर अनुकम्पा को सावद्य बतलाना भूल है।
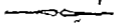
॥ वन्दे वीरम् ॥

जगद्वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित रत्न मुनि
श्री चौथमलजी महाराज साहेब के अपने शिष्य
समुदाय सहित चित्तौड़गढ़ पधार कर श्री
महावीर जयन्ति करने की खुशी
में भेंट।

चुनिन्दा-भजन

प्रयोजक —

मुनि श्री मन्नालालजी महाराज

प्रकाशक —
कंवर श्री मनोहरलालजी, पटवारी,
चित्तौड़ (मेवाड़)

पंचमावृत्ति १००० | अमूल्य भेंट | वीराब्द २४६६ विक्रमाब्द १९९७

जुनिन्दा-भजन

नम्बर १

[तर्जः—छोटा सा बलमा मोरे आंगना में गिल्ली खेले]

ऋषभ कन्हैया लाला आंगना में रुम भुम खेले।
अखियन का तारा प्यारा, आंगना में रुम भुम खेले ॥ टेक ॥
इन्द्र इन्द्रानी आई प्रेम धर गोदी में लेवे।
हंसे रमावे करे प्यार, दिल की रलियां रेले ॥ १ ॥
रत्न पालनिये माता, लाल ने झुलावे झुले।
करे लल्ला से अति प्यार, नहीं वो दुरी मेले ॥ २ ॥
स्नान कराई माता, लाल ने पहिनावे झेले।
गले मोतियन का हार, मुकट सिर पर मेले ॥ ३ ॥
गुरु प्रसादे मुनि चौथमल यों सब से बोले।
नमन करो हर बार वो तीर्थंकर पहिले ॥ ४ ॥

नम्बर २

[तर्जः—दर्दे दिल]

तुम कहो परमात्मा मिलते नहीं।
सच्चे दिल से आप भी रटते नहीं ॥ टेक ॥
दुनियां की मोहब्बत में फंसे हो वे तरह।
जुल्म करने से कभी टलते नहीं ॥ १ ॥
नशा पीना ताना कशी में पास हो।
नेक रास्ते पर कभी चलते नहीं ॥ २ ॥
इबादत तस्बी फिराते प्रेम बिन।
दगा बाजी से कभी बचते नहीं ॥ ३ ॥
चौथमल कहे किस तरह होगा भला।
ज़ईफी में भी अमल करते नहीं ॥ ४ ॥

चौथमल कहे सुनो प्यारे, लगाओ वीर शब्द के नारे ।
होजा आतम का उद्धार, पधारे० ॥ ५ ॥

नम्बर ५

[तर्जः—कैसे फैशन में आशिक हैं जलते हुए]

सारी दुनियां में इन्सान सरदार है ।
मिलना हरवक्त तुम को यह दुश्वार है ॥ टेक ॥
देवप्रिय बताया प्रभु वीर ने ।
मिलना दुर्लभ जिताया प्रभु वीर ने ।
जौहरी हीरे के होते कदर दार हैं ॥ १ ॥
बेशकीमत समय यह मिले न कभी ।
यह उजड़ा चमन फिर खिले न कभी ।
गर धर्म शास्त्र पर जो एतबार है ॥ २ ॥
फर्ज अपना बजाकर तरक्की करो ।
सच्चे दिल से धर्म की उन्नति करो ।
स्वर्ग अपवर्ग की गर जो दरकार है ॥ ३ ॥
सख्त दिल कर किसी को सताओगे तुम ।
बाज बदकाम से गर न आओगे तुम ।
समझो दोजख में गुर्जों की भरमार है ॥ ४ ॥
चौथमल की नसीहत सुनो जन सभी ।
तुम तो दरिया में प्यासे न रहना कभी ।
मुक्ति-जाने का समझो यही द्वार है ॥ ५ ॥

नम्बर ६

[तर्ज.—कव्वाली]

अगर जिनदेव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता ।
तो इस संसार सागर से, तेरा उद्धार हो जाता ॥ टेक ॥
न होती जगत में ख्वारी, न बढ़ती कर्म बीमारी ।
जमाना पूजता सारा, गले का हार हो जाता ॥ १ ॥

नम्बर ३

[तर्ज़ः—कैस फैशन में आशिक हैं मरते हुए]

बन्धुओं वक्त आता किधर ध्यान है ?

चन्द दिन का यहां पे तू मेहमान है ॥ टेक ॥

वीर विक्रम रावण थे कंस बली ।

न हुकूमत कज़ा पे किसी की चली ।

धनी निर्धन भी होते परेशान हैं ॥ १ ॥

समय मात्र का प्रमाद कीजे नहीं ।

दम टूटे पे हरगिज़ जुड़ेगी नहीं ।

वीर भगवान् का ये सच्चा फरमान है ॥ २ ॥

नींद गफलत की तज के धरम कीजिये ।

बुरे कामों से हर दम शरम कीजिये ।

मान कुपाप माभिन्न इन्सान है ॥ ३ ॥

हाथरस चौथमल का है आना हुआ ।

वीर सन्देश सब को सुनाना हुआ ।

होता सत् धर्म से सब का कल्याण है ॥ ४ ॥

नम्बर ४

[तर्ज़ः—तेरे पूजन को भगवान् बना मन मन्दिर आलीशान]

करने भारत का कल्याण पधारे वीर प्रभु भगवान् ॥ टेक ॥

जन्मे सिद्धार्थ के घर में त्रिशला देवी के उदर में ।

सुरगण गाया मंगल गान पधारे० ॥ १ ॥

छाया पापों का अन्धकार भारती मात की भयी पुकार ।

प्रकटे दिव्य शक्ति कोई आन पधारे० ॥ २ ॥

हिंसा झूठ अवश्य निवारो अहिंसा परम धर्म को धारो ।

कीना दुखियों को धनवान पधारे० ॥ ३ ॥

मुक्ति गुलशन जैन सिखाया सिंचन कर हर सब्ज़ बनाया ।

महकते धर्म पुष्प अति महान पधारे० ॥ ४ ॥

नम्बर ८

[तर्ज़ः—मैं पिया मिलन के काज आज जोगन वन जाऊँगी]

नर कर उस दिन की याद कि, जिस दिन चल २ होगी। टेक॥

तू जोड़ जोड़ कर धरे, वस्तु तेरी कोई नहीं होगी।

जब आवें यम के दूत, नगर में खल बल खल होगी ॥ १ ॥

सब भरे रहे भंडार, नार तेरी संगी नहीं होगी।

काठी के लिये दो बांस, ओढ़ने को मलमल होगी ॥ २ ॥

ले जाते हैं श्मशान, चिता सोने के लिये होगी।

झट देंगे अग्नि लगाय, राख तेरी जल-जल जल होगी ॥ ३ ॥

तू भली बुरी जो करे, पूंछ सब पर भव में होगी।

यों कहता है भूदेव, कर्म गति पल पल पल होगी ॥ ४ ॥

नम्बर ६

[तर्ज़ः—पहलू में यार है मुझे इसकी खबर नहीं]

मर्दों को धर्म काम में डरना नहीं अच्छा।

नामर्द से उम्मीद का, करना नहीं अच्छा ॥ टेक ॥

क्या ग़म प्रचार धर्म में, गर जान भी जाये।

बद रस्म और बद काम में, मरना नहीं अच्छा ॥ १ ॥

—मी का खूब है, जिससे हो फैज़ आम।

मक्खी चूंस का, बढ़ना नहीं अच्छा ॥ २ ॥

है यह, शैतान की हरकत।

जवां देके, मुकरना नहीं अच्छा ॥ ३ ॥

सोच लो, हर काम का अंजाम।

. धर के, हटाना नहीं अच्छा ॥ ४ ॥

मचन्द्र ने, करके दिखा दिया।

से, झगड़ना नहीं अच्छा ॥ ५ ॥

नम्बर १०

[तर्ज़ः—नाटक]

कर महावीर प्यारे।

रोशनी ज्ञान की खिलती दीवाली दिल में हो जाती ।
हृदय मंदिर में भगवान का, तुझे दीदार हो जाता ॥ २ ॥
परेशानी न हैरानी वृथा हो जाती मस्तानी ।
धर्म का प्याला पी लेता, तो बेड़ा पार हो जाता ॥ ३ ॥
ऊर्मी का बिस्तरा होता, व चादर आसमां बनता ।
मोक्ष गद्दी पर फिर प्यार तेरा घरबार हो जाता ॥ ४ ॥
चढ़ाते देवता तेरे चरण की धूल मस्तक पर ।
अगर जिनदेव की भक्ति में मन इकतार हो जाता ॥ ५ ॥
राम जपता अगर माला का मनका एक भक्ति से ।
तो तेरा घर ही मुक्ती के लिये दरबार हो जाता ॥ ६ ॥

नम्बर ७

[तर्ज़—ग़ज़ल]

खिदमते धर्म पर जो कि मर जायेंगे ।
नाम दुनियां में रोशन वो कर जायेंगे ॥ टेक ॥
जैसे कर्म करेंगे वहीं जायेंगे ।
यह न पूछो कि मर कर किधर जायेंगे ॥ १ ॥
आप दिखला रहे हो किसे ठुकराइयां ।
यह नशे यह सभी जो उतर जायेंगे ॥ २ ॥
टूट जाये न माला कहीं प्रेम की ।
वरना अनमोल मोती बिखर जायेंगे ॥ ३ ॥
जो मखलूकों को छाती लगा लिजियो ।
वरना यह लाल गैरों के घर जायेंगे ॥ ४ ॥
गर खयाल रहो मरहम प्रेम की ।
एक दिन यह ज़ख्म उनके भर जायेंगे ॥ ५ ॥
मानो मानो न मानो खुशी आप की ।
हम मुसाफिर यूं कह कर चले जायेंगे ॥ ६ ॥

बिन अपराध मारते हैं, छुरियों से काटते हैं।
छुड़ाना छुड़ाना छुड़ाना मोहनरे ॥ २ ॥
हिंसा जो बढ़ रही है, दया जो घट रही है।
पिलाना ३ मोहनरे, फिर जाम दया का पिलाना मोहनरे ॥ ३ ॥
दुनियां जो सो रही है, पाप बीज बो रही है।
जगाना ३ मोहनरे, भारत को फिर से जगाना मोहनरे ॥ ४ ॥
कहे मोहन, मोहन ! आज सुरतियां बताजा।
बताजा ३ मोहनरे, प्यारी सुरतियां बताजा मोहनरे ॥ ५ ॥

नम्बर १३

[तर्ज़ — पहलू में यार है मुझे उस की]

सत्य बात के कहे बिना, रहा नहीं जाता।
बगुले को हंस हम से बताया नहीं जाता ॥ टेक ॥
मिलता है राज्य तख्त छत्र, एक धर्म से।
अधर्म से मिले सुख, सुनाया नहीं जाता ॥ १ ॥
अमृत के पीने से मरे, जीवे जो ज़हर से।
यह आग के बीच बाग, लगाया नहीं जाता ॥ २ ॥
दुनियां भी अगर लौट जा, अफसोस कुछ नहीं।
एरड को कल्प वृक्ष, बताया नहीं जाता ॥ ३ ॥
कहे चौथमल दिल बीच जरा, गौर तो करो।
तारे की ओट चन्द्र, छिपाया नहीं जाता ॥ ४ ॥

नम्बर १४

[तर्ज़ — कव्वाली]

न इज़्ज़त दे न अज़मत दे, न सूरत दे न सीरत दे।
वतन के वास्ते भगवन् मुझे मरने की हिम्मत दे ॥ टेक ॥
जो रगबत दे वतन की दे, जो उल्फत दे वतन की दे।
मेरे दिल में वतन के ज़र्रे-ज़र्रे की मोहब्बत दे ॥ १ ॥
न दौलत दे न दे पुरजोश, दिल शौके शहादत दे।

वह अपना हमको दिया पार प्यारे ॥ टेक ॥
सुनाया था जो ज्ञान गोतम मुनि को।
वही ज्ञान हमको सुना वीर प्यारे ॥ १ ॥
तिराया था अर्जुन सा पापी तुम्हीं ने।
हमें भी तिरादो महावीर प्यारे ॥ २ ॥
जो जकड़ी परस्पर है सन्तान तेरी।
इन्हें प्रेम करना सीखा वीर प्यारे ॥ ३ ॥
गफलत में सोये सभी हिन्दवासी ।
इन्हें आप आकर जगा वीर प्यारे ॥ ४ ॥
जैन कौम पाछे हटी जा रही है ।
इसे उन्नति पर लगा वीर प्यारे ॥ ५ ॥
करें अर्ज स्वामी से केवल मुनी ।
हमें पास अपने बुला वीर प्यारे ॥ ६ ॥

नम्बर ११

[तर्ज—पायल की झनकार कोयलियाँ काहे करत पुकार]
सतगुरुजी समझाय उमरिया बीती तेरी जाय ॥ टेक ॥
सन्ध्या राग स्वप्न की सृष्टि,छिन भर में बिरलाय ॥ १ ॥
धायुधन् आयु है चंचल स्थिर रहने की नाय ॥ २ ॥
अञ्जली नीर धार सरिता को रुकत हो ढल जाय ॥ ३ ॥
जग असार सार नहीं कुछ भी सार धर्म सुखदाय ॥ ४ ॥
कर शुभ काम नाम हो जग में चाथु मुनि सिख लाय ॥ ५ ॥

नम्बर १२

[तर्ज—सुनादे सुनादे सुनादे कृष्णा]
फिर आना फिर आना फिर आना मोहनरे
इन गौवों के प्राण बचाना मोहनरे ॥ टेक ॥
हजारों कट रही हैं प्रति दिन घट रही हैं ।
बन्धाना है मोहनरे इन दुखियों को धैर्य बन्धाना मोहनरे ॥१॥

इस माल औलाद जमीं के लिये।
कई बादशाह मार के मर भी गये।
यह मुल्क मेरा यूं कहते गये।
तो तू कौन सी बाग की मूली असर में ॥ ४ ॥
जो प्यारी के महल में रहते अमन में।
वो खाते हवा सदा बाग चमन में।
मुनि चौथमल कहे चेतो सज्जन।
जो ऐसे गये न समझते अजल में ॥ ५ ॥

नम्बर १६

[तर्जः—इधर भी नजर हो जरा बंशी वाले]

महावीर के हम सिपाही बनेंगे।
जो रक्खा कदम फिर न पीछे हटेंगे ॥ टेक ॥
सिखा देंगे दुनियां को शान्ति से रहना।
अहिंसा की बिजली नसों में भरेंगे ॥ १ ॥
लगायेंगे मरहम जो होवेंगे जख्मी।
सुखी करके जग को स्वयं दुःख सहेंगे ॥ २ ॥
कहीं जुल्म दुनियां में रहने न देंगे।
अगर सर कटेगा खुशी से मरेंगे ॥ ३ ॥
न घुड़ दौड़ में जग के पीछे रहेगें।
कसेंगे कमर और आगे बढ़ेंगे ॥ ४ ॥
अहिंसा के सेवक हैं हम सच्चे।
धर्म युद्ध में हम खुशी से लड़ेंगे ॥ ५ ॥
हमें राम सुख दुख की परवाह नहीं है।
अहिंसा का झण्डा लहरा कर रहेंगे ॥ ६ ॥

नम्बर १७

[तर्ज —विजयी विश्व तिरंगा प्यारा]

झण्डा ऊंचा रहे हमारा, जैन धर्म का बजे नगारा ॥ टेक ॥

जो रो उठे वतन के वास्ते, ऐसी तबियत दे ॥ २ ॥
मुझे मतलब नहीं हीरो, दरम से दीनों ईमां दे ।
वतन का प्यार दे शाने सदाकत दे सखावत दे ॥ ३ ॥
न दे सामान ऐशो इशरतें दुनिया में तू मुझको ।
ज़रूरत है मुझे इन्सानियत होने की नीयत दे ॥ ४ ॥
वतन की खाक पर कुर्बान होने की तमन्ना दे ।
जो देता और कुछ देता खुदा बन्दा शराफत दे ॥ ५ ॥
पिलादे आज व्याकुल को मय इश्के वतन साकी ।
कि पीकर मस्त हो जाऊं, इसे पीने की आदत दे ॥ ६ ॥

नम्बर १५

[तर्ज़—कोई ऐसी चतुर सखी नाम मिली]

क्यों गफ़लत के बीच में सोता पड़ा ।
तेरा जावेगा दम निकल एक पल में ।
यह तो दुनिया है एक मिसाले सराय ।
कभी उसकी बगल कभी उसकी बगल में ॥ टेक ॥
तू तो फिरता है आप दुलहा बन ठन ।
तेरे साथ चलती है कौन सजन ।
यहां किस से करे अपना लगपन ।
क्यों खोता है नाहक खाली कल कल में ॥ १ ॥
जो हिन्द के ताज को शीश धरे ।
जो लाखों करोड़ों का न्याय करे ।
वे राज्य को त्याग के फिरते फिरें ।
जो नूर से पूर थे तेज अकल में ॥ २ ॥
कहां पांडव कहां पृथ्वीराज चौहान ।
कहां बादशाह अकबर औरंगज़ेब ।
यह राज्य तख्त सदा न सजन ।
कभी उसके अमल कभी उसके अमल में ॥ ३ ॥

मे सार जहां का भला चाहता हूं ॥ ५ ॥

नम्बर १६

[तर्जः—जाओ जाओ ए मेरे ! साधु रहो गुरु के संग]

आये आये हैं जगदोद्धारक त्रिशलाजी के नन्द ॥ टेक ॥
स्वर्ग बना नरलोक, हो रहा घर घर हर्षानन्द।
मंगल मधुर गावें परियां, उत्सव कीना इन्द्र ॥ १ ॥
कंचन वरण केहरी लक्षण, सो है चरणार्विन्द ।
नैना निरखी मुदित हुए सब, प्रभु का मुखारविंद ॥ २ ॥
संयम ले प्रभु केवल पाया, सेवे सुरनर वृन्द ।
वाणी अमृत पीवे सब ही पावें मन आनन्द ॥ ३ ॥
अभयदान निर्वद्य वाक्य में, ज्योतिष में जो चन्द ।
तप में उत्तम ब्रह्मचर्य है, ऐसे वीर जिनन्द ॥ ४ ॥
कुंवर सुबाहु को निस्तारा, चौथा नृप फरजन्द ।
शालभद्र से भोगी को भी, किया देव अहमन्द ॥ ५ ॥
प्रभु को समरे प्रभुता पावे, मिट जावे दुख द्वन्द ।
चौथमल के, वरते परमानन्द ॥ ६ ॥

नम्बर २०

मन को भगवान् बना मन मंदिर आलीशान]
अवतार, हुआ घर-घर में मंगलाचार ॥ ध्रुव ॥
ता नगरी को, जन्मे चेत सुदी नवमी को ।
बोलो राम की जय नरनार ॥ हुआ० ॥ १ ॥
उजियारे, माता कौशल्या के प्यारे ।
कीना देवों ने जयकार ॥ हुआ० ॥ २ ॥
घर-घर में, प्रगटे भानु सम भारत में ।
करने सत्य धर्म परचार ॥ हुआ० ॥ ३ ॥
भारी, मानों खिल रही केसर क्यारी ।
हता चौथमल हर वार ॥ हुआ० ॥ ४ ॥

ऋषभदेव ने इसका रोपा । भरत चक्रवर्ती का सींचा ।
उनने इसका किया प्रसारा ॥ १ ॥
महावीर ने उस उठाया । भारत को सन्देश सुनाया ।
धर्म अहिंसा जग हितकारा ॥ २ ॥
गौतम गणधर ने अपनाया । अनेकान्त जग को समझाया ।
स्याद्वाद करके विस्तारा ॥ ३ ॥
हुआ कुमारपाल भोपाला । जैन तत्व को जिसने पाला ।
इस झण्डे का लिया सहारा ॥ ४ ॥
आज इसे मुनियों ने संभाला । भारत में करदिया उजाला ।
यही करेगा दश सुधारा ॥ ५ ॥
स्याद्वाद और दया धर्म की । मुनियाँ प्यासी इसी मर्म की ।
इसमें तत्व भरा है सारा ॥ ६ ॥
हम सब मिलकर के सेवेंगे । सारा जग नमते देखेंगे ।
चाहे हो बलिदान हमारा ॥ ७ ॥

नम्बर १८

[तर्ज़—इधर भी नजर हो जरा बंसी वाले]

ए महावीर स्वामी मैं क्या चाहता हूं ।
फ़कत आपका आसरा चाहता हूं ॥ टेक ॥
मिली तुमको पदवी जो निर्वाण पद की ।
कि तुम जैसा मैं भी हुआ चाहता हूं ॥ १ ॥
फंसा हूं मैं चक्कर में आवागमन के ।
अब इससे मैं छुटका रिहा चाहता हूं ॥ २ ॥
तमन्ना यही है यही आरज़ू है ।
अये भगवन् तुम्हें देखना चाहता हूं ॥ ३ ॥
दया कर दयालु दया चाहता हूं ।
क्षमा कर क्षमा कर क्षमा चाहता हूं ॥ ४ ॥
बताऊं तुम्हें और क्या चाहता हूं ।

वक्त पर धोखा देकर चले जायेंगे ॥ ५ ॥
स्वप्नसा है जगत् हम न लुभायेंगे।
चौथमल कहे अमर नाम कर जायेंगे ॥ ६ ॥

नम्बर २३

[तर्ज.—बिछुड़े की]

सत गुरुजी समझावे, तुझे चेतावे हो चेतन जी।
ज्ञानवान चेतनजी, पाया तुम उत्तम नर तन जी ॥ टेक ॥
इस ही मानुष जन्म से, तिरिया जीव अनेक।
तुम भी उत्तम काज कर, हृदय करी ने विवेक ॥
मत ना मुफ्त गुमाओ ध्यान में लाओ हो ॥ १ ॥
तू अविनाशी आप है, सत चित्त आनन्द रूप।
भौतिक धर्म में रांच के, क्यों पड़ता अन्ध कूप ॥
अनंतीवार दुख पाया जो ललचाया हो ॥ २ ॥
स्वय लच मोह को तजो, सजो धर्म का साज।
चपला ज्यों जीवन चपल, करो सफल निज काज ॥
क्यों गफलत में सोया वक्त को खोया हो ॥ ३ ॥
टोंक शहर के बीच में, चौथमल रहा टोक।
जाते उपट पथ्थ से, नर भव गाड़ी रोक ॥
शिव पथ में आप चलाओ सदा सुख पाओ हो ॥ ४ ॥

नम्बर २४

[तर्ज.—नर कर उस दिन की याद कि]

मन भजले तू भगवान् जिन्दगी तभी सफल होगी ॥ टेक ॥
तू सोता है मोह नींद सुद्ध जो तुझे नहीं नहीं होगी।
पत्थर के बदले रत्न फेंक आखिर वेकल होगी ॥ १ ॥
बालापन बीता खेल युवानी तिरिया मोह लेगी।
वृद्धापन धंधे में बीता तो बात विफल होगी ॥ २ ॥
[illegible] प्यासा रहे बात ये अचरज की होगी।

नम्बर २१

[तर्ज़—महावीर के हम सिपाही बनेंगे]

महावीर स्वामी तू है जग त्राता।
नहीं तेरा सानी का कोई दिखाता ॥ टेक ॥
तू निर्दोष सर्वज्ञ हितोपदेशी।
नहीं तेरे गुण का कोई पार पाता ॥ १ ॥
है सिद्धान्त तेरा अनेकान्त सुन्दर।
नहीं वादी कोई भी सरको उठाता ॥ २ ॥
पुरुष चाहे नारी जो शुद्ध धर्म धारे।
इसी भव में मुक्ति यहीं तू बताता ॥ ३ ॥
क्रिया एक धरम का है चारों वरण को।
कहा नर मुनि हो तो मुक्ति सिधाता ॥ ४ ॥
कोई चौथमल जो शरण तेरा आता।
अनायास भव सिन्धु से पार पाता ॥ ५ ॥

नम्बर २२

[तर्ज़—महावीर के हम सिपाही बनेंगे]

बिन किये धर्म के नर जो मर जायेंगे।
नाम दुनिया से वो खुद मिटा जायेंगे ॥ टेक ॥
आप दुनिया में एक दिन अवश्य आयेंगे।
है खबर ये कहाँ कब कि मर जायेंगे ॥ १ ॥
जीव जैसा करेंगे वहीं जायेंगे।
यह न मालूम कि मर कर किधर जायेंगे ॥ २ ॥
अच्छे कर्म करेंगे सुगत पायेंगे।
वरना परभव में जाकर के पछतायेंगे ॥ ३ ॥
बिना दिये कर्ज के नर जो मर जायेंगे।
लेने वाले करज के चले आयेंगे ॥ ४ ॥
पुत्र पुत्री या औरत यह बन जायें—

वक्त पर धोखा देकर चले जायेंगे ॥ ५ ॥
स्वप्नसा है जगत् हम न लुभायेंगे ।
चौथमल कहे अमर नाम कर जायेंगे ॥ ६ ॥

नम्बर २३

[तर्ज.—विछुड़े की]

सत गुरुजी समझावे, तुझे चेतावे हो चेतन जी ।
ज्ञानवान चेतनजी, पाया तुम उत्तम नर तन जी ॥ टेक ॥
इस ही मानुष जन्म से, तिरिया जीव अनेक ।
तुम भी उत्तम काज कर, हृदय करी ने विवेक ॥
मत ना मुफ्त गुमाओ ध्यान में लाओ हो ॥ १ ॥
तू अविनाशी आप है, सत चित्त आनन्द रूप ।
भौतिक धर्म में रांच के, क्यों पड़ता अन्ध कूप ॥
अनंतीवार दुख पाया जो ललचाया हो ॥ २ ॥
स्वय लक्ष मोह को तजो, सजो धर्म का साज ।
चपला ज्यों जीवन चपल, करो सफल निज काज ॥
क्यों गफलत में सोया वक्त को खोया हो ॥ ३ ॥
टोंक शहर के बीच में, चौथमल रहा टोक ।
जाते उपट पथ्य से, नर भव गाड़ी रोक ॥
शिव पथ में आप चलाओ सदा सुख पाओ हो ॥ ४ ॥

नम्बर २४

[तर्ज.—नर कर उस दिन की याद कि]

मन भजले तू भगवान् जिन्दगी तभी सफल होगी ॥ टेक ॥
तू सोता है मोह नींद सुध जो तुझे नहीं नहीं होगी ।
पत्थर के बदले रत्न फेंक आखिर बेकल होगी ॥ १ ॥
बालापन बीता खेल युवानी तिरिया मोह ले
वृद्धापन धंधे में बीता तो बात विफल होगी
गंगामें प्यासा रहे बात ये अचरज की

नम्बर २१

[तर्ज—महावीर के हम सिपाही बनेंगे]

महावीर स्वामी तू है मुक्ति दाता।
नहीं तेरी शानी का कोई दिखाता ॥ टेक ॥
तू निर्दोष सर्वज्ञ हितोपदेशी।
नहीं तेरे गुण का कोई पार पाता ॥ १ ॥
है सिद्धान्त तेरा अनेकान्त सुन्दर।
नहीं वादी कोई भी सरके ठहरता ॥ २ ॥
पुरुष चाहे नारी जो शुद्ध धर्म धारे।
इसी भव में मुक्ति वहीं तू बताता ॥ ३ ॥
दिया हक धरम का है चारों वरण को।
कहा नर मुनि हो तो मुक्ति सिधाता ॥ ४ ॥
कहे चौथमल जो शरण तेरा आता।
अनायास भव सिन्धु से पार पाता ॥ ५ ॥

नम्बर २२

[तर्ज—महावीर के हम सिपाही बनेंगे]

बिन किये धर्म के नर जो मर जायेंगे।
नाम दुनिया से वो खुद मिटा जायेंगे ॥ टेक ॥
आप दुनियाँ में एक दिन अवश्य आयेंगे।
न खबर ये कहाँ कब कि मर जायेंगे ॥ १ ॥
जीव जैसा करेंगे वहीं जायेंगे।
यह न मालूम कि मर कर किधर जायेंगे ॥ २ ॥
अच्छे कर्म करेंगे सुगत पायेंगे।
पापी परभव में जाकर के पछतायेंगे ॥ ३ ॥
बिना दिये दान के नर जो मर जायेंगे।
लेने वाले कर्ज के चले आयेंगे ॥ ४ ॥
पुत्र पुत्री या दौलत यहाँ रह जायेंगे।

न फूलो गरीबों का तुम दिल दुखाकर ।

यह कुछ सागिरे खसरो वाना नहीं है ॥ ४ ॥

तुम्हारी जमी पर हमारे लिये क्या ।

कहीं एक गज भर ठिकाना नहीं है ॥ ५ ॥

फना होना जिसको बका कौनसी है ।

किसे आके दुनियां से जाना नहीं है ॥ ६ ॥

नम्बर २७

[तर्ज —गायन]

त्रशला दे महतारी, तुमको लाखों प्रणाम ।
शुद्ध समकित धारी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ टेक ॥
महावीर सा नन्दन जाया, देवी देव मिल हर्ष मनाया ।
रत्न कूख की धारी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ १ ॥
पशु बलि होता अटकाया, जीवों का अज्ञान हटाया ।
ऐसा प्रभु जननारी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ २ ॥
इन्द्रभूतिजी को समझाया, गणधर अपना खास बनाया ।
उनकी जन्म दातारी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ३ ॥
ममता तज संथारो धारी, द्वादश में सुरलोक सिधारी ।
विदेह मोक्ष जानारी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ४ ॥
मदनगंज छियानवे मांह, हीर जयंति खूब मनाई ।
कहे चौथमल बलिहारी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ ५ ॥

नम्बर २८

[तर्ज --महावीर के हम सिपाही बनेंगे]

उठो जैन बन्धु जगाना पड़ेगा ।
अहिंसा का झण्डा उठाना पड़ेगा ॥ टेक ॥
सभी फिरकों में जैन सर्वोपरि है ।
तुम्हें इसका जलवा दिखाना पड़ेगा ॥ १ ॥
श्वेताम्बर दिगम्बर में जो फिरका बंदी ।

नर तन से बढ़ा धन नहीं तो अकल विकल होगी ॥ ३ ॥
चले पुण्य पाप तेरे साथ सदा नेकी यहां रहेगी ।
कहे चौथमल तप त्याग से तेरी मोक्ष कुशल होगी ॥ ४ ॥

नम्बर २५

[तर्ज़—एक तार फेंकता था तिरछी कमान वाले]
एक घर में दो बिरादर किस्मत जुदा जुदा है ।
तख्ते नशीन है एक एक खाक पर पड़ा है ॥ टेक ॥
एक नीर के घड़े दो भर कूप से निकाले ।
एक नालियों में डाला एक शिव के सिर चढ़ा है ॥ १ ॥
इस्तीप गुल भी देखो आते हैं इक बाज़ार में ।
पांवों तले रुंधा इक एक ताज में लगा है ॥ २ ॥
एक खान से दो पत्थर निकले ज़मीं से बाहर ।
एक खा रहा है ठोकर अवतार इक बना है ॥ ३ ॥
सन्दल के दो हैं टुकड़े किस्मत का फर देखो ।
एक बन गई है माला एक आग में जला है ॥ ४ ॥
तकदीर के यह रंग हैं क्या ही अजब फकीरा ।
एक हुक्म दे रहा है एक दार पे चढ़ा है ॥ ५ ॥

नम्बर २६

[तर्ज़—इधर भी नज़र हो ज़रा बंसी वाले]
सदा एक जैसा ज़माना नहीं है ।
गरीबों का अच्छा सताना नहीं है ॥ टेक ॥
न समझो कि तुम जैसी दुनियां है सारी ।
है यह भी जो खाने को दाना नहीं है ॥ १ ॥
गरीबों के नालों में है दर्द पैदा ।
यह सुनने को दिल क्या तराना नहीं है ॥ २ ॥
अरे हृदय वालों न उनको सताओ ।
जिन्हें रहने को आशियाना नहीं है ॥ ३ ॥

सभी भेद भाव अब मिटाना पड़ेगा ॥ २ ॥
छूआछूत की तज के सारी बिमारी।
सदा प्रेम सबको बढ़ाना पड़ेगा ॥ ३ ॥
अनेकान्त का यह तना शामियाना।
सभी इसकी छाया में आना पड़ेगा ॥ ४ ॥
कहे चौथमल अब तजो फूट सारी।
रखो प्रेम से अब सुहाना पड़ेगा ॥ ५ ॥

नम्बर २६

(तर्ज़ः – गायन)

देवी विश्व विख्यात तुमको लाखों प्रणाम।
धन्य धन्य सीता माता तुमको लाखों प्रणाम ॥ टेक ॥
धर्म पतिव्रत पूर्ण निभाया अग्नि का जल शीत बनाया।
जग सारा यश गाता तुमको लाखों प्रणाम ॥ १ ॥
लेते नाम राम के पहले पाला धर्म कष्ट सब झेले।
राम चरित दर्शाता, तुमको लाखों प्रणाम ॥ २ ॥
जिन जिन ने यह धर्म निभाया उनके दुःखा सभी भग जाया।
सुर नर शीश नमाता तुम को लाखों प्रणाम ॥ ३ ॥
किशनलाल किशनगढ़ मांही महिमा सोहन मुनि ने गाई।
सुक्ख मुनि गुण गाता तुमको लाखों प्रणाम ॥ ४ ॥

* ध्यान *

श्रमण भगवन्त श्री महावीर, मनोहर सम्पूर्ण हरियो पीर।
श्रमण उद्धारण श्री अरिहन्त पतित पावन नम भगवन्त ॥
ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

आदर्श-रामायण

[रचयिता—जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी म०]

इस वृहद् ग्रन्थ में भगवान रामचन्द्र का आद्योपान्त जीवन श्री राधेश्याम की तर्ज़ में तथा मनोहर चौपाइयों में आधुनिक ढंग से वर्णन की गई है। यह पुस्तक जैन समाज में बिल्कुल नई चीज़ है। बढ़िया एन्टिक पेपर पर सुन्दर नये टाइपों की छपाई और पक्की जिल्द से सुसज्जित होने के कारण इस पुस्तक की आत्मा खिल उठी है। प्रथमावृत्ति के प्रकाशित होते ही धड़ाधड़ आर्डर आ रहे हैं और प्रतियाँ हाथों हाथ जा रही हैं। आप भी अपनी प्रति के लिये शीघ्रता कीजिये। अन्यथा फिर द्वितीयावृत्ति के लिये आपको प्रतीक्षा करनी होगी। जो कि यथा सम्भव शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। मूल्य अजिल्द १) सजिल्द १।)

जैन जगत् के उज्ज्वल तारे

[ले०—साहित्यप्रेमी पंडितवर्य प० मुनि श्री प्यारचन्द्रजी महाराज]

जैन-जगत् सदियों से त्याग तपस्या और बलिदानों के लिए विख्यात रहा है। इस समाज में ऐसे-ऐसे तपोनिष्ठ त्यागी हो गये हैं जो संसार के गौरव माने जाते हैं। इस पुस्तक में इन्हीं खास विभूतियों की अनुपम जीवनियाँ संगृहीत हैं। ये जीवन-गाथाएं समाज में अपना विशेष स्थान पाए बिना न रहेंगी। भाषा सरल शैली सुन्दर, कहानी रोमाञ्चकारी तथा साहित्य सर्वथा नवीन है। इसी जोड़ की छपाई सफाई भी है। बढ़िया कागज़ पर छपी हुई इस अनुपम सचित्र पुस्तक को हाथ में लेते ही आप जैन जाति के एक सजीव गौरव को स्पर्श करेंगे। क्राउन साइज़। पृष्ठ संख्या १८४ चित्र संख्या ६ इतना सब कुछ होते हुए भी केवल प्रचार की दृष्टि से मूल्य मात्र ॥ आना।

पता—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम

ॐ
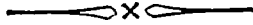
भक्तामर स्तोत्र

रचयिता—

श्री मानतुंगाचार्य
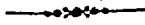
प्रकाशक—

श्री जैनोदय-पुस्तक-प्रकाशक समिति

रतलाम [मध्य भारत]

प्रथमावृत्ति २००० } मूल्य दो आने { विक्रमाब्द १९९९
वीराब्द २४६९

प्रकाशक—
मास्टर मिश्रीमल
ऑ मंत्री
श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक
रतलाम

निवेदन

इस भक्तामर स्तोत्र की रचना जैन धर्म के समर्थ आचार्य श्री मानतुङ्गाचार्य द्वारा हुई है। इस स्तोत्र में भगवान आदि-नाथ की स्तुति है। यह स्तुति महान् मगलमय और कल्याण कारी है। इस का नित्य पाठ करने से भव-भयों का विनाश होता है। यो तो हिन्दी में इस स्तोत्र की कुछ आवृत्तियाँ प्रकाशित भी हुई हैं। किन्तु इस संस्करण मे यह विशेषता है कि मूल संस्कृत श्लोक, शब्दार्थ, और भावार्थ, के साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा में भी इसका अनुवाद दे दिया गया है। जिससे हमारे पाश्चिमात्य देशों के अंग्रेजी विद्वान् भी इस चमत्कार पूर्ण स्तोत्र को पढ़ कर इससे यथोचित लाभ उठा सकें।

हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि पाठकगण इस पुस्तक को पढ़ कर अवश्य ही आत्मिक लाभ प्राप्त करेंगे। और प्रूफ सशोधन एवं मुद्रण आदि में जा त्रुटियां रही हो उन्हें सूचित करने की कृपा करेंगे ताकि आगामी संस्करण में समुचित सुधार कर दिया जाय।

—प्रकाशक

प्रकाशक—
मास्टर मिश्रीमल
ऑ० मंत्री
श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम

मुद्रक—
श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
रतलाम

श्री भक्तामर स्तोत्र
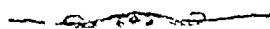
भक्तामर प्रणत मौलिमणि प्रभाणा,

मुद्योतक दलितपापतमो वितानम् ॥

सम्यक् प्रणम्य जिन पादयुग युगादा,

वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

शब्दार्थ-(भक्त)भक्तिमान् (अमर)देवता(प्रणत)झुके हुए (मौलि)मस्तक, मुकुट,(उद्योतक)प्रकाशित करने वाले,(दलित) नष्ट किया, (तम)अन्धकार, (वितान)समूह, (भवजल) संसार समुद्र में (युगादो)युग की आदि में,(आलम्बन) सहारा, पाद) पाव, (युगं दोनों,(सम्यक्)भली भाँति.(प्रणम्य)नमस्कार करके

अर्थ-भक्तिमान देवों के झुके हुए मुकुटों की मणियों की प्रभा को प्रकाशित करने वाले, पाप रूपी अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाले और संसार समुद्र में गिरते हुए मनुष्यों को युग की अर्थात् चतुर्थ काल की आदि में सहारा देने वाले श्री जिनदेव के चरण युगलों को भली भाँति नमस्कार करके।

English Translation — Duly and honourably bowing down at the lotus like feet of Shree Jindeva (आदिनाथ), which illuminates the luster of jewels of the crowns of devout gods, bent down (before Adinath in obeisance), destroys the great or spreading darkness of sin and supports, in the beginning of the age (कर्म युग), persons falling down into this ocean of world.

यः संस्तुतः सकलवाङ्मय तत्त्वबोधा-

बालं विहाय जलसंस्थित मिन्दु बिम्ब,
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

शब्दार्थ—(विबुध) देव, पण्डित, (अर्चित) पूजित, (पादपीठ) पैर रखने की चोकी, (a foot stool) (यहां) सिंहासन (बुद्ध्या) बुद्धि से, (विगत, चली गई, रहित (त्रप.) लज्जा (समुद्यत) उद्यत, तैयार (विहाय) छोड़ कर, (जलसंस्थितं) जल में रहा हुआ (इन्दु) चन्द्रमा (बिम्ब) प्रतिबिम्ब, छाया, (सहसा) एकाएक, (ग्रहीतु) पकड़ने को।

अर्थ—देवताओं ने जिसके सिंहासन की पूजा की है, ऐसे हे जिनेन्द्र ! बुद्धि के बिना ही लज्जा रहित हो कर मैं आप का स्तवन करने को उद्यत मति हुआ हूँ अर्थात् तैयार हुआ हूँ (सो ठीक है), क्यों कि बालक के सिवाय ऐसा अन्य कौन मनुष्य है जो जल में दिखाई देने वाले चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को एकाएक पकड़ने की इच्छा करता है ?

भावार्थ—जैसे मूर्ख बालक जल में पड़ी हुई चन्द्रमा की छाया को पकड़ना चाहता है उसी प्रकार मैं भी आपका स्तोत्र करने के लिये तैयार हुआ हूँ।

I am immodest and impudent, (as) I, though deficient in poetic genius, am intent on eulogizing you—you whose foot stool (throne) was worshipped and honoured by gods Who else than a child wants to catch hold of a shadow of the moon (seen) in water ?

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्क कांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोपि बुद्ध्या।

दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोक नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

शब्दार्थः–[वाङ्मय] (द्वादशांगी) वाणी युक्त (तत्त्व) रहस्य (बोधात्) ज्ञान से (उद्भूत) उत्पन्न हुई (पटु) प्रवीण (सुरलोक नाथ) देवलोक के स्वामी इन्द्र (त्रितय) तीन (चित्तहर) मन को लुभाने वाले (उदार) महान् (संस्तुतः) स्तुति की गई (किल) सचमुच (स्तोष्ये) स्तवन करता हूँ।

अर्थ–सम्पूर्ण द्वादशांग रूप जिनवाणी का रहस्य जानने से उत्पन्न हुई (जो) बुद्धि, उससे प्रवीण एस देवलोक के स्वामी इन्द्रों ने तीन लोक के चित्त का हरण करने वाले महान् स्तोत्रों के द्वारा जिनकी स्तुति की उन प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव जी का मैं सचमुच स्तवन करता हूँ।

भावार्थ–जिनकी स्तुति द्वादशांग वाणी के ज्ञाता इन्द्रों ने बड़े विशाल स्तोत्रों के द्वारा की है उन ही आदिनाथ भगवान का मैं सचमुच स्तोत्र करना प्रारम्भ करता हूँ।

This is indeed strange that I am bent on eulogizing the first Jinendra who was praised and worshipped by the rich and high Stotras, magnetising the hearts (of the persons) of the three fold world, (composed) by the lords of gods who are proficient in talent developed by the knowledge of the true and essential principles of the Supreme Dwadashangi (द्वादशांगी)

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित पादपीठ,
स्तोतुं समुद्यतमति र्विगतत्रपोऽहम् ।

बाल विहाय जलसंस्थित मिन्दु बिम्ब,
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥२॥

शब्दार्थः—(विबुध) देव, पण्डित, (अर्चित) पूजित, (पादपीठ) पैर रखने की चोकी, (a foot stool) (यहां) सिंहासन (बुद्धया) बुद्धि से, (विगत, चली गई, रहित (त्रप.) लज्जा (समुद्यत) उद्यत, तैयार (विहाय) छोड़ कर, (जलसंस्थितं) जल में रहा हुआ (इन्दु) चन्द्रमा (बिम्ब) प्रतिबिम्ब, छाया, (सहसा) एकाएक, (ग्रहीतुं) पकड़ने को।

अर्थ—देवताओं ने जिसके सिंहासन की पूजा की है, ऐसे हे जिनेन्द्र ! बुद्धि के बिना ही लज्जा रहित हो कर मैं आप का स्तवन करने को उद्यत मति हुआ हूँ अर्थात् तैयार हुआ हूँ (सो ठीक है), क्यों कि बालक के सिवाय ऐसा अन्य कौन मनुष्य है जो जल में दिखाई देने वाले चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को एकाएक पकड़ने की इच्छा करता है ?

भावार्थ.—जैसे मूर्ख बालक जल में पड़ी हुई चन्द्रमा की छाया को पकड़ना चाहता है उसी प्रकार मैं भी आपका स्तोत्र करने के लिये तैयार हुआ हूँ।

I am immodest and impudent, (as) I, though deficient in poetic genius, am intent on eulogizing you-you whose foot stool (throne) was worshipped and honoured by gods. Who else than a child wants to catch hold of a shadow of the moon (seen) in water ?

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्क कांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोपि बुद्धया।

कल्पान्तकालपवनोद्धत नक्र चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ– शशाङ्क चन्द्रमा (कान्तान्) कान्ति के समान (गुणान्) गुणों को (सुरगुरु) बृहस्पति (प्रतिमः) समान (कः) कौन समर्थ (कल्पान्त प्रलय उद्धत) उछलते हुए (नक्र) मगर (चक्र) मच्छ विशेष, घड़ियाल (अम्बु)जल। (निधि) खजाना, (अम्बुनिधिं) समुद्र, (भुजाभ्यां) भुजाओं से, (तरीतुं) तैरने के लिये (अलम्) समर्थ।

अर्थ–हे गुणों के समुद्र! सुन्दर चन्द्रमा की कान्ति के समान उज्ज्वल गुणों को कहने के लिये बुद्धि में बृहस्पति के समान भी कौन पुरुष (कवि है जो) समर्थ हो? (क्योंकि) प्रलय काल की आँधी से उछलते हुए मगर घड़ियाल जिसमें हों ऐसे समुद्र को भुजाओं से तैरने को कौन पुरुष समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं।

भावार्थ–जैसे प्रलयकाल के भयानक दुस्तर समुद्र को कोई भी भुजाओं से नहीं तैर सकता है। उसी प्रकार मैं भी आपके गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ।

O Ocean of Merits!

Who is able to describe your merits, as clear and shining as the light of the moon, even though he may equal Vrihaspati in talent? Who is able to swim an ocean full of porpoises and whales, tossed upwards by the tempest of deluge?

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।

प्रीत्यात्मवीर्य मविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥ ५ ॥

शब्दार्थः-[मुनीश]मुनियों में श्रेष्ठ, [स्तवं]स्तुति, [वशात्] वश से [प्रवृत्त] (कार्य में) लगा, [आत्मवीर्य]अपने बल को [अविचार्य]बिना विचारे हुए [शिशो]बच्चे की, [परिपालनार्थ] रक्षा करने के लिये [मृगेन्द्र]सिंह [अभ्येति]सामना करती है।

अर्थः-हे मुनियों में श्रेष्ठ ! (मैं स्तोत्र करने में असमर्थ हूँ) तो भी आप की भक्ति के वश से शक्ति रहित (होने पर) भी मैं बुद्धि हीन आपका स्तवन करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ, (सो ठीक है) क्यों कि हरिणी प्रीति के वश से अपने पराक्रम को बिना विचारे ही बच्चे की रक्षा के अर्थ क्या सिंह के सम्मुख सामना करने के लिये नहीं दौड़ती है ?

भावार्थः-जैसे हरिणी अपने बच्चे को सिंह के पंजे में फंसा देख कर उसकी प्रीति के वश से, यद्यपि वह सिंह को नहीं जीत सकती है तो भी सामने लड़ने को दौड़ती है। उसी प्रकार यद्यपि मुझ में शक्ति नहीं है तो भी भक्ति के वश से आप का स्तोत्र करने के लिये तत्पर होता हूँ, अर्थात् इस स्तोत्र के करने में आपकी भक्ति ही कारण है, मेरी शक्ति या प्रतिभा नहीं।

O, great sage ! (Though I am quite deficient in poetic talent) yet I have undertaken to compose this Stotra in your praise, being prompted by my devotion to you Does not a doe, being encouraged by love for her fawn, run at the lion to deliver her young one (from the lion's clutches) without thinking of her own power ?

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–(अल्पश्रुत) थोड़ा शास्त्र ज्ञान वाला (श्रुतवतां) शास्त्र के ज्ञाता (परिहास धाम) हँसी का पात्र, (बलात्) बलपूर्वक (मुखरी) वाचाल (कुरुते) करता है (कोकिल) कोयल, (मधौ) वसन्त ऋतु में (चैत्र वैशाख मास में), (विरौति) शब्द करती है (चारु) सुन्दर (आम्रकलि) आम की मञ्जरी, (निकर) समूह (हेतु) कारण

अर्थः शास्त्र के ज्ञाता पुरुषों के हँसी के पात्र मुझ अल्पज्ञानी को तुम्हारी भक्ति ही बलपूर्वक वाचाल करती है क्यों कि कोयल वास्तव में वसन्त ऋतु में जो मधुर शब्द करती है सो उसमें सुन्दर आम्र वृक्षों के मौर का समूह ही एक कारण है

भावार्थः–कोयल में यदि स्वयं बोलने की शक्ति होती तो वह वसन्त ऋतु के सिवाय दूसरी ऋतुओं में भी बोलती परन्तु जब वसन्त में आमों के मौर आते हैं तब ही वह मीठी वाणी बोलती है। इस से यह सिद्ध होता है कि उसके बोलने में एक मौर ही कारण है । इसी प्रकार मुझ में स्वयं शक्ति नहीं है किन्तु आप की भक्ति मुझे स्तोत्र करने के लिये वाचाल करती है। अतः इस स्तोत्र की रचना में आपकी भक्ति ही एक कारण है।

My devotion to you only perforce causes me to compose this eulogy me who is conversant with only scanty knowledge and (consequently) an object of ridicule (in the

ey) of those who are well versed with and proficient in the sacred science, (for) a collection of mango sprouts is instrumental in making the cuckoos coo in the spring season.

त्वत्संस्तवेन भवसंतति सन्निबद्ध,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर भाजाम् ।
आक्रान्त लोकमलि नील मशेष माशु,
सुर्यांशुभिन्नमिवशार्वरमधकारम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ--(आक्रान्त) पूर्ण, समाकीर्ण, (अलि) भ्रमर, (नील) काला, (शार्वर) रात्रि, (अशेष) सम्पूर्ण, (आशु) शीघ्र, (सूर्यांशु) सूर्य की किरणें,(शरीरभाजां) देह धारियोंका (भव) सन्सार, (सन्तति) परम्परागत से, (सन्निबद्ध) बन्धा हुआ, (क्षणात्) क्षण भर मे,(क्षयं) नाश को, (उपैति) प्राप्त होता है ।

अर्थ --समस्त लोक मे फैले हुए तथा भ्रमर के समान काले रग वाले सम्पूर्ण अन्धकार को शीघ्रता से जैसे सूर्य की किरणे नष्ट कर देती है । उसी प्रकार हे भगवन् ! आप के स्तवन से देह धारियों का (जन्म जरा मरण रूप) संसार परम्परा से बन्धा हुआ पाप क्षण भर मे नाश हो जाता है ।

भावार्थः -जैसे अन्धकार को सूर्य नष्ट कर देता है उसी प्रकार आप के स्तोत्र से जीवों के पाप क्षय हो जाते है ।

As the rays of the sun quickly and easily disperse the total darkness of night which, being as dark and black as bees, pervaded throughout the whole world similarly the continuous sins and crimes of all the living beings (which reference to this worldly succession)are easily destroyed by your praise

आस्तां तव स्तवनमस्त समस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानिहंति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभांजि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः-(सहस्रकिरणः) सूर्य, (पद्माकरेषु) सरोवरों में, (जलजानि) कमलों को, (विकाशभांजि) प्रफुल्लित, (आस्तां) होने पर, रहने पर, (दुरितानि) पापों को, (हन्ति) नाश करता है ।

अर्थः-जैसे सूर्य के दूर रहने पर भी उसकी प्रभा ही सरोवरों मे कमलों को विकासित कर देती है। उसी प्रकार हे जिनेन्द्र ! समस्त दोष रहित आप का स्तवन तो दूर रहे आप की चर्चा ही (इस भव तथा पूर्व भव सम्बन्धी)-उत्तम कथा ही-जगत के जीवों के पापों को नाश कर देती है ।

भावार्थ- सूर्योदय के पहले ही जो प्रभा फैलती है उससे ही (अर्थात् अरुणोदय से ही) जब कमल खिल उठते है तब सूर्य की प्रभा से कमल खिलेंगे इसमे तो कहना ही क्या है। इसी प्रकार आप की चर्चा मात्र से ही जब पाप नष्ट हो जाते हैं तब आपके स्तोत्र से तो होवेंगे ही । इस मे कुछ सन्देह नहीं है । तात्पर्य यह है कि आपका यह स्तोत्र पापों का नाश करने वाला है ।

Although the sun be away his rays are strong enough to bloom sun lotuses in the pond, similarly not to talk of your faultless praise the account (of your doings) only will prove destructive to the evils of the living beings,

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥

शब्दार्थ: (भुवन) संसार (भूत) और (भुवि) पृथ्वी पर (भूत) ठीक समीचीन (भवन्तं) आपकी (अभिष्टुवन्तः) स्तवन करने वाले, भवतः आपके तुल्या समान (भवन्ति) हो जाते हैं (इह) इस लोक में (आश्रितं) आश्रय में रहने वाले अर्थात् सेवक नौकर, (भूत्या) सम्पत्ति से (आत्म सम) अपने बराबर ।

अर्थ—हे भुवन के अलङ्कार स्वरूप तथा जीवों के स्वामी ! संसार में सत्य तथा समीचीन गुणों करके आपको स्तवन करने वाले पुरुष आपके ही समान हो जाते हैं, सो इसमें बहुत आश्चर्य क्या है ? क्योंकि जो स्वामी इस लोक में अपने आश्रित पुरुष को विभूति करके अपने समान नहीं करता है उस स्वामी से क्या लाभ ?

भावार्थ: हे भगवन ! जिस प्रकार उदार स्वामी का सेवक कालान्तर में धनादि से सहायता पा करके अपने स्वामी के समान धनवान हो जाता है । उसी प्रकार मैं भी आपका स्तवन करके आपके समान तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन कर सकता हूँ ।

O ornament of the world and Lord of the living ! It is no wonder if he who properly and duly praises you in this world may attain equality with you. What is the use

of the master if he does not make his dependent equal to himself in wealth and fortune '

दृष्ट्वा भवंतमनिमेष विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधेः रशितु क इच्छेत् ॥२१॥

शब्दार्थः—(अनिमेष) बिना पलक मारे, (अन्यत्र) दूसरी ओर, (तोष) संतोष, (उपयाति) प्राप्त होता है, (शशि) चन्द्रमा [कर] किरण [द्युति] प्रभा [दुग्धसिन्धो.] क्षीर सागर का [जलनिधे.] समुद्र का [क्षारं] खारा ।

अर्थः—अनिमेष नेत्रों स सदा देखने योग्य आपको देख कर के मनुष्यों क नेत्र अन्य देवों में संतोष को नहीं प्राप्त होते हैं। सो ठीक ही है। कारण चन्द्रमा की किरणों के समान उज्जवल है शोभा जिस की ऐसे क्षीर समुद्र के जल को पीकर के ऐसा कौन पुरुष है जो समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा करता हो ?

भावार्थ.—जैसे क्षीर समुद्र के जल को पीने वाला फिर खारे पानी पीने की इच्छा नहीं करता है उसी प्रकार जो आपके दर्शन कर लेता है उसे फिर दूसरे देवों को देखने से संतोष नहीं होता ।

The eyes of a man, after having seen you, you who is to be looked at with twinkless and fixed gaze, get no satisfaction elsewhere Who likes to drink the salty water of an ocean after he tasted water of the milky sea as shining and clear as the moon?

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ-(त्रिभुवन) तीन लोक (ऊर्ध्व तिर्यक 'अधो लोक अथवा स्वर्ग मृत्यु और पाताल लोक) (ललाम) अलङ्कार (शान्तराग) शान्त भाव (रुचि) सुन्दर (निर्मा- पितः) बनाये गये (अणवः) परमाणु (तावन्तएव) उत ने ही (पृथिव्यां) पृथ्वी पर (अपर) दूसरा।

अर्थ:-हे तीन लोक के एक अलङ्कार रूप ! जिन शान्त भाव तथा सुन्दर परमाणुओं से आप बनाये गये हो वास्तव में वे परमाणु भी उतने ही थे क्यों कि आप के समान रूप पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।

भावार्थ:-हे भगवन् ! आप के शरीर की रचना जिन पुद्गल परमाणुओं से हुई है वे परमाणु संसार में उतने ही थे । क्यों कि यदि वे परमाणु अधिक होते तो आप जैसा रूप औरों का भी दिखलाई देता परन्तु यथार्थ में आप के समान रूपवान् पृथ्वी पर और दूसरा कोई नहीं है।

The only ornament of the three worlds ! The peaceful and splendid atoms, with which your bodily frame has been constructed were as many as were required for the purpose as there is none equal to you in lustre & beauty

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।

बिंब कलंकमलिन क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ -(उरग) नाग, सर्प (निःशेषः) समस्त, (निर्जित) जीतली गई, (त्रितय) तीन (क्व) कहाँ, (वक्त्रं) मुँह, (निशाकरस्य) चन्द्रमा का, [विम्ब] मण्डल, [वासरे] दिन में, [पाण्डु] सफेद, [पलाश] ढ़ाक का पत्ता, [कल्पं] समान ।

अर्थ.-देव, मनुष्य, और नागो के नेत्र हरण करने वाला तथा जीती है तीन लोक की [कमल, चन्द्रमा, दर्पण आदि] समस्त उपमायें जिसने ऐसा, कहां तो आप का मुह और कहां चन्द्रमा का कलंक से मलिन रहने वाला मण्डल कि जो दिन मे पलाश के पत्र वत् सफेद होता है।

भावार्थः-आपके सदा प्रकाश मान निष्कलङ्क मुख को चन्द्रमा की उपमा नहीं दी जा सकती है, कारण चन्द्र कलङ्की और दिन को ढ़ाक के पत्र वत् सफेद और प्रभाव हीन हो जाता है।

How can there be drawn a comparison between your mouth and the moon? The latter is stained with dark spots and looks pale as well in the day like the Palash leaves, while your mouth, which focuses the eyes of men, gods and Nagas, surpass all (the objects of) comparison in this threefold world.

संपूर्णमंडल शशांक कलाकलाप,
शुभ्रा गुणास्त्रि भुवनं तव लंघयंति ।

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर नाथमेकं
कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ –[शशाङ्क] चन्द्रमा [कला] किरण [कलाप] समूह [लङ्घयन्ति] उल्लङ्घन करते हैं [संश्रिता] आश्रय में रहने वाले [यथेष्टम्] इच्छानुसार [सञ्चरत] विचरने से घूमने से [निवारयति] रोकता है।

अर्थ –हे त्रिलोक के स्वामी ! आपके पूर्णिमा के चन्द्र मण्डल की कलाओं के समान उज्ज्वल गुण तीन लोक को उल्लङ्घन करते हैं अर्थात् तीनों लोकों में व्याप्त हैं। क्योंकि जो गुण एक अर्थात् अद्वितीय स्वामी के आश्रय में रहे हुए हैं उन्हें स्वेच्छानुसार सब जगह विचरण करने से कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थः—जिन उत्तम गुणों ने आपका आश्रय लिया है वे गुण जहां तहां इच्छा पूर्वक गमन करते हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सकता है क्योंकि वे आप जैसे तीन लोक के नाथ के आश्रित हैं और इसी कारण अर्थात् उन गुणों के सर्वत्र विचरने से तीन लोक उन्हीं से व्याप्त हो रहा है।

O Lord of the three worlds ! your merits, as shining nd white as the silvery rays of the full moon, extend over all the three worlds, for who can prevent them from moving (in the world) at will being supported by the singular and matchless patron like you ?

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।

कल्पांत काल मरुता चलिता चलेन,

किं मंदराद्रिशिखर चालितं कदाचित् ॥१५॥

शब्दार्थः- [त्रिदश] देव [अङ्गना] स्त्रियें, [त्रिदशाङ्गनाभिः] देवियों से, [मनाक्] किंचित्, [नीत] ले जाया गया, [चित्र] आश्चर्य [चलित] चलायमान [अचल] पर्वत [कल्पान्त] प्रलय [मरुता] पवन से [मन्दर] मेरु [अद्रि] पर्वत।

अर्थ—यदि देवाङ्गनाओं के द्वारा आपका चित्त किंचित् मात्र भी विकारग्रस्त नहीं हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है? क्या कभी कम्पित किये हैं पर्वत जिसने ऐसे प्रलय काल के पवन से सुमेरु पर्वत का शिखर चलायमान हो सकता है? कभी नहीं।

भावार्थः—प्रलय काल की हवा से सब पर्वत चलायमान होजाते हैं किन्तु सुमेरु पर्वत किंचित् मात्र भी चलायमान नहीं हो सकता है। इसी प्रकार यद्यपि देवांगनाओं ने सम्पूर्ण ही ब्रह्मादिक देवों के चित्त चलायमान कर दिये परन्तु आपके चित्त को डोलायमान करने में वे रंच मात्र भी समर्थ नहीं हो सकीं।

It is no wonder if the celestial nymphs could not rouse, even in the least, the carnal passions in your heart Can the peak of of Sumeru mountain be possibly mored by the tempest of deluge, which had already shaken the other mountains?

निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः,

कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।

गम्योन जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाश: ॥१६॥

शब्दार्थ—[निर्धूम] धूम रहित [वर्त्ति] बत्ती [अप वर्जित] रहित [कृत्स्न] समस्त ।

अर्थ—हे नाथ ! आप धूम तथा बत्ती रहित तैल के पूर रहित और जो पर्वतों का चलायमान करने वाले पवन को कदाचित् भी गम्य नहीं है ऐसे जगत को प्रकाशित करने वाले अद्वितीय (विलक्षण) दीपक हो । क्यों कि आप इस समस्त (नय तत्त्व नय पदार्थ रूप) तीन जगत का प्रकट करते हो।

भावार्थः संसार में जो दीपक दिखाई देते हैं उनमें धुआं और बत्ती होती है किन्तु आप में वे । द्वेष रूपी धुआँ और काम की दश अवस्था रूप बत्ती । नहीं है । दीपकों में तैल होता है आप में तैल अर्थात् स्नेह राग । नहीं है । दीपक जरासा हवा के झोंके से बुझ सकता है आप प्रलय काल की हवा से भी चलित नहीं होते हो दीपक एक घर को ही प्रकाशित करता है किन्तु आप तीनों ही लोकों के सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करते हो । इस प्रकार आप जगत का प्रकाशित करने वाले एक अपूर्व दीपक हो ।

O Lord ! In this worl l you are the illumining light of rare angul rity which giving light to the whole Sphere has no smoke wick and supply of oil In it. It is (also) unaffected by the wind which had shaken the other mounta ns.

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्य:,

स्पष्टी करोषि सहसा युगपज्जगंति ।
नांभोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

शब्दार्थ –[अस्त] छुपना, [अम्भोधर] बादल, [निरुद्ध] रोका हुआ, [युगपत्] एक साथ, [सहसा] एकाएक [जगन्ति] तीनों जगत को, [अतिशायि] अतिशय, विशेष,

अर्थ.--आप न तो कभी अस्त को प्राप्त होते हो, न राहु के गम्य हो अर्थात् आप को राहु ग्रस नहीं सकता है और न बादलों के उदर से ही आप का महा प्रताप रुक सकता है, आप एक समय में सहसा तीनों लोकों को प्रगट करते हो, इस प्रकार हे मुनीन्द्र ! लोक में आप सूर्य की महिमा को भी उल्लंघन करने वाली महिमा को धारण करने वाले हो ।

भावार्थ--सूर्य सन्ध्या को अस्त हो जाता है, आप सदा काल प्रकाशित रहते हो । सूर्य एक जम्बूद्वीप को ही प्रकाशित करता है, आप तीन जगत के सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करते हो । सूर्य को राहु का ग्रहण लगता है, आप को किसी प्रकार के दुष्कृत प्राप्त नहीं होते । सूर्य के प्रताप को मेघ ढॉक लेता है, आप का प्रताप मतिश्रुतावधिमन. पर्यय केवलादि ज्ञानावरणीय कर्मों के आवरण से रहित है । इस प्रकार हे मुनि नाथ ! आप सूर्य से भी बड़े सूर्य हो ।

As you neither set nor you are affected by Rahu and nor your brilliance is even hidden by the thick and dense clouds and as you simultaneously enlighten the whole sphere you are, O best of the sage ! superior, in pre-eminence, to the sun

नित्योदय दलितमोहमहांधकार,
गम्य न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्ब ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—[तव] मुँह [वारिदानां] बादलों का [अनल्प] अधिक बहुत [मुखाब्ज] मुख रूपी कमल [विभ्राजते] शोभित होता है।

अर्थ—जो सदा उदय रहता है जो मोह रूपी महान अन्धकार का नष्ट करता है जो न राहु के मुख के गम्य है और न बादलों के गम्य है अर्थात् जिसे न तो राहु ग्रस सकता है और न बादल ढाँक सकते हैं, तथा जो जगत् को प्रकाशित करता है ऐसा हे भगवन ! आपका अधिक कान्तिवाला मुख कमल विलक्षण चन्द्रमा के मण्डल रूप शोभायमान होता है।

भावार्थ—आपका मुख कमल एक विलक्षण चन्द्रमा है क्योंकि चन्द्रमा तो केवल रात्रि में ही उदित होता है परन्तु आपका मुख सदा ही उदय रूप रहता है। चन्द्रमा साधारण अन्धकार को नाश करता है किन्तु आपका मुँह अज्ञान तथा मोहनीय कर्म रूप महा अन्धकार को नष्ट करता है। चन्द्रमा को राहु ग्रसता है बादल छिपा लेता है किन्तु आपके मुख को ढाँकने वाला कोई नहीं है। चन्द्रमा पृथ्वी के कुछ भाग को प्रकाशित करता है परन्तु आपका मुख तीन जगत् को प्रकाशित करता है। चन्द्रमा अल्प कान्ति युक्त है किन्तु आपके मुँह की कान्ति अनन्त है।

O God your lotus like mouth of immense lustre

which always remain risen, has destroyed the great darkness of delusion, do not enter the mouth of Rahu i. e. is unaffected by Rahu, is not hidden by clouds and gives light to the whole world, shines like the singular and peerless moon

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्नशालि वनशालिनि जीव लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः॥१९॥

शब्दार्थ.–[तमः] अन्धकार, [शर्वरीषु] रात्रियों में [अह्नि] दिन में, [विवस्वता] सूर्य से, [निष्पन्न] पके हुए, [शालि] धान्य [वनशालि] (यहाँ) धान्य के खेत, [जलधर] बादल [कियत्] क्या।

अर्थः–हे नाथ ! आप के मुख रूपी चन्द्रमा से अन्धकार नष्ट हो जाने पर रात्रियों में चन्द्रमा से अथवा दिन में सूर्य से क्या ? जीवलोक (देश) में धान्य के खेतों के पक चुकने पर पानी के भार से झुके हुए बादलों से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? अर्थात् कुछ नहीं।

भावार्थः–जिस प्रकार पके हुए धान्यवाले देश में बादलों का बरसना व्यर्थ है, क्योंकि उस जल से कीचड़ होने के सिवाय और कुछ लाभ नहीं होता, उसी प्रकार जहाँ आप के मुख रूपी चन्द्रमा से अज्ञान अन्धकार का नाश हो चुका हो वहाँ रात्रि और दिन में चन्द्र सूर्य व्यर्थ ही शीत तथा आतप के करने वाले है।

The darkness being destroyed by your moon-like face the moon is useless by the night and the sun by the day Similarly what is the use of clouds hanging down by the weight of water after the ripeness of rice fields in the country !

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि । २०॥

शब्दार्थ –(अवकाशं) प्रकाश (नायक) स्वामी, (स्फुरत्) देदीप्यमान (किरणाकुले) किरणों से व्याप्त (शकल) टुकड़े ।

अर्थः–(समस्त पर्यायात्मक पदार्थों को) प्रकाशित करने वाला (केवल) ज्ञान जैसा आप में शोभायमान है वैसा हरिहरादिक नायकों में नहीं है क्यों कि जैसा प्रकाश स्फुरायमान मणियों में गौरव को प्राप्त होता है वैसा किरणों से व्याप्त अर्थात् चमकते हुए भी कांच के टुकड़ों में नहीं होता ।

भावार्थ–जो प्रकाश मणियों में शोभित होता है वह कांच के टुकड़ों में नहीं हो सकता । इसी प्रकार जैसा ज्ञान प्रकाशक ज्ञान आप में है वैसा अन्य विष्णु महादेव आदि देवों में नहीं पाया जाता ।

The other gods such as Hari and Har possess no such supreme knowledge as you have in you with its all illumining quality for th (real) luster which shines in the glittering jewels with its full splendour cannot be reflected

in equal degree, by the glass pieces, even abounding in the rays of light.

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनोहरतिनाथ भवांतरेपि ॥२१॥

शब्दार्थ.-(हरिहर) विष्णु, महादेव, (वर) अच्छा, (मन्ये) समझता हूं, मानता हूं, (त्वयि) तुम में, (वीक्षितेन) देखने से, (भुवि) पृथ्वी पर,(भवान्तरे) दूसरे जन्म में।

अर्थः-हे नाथ ! मैं हरिहरादिक देवों को देखना ही अच्छा मानता हूं। जिनके देखने से हृदय आपमें संतोष को प्राप्त करता है और आपके देखने से क्या ? जिस से कि पृथ्वी में कोई अन्य देव दूसरे जन्म में भी मन हरण नहीं कर सकते।

भावार्थ.-हरिहरादिक देवों को देखना अच्छा क्यों कि जब हम उन्हें देखते हैं और राग द्वेषादि दोषों से भरे हुए पाते हैं तब आप में हमको अतिशय संतोष होता है कारण आप परम वीतराग सर्व दोषों से रहित हैं, परन्तु आप के देखने से क्या ? कुछ नहीं क्यों कि आप को देख लेने से फिर संसार का कोई भी देव मन को हरण नहीं कर सकता। सारांश-दूसरों को देखने से तो आप में संतोष होता है, यह लाभ है और आप के देखने से किसी भी देव की ओर चित्त नहीं जाता यह हानि है (व्याज निन्दा और व्याज स्तुति अलंकार)।

It is better that I have seen Hari and Har first, as by doing so my heart finds its satisfaction on seeing you.

What good is it to look at you first because after seeing you no other god can captivate my heart even in the life to come!

> स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
> नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
> सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
> प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

शब्दार्थः-(शत) सो, (त्वदुपम) आप के समान (प्रसूता) उत्पन्न किया (भानि) नक्षत्र (दधति) धारण करती है (स्फुरतः) दैदीप्यमान (अंशु) किरण (जाल) समूह (सहस्ररश्मि) सूर्य (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा।

अर्थः-स्त्रियों के सैकड़ों अर्थात् सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जनती हैं परन्तु दूसरी माता आप के समान पुत्र को उत्पन्न नहीं कर सकती है। सो ठीक ही है। क्यों कि सम्पूर्ण अर्थात् आठों दिशाएँ नक्षत्रों को धारण करती हैं परन्तु दैदीप्यमान है किरणों का समूह जिस का ऐसे सूर्य को एक पूर्व दिशा ही उत्पन्न कर सकती है।

भावार्थः-जिस प्रकार एक पूर्व दिशा ही सूर्य को उत्पन्न कर सकती है। उसी प्रकार एक आप की माता ही ऐसी है जिसने आप जैसे पुत्र को जन्म दिया।

Hundreds of women give birth to sons by hundreds but no woman can give birth to a son like you, for all (the eight) directions may hold stars but it is the east only that can produce the sun, profusely abounding in illumining rays.

त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस,
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयति मृत्यु,
नान्यःशिवःशिवपदस्य मुनींद्र पंथाः ॥२३॥

शब्दार्थ.–(पुमांस) पुरुष, (तमस) अन्धकार, (पुरस्तात) आगे, (आदित्य) सूर्य, (अमलं) निर्मल, (आमनन्ति) मानते है, (सम्यक्) भली भाँति, (शिवः) कल्याणकारी, (शिवपद) मोक्ष।

अर्थः–हे मुनीन्द्र ! मुनिजन आप को परम पुरुष और अन्धकार के आगे सूर्य स्वरूप तथा निर्मल मानते हैं। वे मुनि आप को ही भले प्रकार प्राप्त करके मृत्यु को जीतते हैं, इस लिये आप के अतिरिक्त दूसरा कोई कल्याण कारी अथवा निरुपद्रव, मोक्ष का मार्ग नहीं है।

भावार्थ –साधुजन आप को परम पुरुष मानते हैं, रागद्वेष रूपी मल से आप रहित हो, इस कारण निर्मल मानते हैं, मोह अन्धकार को आप नष्ट करते हो, इस कारण सूर्य के समान मानते है । आप के प्राप्त होने से मृत्यु नहीं आती, इस कारण मृत्युंजय मानते हैं तथा आप के अतिरिक्त कोई कल्याणकारी मोक्ष का मार्ग नहीं है, इस कारण आप को ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं।

O best of the sages ! The saints look upon you as the Supreme soul, the sun for (destroying) darkness and the one free from impurities They overcome death after having duly obtained you and, hence, there is no other

course of Salvation more auspec ous than you.

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वर मनंतमनंगकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥२४॥

शब्दार्थः (सन्त) साधु ऋषि (अव्यय) अक्षय (विभु) ऐश्वर्यवान् (आद्य) आदिपुरुष (ब्रह्माणं) परमात्मा (अनङ्ग) कामदेव (विदितयोगं) यम आदि आठ प्रकार के योगों के ज्ञाता (अमल) निर्मल (प्रवदन्ति) बोलते हैं, कहते हैं।

अर्थः—सन्त पुरुष आप को अक्षय परमैश्वर्यवान् चिन्तवन में नहीं आने वाले असंख्य (गुण युक्त आदि (तीर्थंकर) परमात्मा (सकल कर्म रहित सर्व देवों के ईश्वर अथवा कृतकृत्य अनन्त (चतुष्टय सहित) कामदेव के नाश करने के लिये केतु स्वरूप योगीश्वर आठ प्रकार के योगों के ज्ञाता (गुण पर्याय की अपेक्षा) अनेक रूप (जीव द्रव्य की अपेक्षा) एक केवल ज्ञान स्वरूप और निर्मल कहते हैं।

भावार्थः—साधु पुरुष आप की पृथक् २ तीन गुणों की अपेक्षा अव्यय अचिन्त्य विभु आदि कह कर स्तुति करते हैं।

The sages regard you as the imperishable store of Superhum n qualities, Incomprehensible Innumerable, the f rst and principle Tirthank r the supreme and high est soul Lord of Gods, Infinite, the destroyer of cupid the chief among yogees, conversant with yoga (mental abs-

traction), many (with reference to your attributes & properties), one (as regards to substance), endowed with Supreme knowledge, and one free from impurities.

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धातासिधीर शिवमार्ग विधोर्विधानात्,
व्यक्तंत्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

शब्दार्थ –(विबुध) विद्वान, (गणधर) देव, (शंकर) कल्याण, (विधान) नियम आदि बनाना, (धाता) ब्रह्मा, (व्यक्तं) प्रगट ।

अर्थ –गणधरों (देवों) ने आप के केवल ज्ञान के बोध की पूजा की है, इस कारण आप ही बुद्ध देव हो, तीन लोक के जीवों के सुख व कल्याण कारी हो, इस लिये आप ही शंकर हो और हे धीर ! मोक्ष मार्ग की रत्न त्रय रूप विधि का विधान करने के कारण आप ही विधाता हो । इसी प्रकार हे भगवन् ! आप ही प्रगट रूप से पुरुषों में श्रेष्ट होने के कारण पुरुषोत्तम अर्थात् नारायण हो ।

भावार्थ–बौद्ध लोग जिसे मानते हैं वह क्षणिकवादी अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को अनित्य मानने वाला बुद्ध नहीं हो सकता, सच्चे बुद्ध तो आप ही है । क्यों कि आप के बुद्धि बोध की देवों ने पूजा की है । शैव लोग जिसे मानते हैं वह पृथ्वी का संहार करने वाला कपाली शंकर(महादेव)नहीं हो सकता । क्यों कि शंकर शब्द का अर्थ सुखकर्ता है। यह गुण आप में ही विद्यमान है, इस कारण आप ही सच्चे शंकर है । रंभा के

विलासों से जिसका तप नष्ट हो गया था, वह सच्चा धाता (ब्रह्मा) नहीं किन्तु आप हैं। क्योंकि आपने मोक्ष मार्ग का विधि संसार को बतलाई है और इसी प्रकार वैष्णवों का गोपियों का चीर हरण करने वाला तथा परस्त्रीआसक्त पुरुष पुरुषोत्तम (विष्णु कृष्ण) नहीं हो सकता, किन्तु उपर्युक्त गुणों के कारण आप ही सच्च पुरुषोत्तम कहलाने योग्य हैं।

You are god Budha as the other gods and learned persons (Ganadhar) have worshipped and praised your knowledge, being the source of the prosperity of all living beings you are the only God Shiva, O resolute one ! as you laid down rules serving as a guide to road of salvation you are the creator and what more O God ! you being the best among the persons, are the only Narain.

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहरायनाथ,
तुभ्यं नम क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय॥२६॥

शब्दार्थः– (आर्ति) पीड़ा (क्षिति) पृथ्वी (अमल) निर्मल (भवोदधि) संसाररूपी समुद्र ।

अर्थः—हे नाथ ! तीन लोक की पीड़ा को हरण करने वाले ऐसे आपको नमस्कार है पृथ्वी तल के निर्मल अलङ्कार स्वरूप आपको नमस्कार है तीनों जगत् के प्रभु आपको नमस्कार है और हे जिन ! संसार समुद्र का शोषण करने वाले आपको नमस्कार है।

O Lord ! Bow to you who are the destroyer of the pains and sufferings of this threefold world, bow to you, the pure and genuine ornament on the face of the earth, bow to you, the paramount lord of (this) creation and O Jina ! Bow to you, the desi of the ocean (of this worldly existence).

कोविस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै,
स्त्वंसंश्रितो निरवकाशतया मुनीश
दोषैरुपात्तविविधाश्रय जात गर्वैः
स्वप्नांतरेपिन कदाचिदपीक्षितोसि॥२७॥

शब्दार्थ — (अशेष) सम्पूर्ण (निरवकाशतया) स्थानाभाव से, सघनता से (उपात्त) प्राप्त किये हुए (ईक्षित) देखा गया।

अर्थ –हे मुनियों में श्रेष्ट ! यदि सम्पूर्ण गुणों ने सघनता से आपका भले प्रकार आश्रय ले लिया तथा प्राप्त किये हुवे अनेकों के आश्रय से जिन्हें घमण्ड हो रहा है ऐसे दोषों ने सप्नप्रतिस्वप्नावस्थाओं में भी किसी समय आपको नहीं देखा तो इसमें कौनसा आश्चर्य हुआ ? अर्थात् कुछ नहीं।

भावार्थ.–संसार में जितने गुण थे,उन सभी ने तो आप में इस तरह से ठसाठस निवास कर लिया कि फिर कुछ भी अवकाश शेष नहीं रहा, दोषों ने यह सोचकर घमण्ड से आपकी ओर कभी देखा तक नहीं कि, जब संसार के बहुत से देवों ने हमें आश्रय दे रक्खा है तब हमको एक जिन देव की क्या परवाह है ? उन में हमको स्थान नहीं मिला तो न सही। साराश यह है कि आप में केवल गुणों का ही समूह है। दोषों

का नाम भी नहीं है।

O best among the sages ! It is no strange if all of the merits have taken shelter in you in densely clustered numbers and if the faults, being puffed up with pride at having obtained the patronage of other gods, did not cast glance at you, even in dream.

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख

माभाति रूपममलं भवतो नितांतम् ।

स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं

बिंबं रवेरिव पयोधर पार्श्ववर्ति॥२८॥

शब्दार्थ- (उन्मयूख) आभ्यस्पमान (नितान्त) अत्यन्त (स्पष्ट) व्यक्त साफ (उल्लसित) शोभायमान (वितान) समूह (पार्श्ववर्ति) पास में रहने वाला।

अर्थ- ऊँचे अशोक वृक्ष के आश्रय में स्थित और आप का देदीप्यमान तथा निर्मल रूप एवं स्पष्ट रूप से ऊपर को फैली हैं किरणें जिसकी ऐसे तथा नष्ट किया है अन्धकार का समूह जिसने ऐसे बादलों के समीप रहने वाले सूर्य के बिम्ब के समान शोभित होता है।

भावार्थ-बादलों के निकट जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब शोभा देता है इसी प्रकार अशोक वृक्ष के नीचे आपका निर्मल शरीर भासमान होता है। भगवान के आठ प्रतिहार्यों में से यह प्रथम प्रातिहार्य है।

While sitting under the tall Asoka tree your white

body, giving out rays of light, appears like the disc of the sun which, being in close proximity of the clouds and dispelling the great expance of dark, shines with brilliant rays of immense radiance

सिंहासने मणिमयुखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिंब वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुंगोदयाद्रि शिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

शब्दार्थ.—(मयूख) किरण (शिखा) प्रकाश (कनक) सोना, सुवर्ण (अवदातं) समान (तुंग) ऊँचा (उदयाद्रि) उदयाचल पर्वत (वियद्) आकाश (अंशु) किरण ।

अर्थ —मणियों की किरणों से चित्र विचित्र बने हुए सिंहासन पर आपका सुवर्ण के समान (मनोज्ञ) शरीर, ऊँचे उदयाचल के शिखर पर आकाश में शोभित हो रहा है। किरण रूपी लताओं का चँदोवा जिसका ऐसे सूर्य की बिम्ब के तरह शोभित है ।

भावार्थ —उदयाचल पर्वत के शिखर पर जैसे सूर्य बिम्ब शोभा देता है उसी प्रकार मणि जटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभित होता है (भगवान का यह दूसरा प्रतिहार्य है)

The gold-like brilliant body of yours, while seated on the throne, diversified by the gleaming rays of jewels, resemble the sun whose canopy-like radient rays in the sky shine on the high peak of the eastern mountain

कुन्दावदात चलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपु कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झर वारिधार,
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥३०॥

शब्दार्थ—(कुन्द) सफेद फूल विशेष (कलधौत) सुवर्ण (उद्यच्छशांक) उद्यत+शशांक,निकलता हुआ चन्द्रमा (निर्झर) झरना (शातकौम्भ) सुवर्णमयी (सुरगिरि) सुमेरु पर्वत ।

अर्थ-ढुरते हुए कुन्द के समान उज्ज्वल चँवरों से मनोहर हो रही है शोभा जिसकी ऐसा सुवर्ण समान कान्ति युक्त आप का शरीर उदय रूप चन्द्रमा के समान निर्मल झरनों की जलधारा जिनमें बह रही है ऐसे सुवर्णमयी सुमेरु पर्वत के ऊँचे तटों के समान शोभित होता है।

भावार्थ सुवर्णमय सुमेरु पर्वत के दोनों तटों पर मानों निर्मल जल वाले दो झरने झरते हों इस प्रकार से भगवान् के सुवर्ण सदृश शरीर पर दो उज्ज्वल चमर ढुर रहे हैं (यह चामर प्रातिहार्य है)

Your body shining as bright as gold is being greatly beautified by the waving of white chowrees, looks like the lofty peak of golden Sumeru Mountain where the stream of water as white and clear as the rising moon flows down in great torrents.

छत्र त्रय तव विभाति शशांककांत,
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रताप ।

मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत्रिजगतः परमेश्वरत्वम ॥३१॥

शब्दार्थ.— (स्थगित) निवारण किया हुआ (प्रकर) समूह (जाल) रचना (प्रख्यापयत्)प्रगट करते हुवे (विभाति) शोभायमान है।

अर्थः--चन्द्रमा के समान रमणीय, ऊपर उठे हुए तथा निवारण किया है सूर्य की किरणों का प्रताप जिन्होंने और मोतियों के समूह की रचना से चढ़ी हुई है शोभा जिनकी ऐसे तीन छत्र तीन जगत का परम ईश्वरपना प्रगट करते हुवे शोभित होते है।

भावार्थः- हे भगवन् ! आप के तीन छत्र तीनों जगत के परमेश्वर पने को प्रगट करते है अर्थात् एक छत्र से पाताल लोक का, दूसरे से मर्त्यलोक और तीसरे छत्र से देवलोक का स्वामित्व प्रगट करते हैं (यह चौथा प्रतिहार्य है)

Your moonlike silvery three-fold umbrella, which being raised high and greatly beautified by a great number of pearls, keeps off heat of the sunrays, is like an indicative evidence of your paramount supremacy over three worlds.

गंभीरताररवपुरितदिग्विभाग
स्त्रैलोक्यलोकशुभसगमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकःसन्,
खे दंदभिर्ध्वनति ते यश मः प्रवादी॥३२॥

शब्दार्थ- (तार) ऊँचा और म (रव) आवाज (दिग्विभाग) दिशा (सगम) संगति (दक्ष) चतुर (प्रवादी) बोलने वाला (दुंदुभि) नगारे का शब्द (खे) आकाश में (सद्धर्मराज) तीर्थंकर जिनराज (घोषक) घोषित कर रहा (ध्वनति) गमन करता है।

अर्थ:-गम्भीर तथा ऊँचे शब्दों से दिशाओं को पूरित करने वाला तीन लोक के लोगों का शुभ समागम की विभूति देने में चतुर ऐसा और आप के यश का कहने वाला (प्रगट करने वाला) दुन्दुभि आकाश में तीर्थंकर देव की जय घोषणा को प्रगट करता हुआ गमन करता है।

भावार्थ -समवसरण में जो दुन्दुभि बजते हैं वे यथार्थ में आप के यश का गमन करते हुए आप को विजय घोषणा करते हैं (यह पाँचवा प्रतिहार्य है)

Filling all the quarters with deep and loud sounds the noise of drums, which is clever in offering good fortune and happiness of good society makes generally and publicly known your fame and speaking aloud the shouts of victory of Jina, goes over in the sky

मंदारसुन्दरनमेरुसुपारिजात
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्यादिवः पतति ते वचसां ततिर्वा॥३३॥

शब्दार्थ-(उद) जल (सुन्दर) समूह (दिव) आकाश से (वचसां) वाणी का (ततिः) श्रेणि (दिव्या) दिव्य अलौकिक

अर्थः—गन्धोदक की बून्दों सहित, शुभ और मन्द २ वायु के साथ गिरने वाली मन्दार, सुन्दर, नमेरू, सुपारिजात, सन्तानक आदि कल्प वृक्षों के फूलों (के समूह) की वर्षा आकाश से गिरती है अथवा आप के वचनों की श्रेष्ठ तथा दिव्य पंक्ति ही फैलती है।

भावार्थ.--भगवान् के समवसरण में फूलों की जो वर्षा होती है वह ऐसी जान पड़ती है कि मानों भगवान के दिव्य वचन ही फैल गये हों। (यह छठा प्रतिहार्य है)

The showei of flowers of the trees, such as Mandar, Sundar, Nameru, Suparijat, and Santanak, falling down from the sky with the gentle wind, laden with the auspicious drops of scented water, is, as it were, the continuous flow of your divine and excellent words.

शुभत्प्रभावलयभुरिविभा विभोस्ते ,
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यत् दिवाकरानिरंतरभूरिसंख्या,
दीप्त्याजयत्यपि निशामपि सौमसौम्या ॥३४॥

शब्दार्थः— (प्रोद्यत) दैदीप्यमान (निरन्तर) सघन (भूरि) बहुत (प्रभावलय) भामण्डल (विभा) प्रभा (द्युति) प्रभा (आक्षिपन्ती) तिरस्कार करती हुई (सोम) चन्द्रमा (सौम्य) शान्त

अर्थ —हे विभो ! दैदीप्यमान सघन और अनेक संख्या वाले सूर्यों के तुल्य आपके शोभायमान भामण्डल की आत-

शय प्रभा तीन लोक के प्रकाशमान पदार्थों की द्युति को तिरस्कार करती हुई चन्द्रमा के समान शान्त होने पर भी अपनी दीप्ति से रात्रि का भी जीत लेती है।

भावार्थ —यह विरोधाभास अलङ्कार है। इसमें विरोध तो यह है कि भाम सौम्या अर्थात् जो प्रभा चन्द्रमा के समान होगी वह रात्रि को सुशोभित करेगा। परन्तु यहां कहा है कि जीतती है आच्छादित करती है। और विरोध का परिहार इस प्रकार होता है कि दीप्त्या अर्थात् दीप्ति से रात्रि को जीतती है अर्थात् रात्रि का अभाव करती है। सारांश यह है कि भामण्डल की प्रभा यद्यपि कोटि सूर्य के समान तेजयुक्त है तो भी आताप करने वाली नहीं है। वह चन्द्रमा के समान शीतल है और रात्रि का अन्धकार नहीं होने देती है। (यह सातवां प्रतिहार्य है।)

O Lord! The excessive light of your shining halo, rivaling as it were the blaze of the densely clustered suns and surpassing the luster of the brilliant objects of the three worlds, overcomes (the dark of) the night; even though it is as gentle and mild as the light of the moon.

> स्वर्गापवर्गगममार्ग विमार्गणेष्टः,
> सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
> दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व,
> भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

शब्दार्थ-(अपवर्ग) मोक्ष (विमार्गण) अन्वेषण में, (?) भाषाऍ (विशद) विस्तृत, (प्रयोज्य) योजना रूप।

अर्थः--स्वर्ग और मोक्ष जाने के मार्ग को अन्वेषण करने में आवश्यक तथा तीन लोक के समीचीन धर्म के तत्वों के कहने में एक मात्र चतुर और विस्तृत अर्थ तथा उसके समस्त भाषाओं के परिणमन अर्थ जो गुण, उन (गुणों) से जिसकी योजना होती है ऐसी आप की दिव्य ध्वनि होती है ।

भावार्थ.--भगवान् की वाणी में यह अतिशय है कि, सुनने वालों की सम्पूर्ण भाषाओं में निर्मल रूप से उसका परिणमन हो जाता है अर्थात् भगवान की वाणी जो सुनता है वही अपनी भाषा में सरलता से समझ लेता है (यह आठवाँ प्रतिशय है)

Your singular speech, which is indispensable in seeking out the paths to the heaven and salvation, proficient in expounding the philosophy and principles of the Right-faith and coupled with the clear and exhaustive meaning, is rife with the distinctive features of its comprehensive faculty

उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांति,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पदौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

शब्दार्थ.--(उन्निद्र) खिले हुए, (हेम) सुवर्ण, (पंकज) कमल, (पुंज) समूह, (पर्युल्लसन्) उछलती हुई, (अभिराम) सुन्दर, (परिकल्पयन्ति) रचते हैं ।

अर्थः--हे जिनेन्द्र ! खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह

के सदृश कान्ति युक्त और उछलती हुई मखों की किरणों कर के सुन्दर ऐसे आप के चरण जहां पर डग रखते हैं वहां पर देवगण कमलों को रचते आते हैं।

भावार्थ—जहां २ भगवान चरण रखते हैं वहां २ पर देवता कमलों की रचना करते आते हैं।

O Jinendra Gods arrange lot set t wherever you set your feet wl ich, being beautifie' by tl e rays of light, re flected from the sparkl ng nails posses th lustre of a large r mber of rece tly blow lotuses of gold.

> इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र,
> धर्मोपदेशनविधौन तथा परस्य।
> यादक्प्रभा दिनकृत प्रहतांधकारा
> तादक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि॥३७॥

शब्दार्थः विधौ विधान में (इत्थं) इस प्रकार पूर्वोक्त (विनहत) सूर्य (प्रहत) दूरत्व करना (विकाशिनः) प्रकाशमान की (ग्रह) ग्रहमादि (कुतः) कहां से।

अर्थ—हे जिनेन्द्र! धर्मोपदेश इत समय समवसरण में पूर्वोक्त प्रकार से आप की सम्पदा जैसी हुई वैसी हरिहरादि दूसरे देवों की नहीं हुई (क्यों कि) सूर्य की जैसी अन्धकार का नाश करने वाली प्रभा होती है वैसी प्रकाशमान तारागणों की कहां से होवे?

भावार्थ—यद्यपि तारागण थोड़े बहुत चमकने वाले होते हैं तो भी वे सूर्य के समान प्रकाशित नहीं हो सकते। इसी प्रकार यद्यपि हरिहरादिक देव हैं तो भी आप की समवसरण जैसी

निभृते को वे धारण नहीं कर सकते ।

Thus no other gods can aspire to resemble you in super-human excellence which is the distinctive characteristic of your instructive style of expounding Tatvas How can the light of stars possess the same faculty of destroying darkness as is owned by the sun.

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल,
मत्त भ्रमद भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं,
दृष्ट्वा भयं भवतिनो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

शब्दार्थ.-(श्च्योतन्) झरते हुए, (आविल) मलिन, (विलोल) हिलते हुए, चञ्चल, (भ्रमद्) घूमते हुए, (नाद) शब्द, आवाज, (आभा) समान, (उद्धत) निरंकुश, (इभ) हाथी ।

अर्थ -झरते हुए मद से जिसके गण्डस्थल मलीन तथा चञ्चल हो रहे है और उन पर उन्मत्त होकर भ्रमण करते हुए भौरे अपने शब्दों से जिसका क्रोध बढ़ा रहे है ऐसे ऐरावत हाथी के समान आकारवाले, निरंकुश तथा ऊपर आक्रमण करने वाले हाथी को देख कर आप के आश्रय में रहने वाले पुरुषों को भय नहीं होता है ।

भावार्थः-अत्यन्त उच्छृंखल हाथी को देखकर भी आप के भक्त जन भयभीत नहीं होते हैं ।

Your devotees are not terrified even in the least when they see themselves attacked by the unruly and huge (Aravat like) elephant, provoked to anger by the hum-

ming of bees which being excited fly near the frontal globes of the eleph nt, which are dirty and unsteady on account of the dripping down of ichor

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त,
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभाग ।
बद्धक्रम क्रमगत हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगा चलसाश्रितं ते॥३९॥

शब्दार्थः—(कुम्भगल) गण्डस्थल (शोणित) रक्त (अक्त सने हुए (प्रकर) समूह (बद्ध) बांधी हुई क्रम) चौकड़ी (संश्रित) आश्रय में रह हुए।

अर्थ —विदीर्ण हाथियों के मस्तकों से जो लहू से भरे हुए उज्ज्वल मोती गिरते हैं उनके समूह से जिसने पृथ्वी के भाग शोभित कर दिये हैं ऐसा तथा आक्रमण करने के लिये बांधी है चौकड़ी (छलांग जिसने ऐसा सिंह भी पञ्जे में पड़े हुए आपके दोनों चरण रूपी पर्वतों का आश्रय लेने वाले मनुष्य पर आक्रमण नहीं कर सकता है।

भावार्थ आपके चरणों का आश्रय लेने वाले भक्त जनों पर भयानक सिंह भी आक्रमण नहीं कर सकता है।

The lion (King of the beasts) who has adorned the ground by (scattering) lot of white pearls, which, being covered with blood, have fallen down from the rent temples of a elephant, and has assumed a posture for assailing can not attack upon men even fallen in his clutches after their having taken refuge under your mountain-like feet,

कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्प,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्फूलिंगम् ।
विश्व जिघत्सुमिव समुखमापतंत,
त्वन्नामकीर्त्तनजल समयत्यशेषम् ॥४०॥

शब्दार्थ—(कल्पान्त प्रलय, (उद्धत उठी हुई, (कल्पं) समान, उत्स्फुलिङ्ग चिनगारी, [जिघत्सुम्] नाश करने की इच्छुक, [दावानल] वन मे लगने वाली अग्नि [शमयति] शान्त करता है ।

अर्थ—प्रलय काल के पवन से उत्तेजित अग्नि के सदृश तथा उड़ रही है चिनगारिया जिसमें ऐसी जलती हुई उज्ज्वल और सम्पूर्ण ससार को नाश करने की मानो जिसकी इच्छा हो है ऐसी सामने आती हुई दावाग्नि को आपके नाम का कीर्तन रूपी जल शान्त करता है ।

भावार्थ—आपके गुणों का गान करने से बड़ी भारी दावाग्नि भी भक्त जनों का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकती ।

The repeating of your name is a water, capable to put out the conflagration of a forest, which, rising up in front kindled by wind, (blowing) at the time of deluge, tossing up sparks and blazing up in flames, is, as it were, going to swallow up the whole creation

रक्तेक्षण समदकोकिलकण्ठनील,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम् ।

आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक,
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

शब्दार्थ—[पुंसः] पुरुष के [नागदमनी] जड़ी विशेष [क्रमयुगेन] दो पैरों से [रक्तेक्षणं] लाल नेत्र [समद] मस्त [नील] श्याम काला [उत्फण] उठाया है फण जिसने [फणिन] सर्प [निरस्तशंक] शंका रहित निडर [आक्रामति] उल्लंघन करता है।

भावार्थ—जिस पुरुष के हृदय में आपके नाम की नागदमनी जड़ी है वह पुरुष अपने पैरों से लाल नेत्रवाले मदोन्मत्त कोयल के कण्ठ समान काले क्रोध से उद्धत हुए और उठाया है ऊपर को फण जिसने ऐसे [डसने के लिये] झपटते हुए सांप को निडर होकर उल्लंघन करता है अर्थात् उसके ऊपर से चला जाता है।

भावार्थः—आप का नाम स्मरण करने वाले भक्त जनों को भयङ्कर सांपों का भी कुछ भय नहीं होता है।

A man, possessing at his heart Nagd mal of your name, fearlessly treads on a serpent who being mad with fury and having red yes, has raised up its hood to bite with and whose neck is as black as that of a cuckoo.

वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद,
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनां।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ॥४२॥

शब्दार्थ.-(आजौ) युद्ध में, (वल्ग)सरपट दौड़ना (तुरंग) घोड़ा, (भीम) भयङ्कर, (बल) सेना, (मयूख) किरण, (शिखा) अग्र भाग, (अपविद्ध) छेदा हुआ, (आशु) शीघ्र (भिदाम) नष्ट, (उपैति) प्राप्त होता है।

अर्थ —संग्राम में आपके नाम का कीर्तन करने से बलवान राजाओं की दौड़ते हुए घोड़ों और हाथियों की गर्जना से जिसमें भयानक शब्द हो रहे हैं ऐसी सेना भी उदित सूर्य (अरुणोदय) की किरणों के अग्र भाग से नष्ट हुए अन्धकार के समान शीघ्र ही भिन्नता को-नाश को-प्राप्त होती है।

भावार्थ —जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आप के गुणों का गान करने से राजाओं की बड़ी २ सेनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं।

As the sun (at the dawn) is able to dispelse the dark, similarly your name is powerful enough to soon disperse the army of the great kings in a battle, resounding with the noise of the galloping horses and roaring elephants

कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह,
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा,
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभते॥४३॥

शब्दार्थ.- कुन्त) भाला, (वारिवाह) जल का बहाव (अवतार) गिरे हुए, (आतुर) व्यग्र, उत्कण्ठित ।

अर्थ.—भालों की नोकों से छिन्न भिन्न हुए हाथियों के रक्त रूपी जल प्रवाह के वेग में गिरे हुए और उसे तैरने के लिये

आतुर योद्धाओं से जो भयानक हो रहा है ऐसे युद्ध में आप के चरण कमल रूपी वन का आश्रय लेने वाले पुरुष दुर्जय (जो नहीं जीता जा सके) शत्रु पक्ष को जीतकर विजय को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—आप के चरण कमलों की सेवा करने वाले भक्त जन बड़े भारी युद्ध में भी शत्रु को जीत कर विजयी होते हैं।

In a battle the fierceness of which was enhanced by (the eres) of soldiers being drifted away by and eager to cross over th blood-currents of elephants rent by the points of lances the persons, by resorting to the forest of your lotus-like feet attain victory over invincible oppo- n ts.

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र,

पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।

रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा,

स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति॥४४॥

शब्दार्थः—(नक्र) मगर (चक्र) घड़ियाल (पाठीन पीठ) मच्छी विशेष (उल्वण) भयानक (वाडवाग्नौ) जल की अग्नि (वडवाग्नि) में (अम्भोनिधौ) समुद्र में (रंग) उछलना [यान] सवारी (यहाँ जहाज) [त्रास] भय [विहाय] छोड़ कर [व्रजन्ति] जाते हैं।

अर्थ—आपका स्मरण करने से भीषण मगर घड़ियाल पाठीन और पीठों से तथा भयंकर विकराल वड़वाग्नि करके क्षुभित समुद्र में उछलती हुई तरंगों के शिखरों पर जिनके जहाज पड़

हुए हैं ऐसे पुरुष निडर होकर (विना भय के) पार हो जाते हैं।

भावार्थ—आपका नाम स्मरण करने से भयानक समुद्र में पड़े हुए जहाज वाले भी पार हो जाते हैं।

Persons in the ships, balancing on the rising waves in ocean, agitated by the terrible crocodiles, porpoises and whales as well as by submarine fire, sail to the shore without any fear by repeating your name

उद्भूतभीषणजलोदर भारभुग्नाः,
शोच्यांदशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

शब्दार्थ—[उद्भूत] उत्पन्न हुआ, विद्यमान, [जलोदर] पेट का रोग विशेष, [भग्ना] झुके हुए [च्युत] छोड़ा हुआ, [मर्त्या] मनुष्य, [रज] धूल, पराग, [दिग्ध] विलेपन की हुई, [मकरध्वज] कामदेव।

अर्थ—उत्पन्न हुए भयानक जलोदर रोग के भार से जो कुबड़े होगये हैं और शोचनीय अवस्था को प्राप्त होकर जीने की आशा छोड़ बैठे हैं ऐसे मनुष्य आपके चरण कमल के रज रूप अमृत से अपनी देह लिप्त करके कामदेव के समान सुन्दर रूपवाले हो जाते हैं।

भावार्थ—जैसे अमृत के लेप से मनुष्य नीरोग और सुस्वरूप हो जाते हैं उसी प्रकार आपके चरण कमल के रज रूपी अमृत के लेप से (चरणों की सेवा से) जलोदर आदि रोगों से पीड़ित पुरुष भी कामदेव सदृश रूपवान होजाते हैं।

Persons, bent down under the weight of the horribly risen dropsy being in pitiable plight and with lost hopes of life, attain equality with the cupid in beauty by applying to their bodies the nectar of pollen of your lotus like feet,

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टितांगा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघा ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

शब्दार्थः— [अनिशं] हमेशा [आपाद] पैर से लगाकर [उरू] बड़ी [शृंखला] जञ्जीर [वेष्टित] घिरा हुआ [गाढ़] मजबूती से [बृहत्] बड़ी [निगड़] बड़ी जञ्जीर (कोटि) नोक किनारा (निघृष्ट) छिला हुआ (मनुज) मनुष्य (सद्यः) शीघ्र ।

अर्थः जिनके अङ्ग (शरीर) पांव से लेकर गले तक बड़ी २ जञ्जीरों से निरन्तर जकड़े हुए हैं और बड़ी २ बेड़ियों के किनारों से जिनकी जङ्घाएं अत्यन्त छिल गई हैं ऐसे मनुष्य आपके नाम रूपी मन्त्र को स्मरण करने से तत्काल ही आपसे आप बन्धन के भय से सर्वथा रहित होजाते हैं।

भावार्थः—आपका स्मरण करने से कठिन कैद में फँसे हुए मनुष्य भी शीघ्र छूट जाते हैं।

Persons, constantly in irons from top to toe and with their thighs scratched over with the edges of the fast (bound) strong chains, instantly get themselves off the fear of confinement by resorting to the charm of your name.

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि,
संग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थम् ।
तस्याशुनाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

शब्दार्थ—(तावकं) आपका, (अधीते) पढ़ता है (महोदर) पेटका रोग, (आशु) शीघ्र, (उपयाति) पहुँचता है।

अर्थ—जो बुद्धिमान आपके इस स्तोत्र का अध्ययन करता है, पढ़ता है उसके मस्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, महोदर रोग और बन्धन आदि इन आठ कारणों से उत्पन्न भय डर कर ही मानों शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—ऊपर कहे हुए आठ तथा इनके सदृश और भी भय उस पुरुष से डर कर शीघ्र नष्ट होजाते हैं, जो पुरुष इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करता है।

Of a wise man who recites this eulogy of yours the fear, arising from these eight sources, such as-intoxicated elephant lion, fire, serpent, battle, ocean, dropsy, and bonds suddenly dies away, as it were, being frightened

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मयारुचिरवर्णविचित्रपुष्पां ।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

शब्दार्थ—(इह) इस संसार में, (भक्त्या) भक्ति पूर्वक, (रुचिर) सुन्दर, (वर्ण) रंग, (अक्षरस्रजं) माला, (अजस्र)

हमेशा (सदा) धारण करता है । मानतुंग मान से ऊंचे आदरणीय (अथवा) विवश होकर।

अर्थः—हे जिनेन्द्र इस संसार में मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक आपके अनन्त ज्ञानादि गुणों करके गूंथी हुई सुन्दर आकारादि वर्णों के यमक श्लेष अनुप्रासादि रूप विचित्र फूलों वाली और कण्ठ में पड़ी हुई आपकी इस स्तोत्र रूपी माला को जो पुरुष सदैव धारण करता है उस आदरणीय पुरुष को राज्य स्वर्ग मोक्ष और सत्काव्य रूप लक्ष्मी विवश होकर प्राप्त होती है।

In this world the goddess of prosperity is compelled to approach the respectable person who constantly put on round his neck the garland of merits produced in this eulogic form by me in devotion to you and composed of various pretty flowers of literary beauty

भगवान् महावीर का आदर्श जीवन

लेखक—जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता

पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज

इस पुस्तक मे भगवान महावीर का आद्योपान्त जीवन चरित्र है। यह पुस्तक सच्ची ऐतिहासिक घटनाओं का भण्डार है वैराग्य रस का जीता जागता आदर्श है। राष्ट्र नीति और धर्म नीति का अपूर्व समिश्रण इस पुस्तक मे है। एक बार मँगा कर अवश्य पढिये। बड़ी साइज के लगभग ६०० पृष्टो के सुनहरी जिल्दवाले दलदार ग्रन्थ की कीमत केवल २॥ रु० मात्र।

निर्ग्रन्थ प्रवचन

संग्राहक और अनुवादक

जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म०

बत्तीस सूत्रो में से खोज-खोज कर ग्रहस्थ धर्म, मुनि धर्म, आत्मशुद्धि, ब्रह्मचर्य, लेश्या, षट् द्रव्य, धर्म, अधर्म, नर्क, स्वर्ग आदि अठारह विषयों पर गाथाएँ सग्रह की गई है। प्रत्येक विषय के लिये एक-एक अध्याय है। प्रत्येक अध्याय मे मूल गाथा उसका अन्वयार्थ और भावार्थ दिया गया है। इस पुस्तक के अलग-अलग भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं।

१—सस्स्कृत छाया सहित सजिल्द ॥) २—पद्यानुवाद (हरिगीत छंदों में) ।=) ३-मूल-भावार्थ ।=) ४-अंग्रेजी अनुवाद ॥)

पता—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम.

आदर्श-रामायण

[रचयिता—प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी म०]

इस वृहद् ग्रन्थ में भगवान रामचन्द्र की आद्योपान्त जीवनी राधेश्याम की तर्ज में तथा मनोहर चौपाइयों में आधुनिक ढंग से वर्णन की गई है। यह पुस्तक जैन समाज में बिल्कुल नई चीज है। बढ़िया एन्टिक पेपर पर सुन्दर नये टाइपों की छपाई और पक्की जिल्द से सुसज्जित होने के कारण इस पुस्तक का महत्व खिल उठा है। प्रथमावृत्ति के प्रकाशित होते ही धड़ाधड़ आर्डर आ रहे हैं और प्रतियाँ हाथों हाथ जा रही है। आप भी अपनी प्रति के लिए शीघ्रता कीजिये। अन्यथा फिर द्वितीयावृत्ति के लिये आपको प्रतीक्षा करनी होगी। जो कि यथा सम्भव शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। मूल्य अजिल्द १) सजिल्द १॥)

जैन जगत् के उज्ज्वल तारे

[लेखक—साहित्यप्रेमी पं० मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज]

जैन जगत सदियों से त्याग तपस्या और बलिदानों के लिए विख्यात रहा है। इस समाज में एक एक महाविभूति त्यागी हो गये हैं जो संसार के गौरव माने जाते हैं। इस पुस्तक में उन्हीं खास विभूतियों की अनुपम जीवनियों संगृहीत हैं। ये जीवन-गाथायें समाज में अपना विशेष स्थान पाये बिना न रहेंगी। भाषा सरल सुन्दर कहानी सामाजिक तथा साहित्य मय व मनोरम है। इसी आदि की छपाई सफाई भी है। बढ़िया कागज पर छपी हुई इस अनुपम सचित्र पुस्तक को हाथ में लेते ही आप जैन जाति के एक सजीव गौरव का स्मरण करेंगे। क्राउन साइज। पृष्ठ संख्या १२४ चित्र संख्या ६ इतना सब कुछ होते हुए भी केवल प्रचार की दृष्टि से मूल्य मात्र ।) आने।

पता—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम

भगवान् महावीर का आदर्श जीवन

लेखक-जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता
पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज

इस पुस्तक में भगवान महावीर का आद्योपान्त जीवन चरित्र है। यह पुस्तक सच्ची ऐतिहासिक घटनाओ का भण्डार है। वैराग्य रस का जीता जागता आदर्श है। राष्ट्र नीति और धर्म नीति का अपूर्व संमिश्रण इस पुस्तक मे है। एक वार मँगा कर अवश्य पढ़िये। बड़ी साइज के लगभग ६०० पृष्ठों के सुनहरी जिल्दवाले दलदार ग्रन्थ की कीमत केवल २॥ रु० मात्र।

निर्ग्रन्थ प्रवचन

संग्राहक और अनुवादक
जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म०

बत्तीस सूत्रों मे से खोज-खोज कर ग्रहस्थ धर्म, मुनि धर्म, आत्मशुद्धि, ब्रह्मचर्य, लेश्या, षट् द्रव्य, धर्म, अधर्म, नर्क, स्वर्ग आदि अठारह विषयो पर गाथाएँ संग्रह की गई हैं। प्रत्येक विषय के लिये एक-एक अध्याय है। प्रत्येक अध्याय में मूल गाथा उसका अन्वयार्थ और भावार्थ दिया गया है। इस पुस्तक के अलग-अलग भाषाओं में अनुवाद हो चुके है।

१-सस्स्कृत छाया सहित सजिल्द |||) २-पद्यानुवाद (हरिगीत छदों में) |=) ३-मूल-भावार्थ |=) ४ अंग्रेजी अनुवाद ||)

पता-श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम.

वन्दे-वीरम्

* सुश्रावक अरणकजी *

लेखक —

प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी
महाराज के सुशिष्य साहित्य प्रेमी
पण्डित मुनि श्री प्यारचंदजी
महाराज

प्रकाशक -
श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम.

* ॐ *

वन्दे-वीरम्

* सुश्रावक अरणकजी *

लेखक.—

प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी
महाराज के सुशिष्य साहित्य प्रेमी
पण्डित मुनि श्री प्यारचंदजी
महाराज

प्रकाशक -

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति
रतलाम.

द्वितीयावृत्ति
१०००

मूल्य =)

वीराब्द २४५५
विक्रम सं १९८६

प्रकाशक:—
मास्टर मिश्रीमल
ऑ० मंत्री
श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,
रतलाम

मुद्रक:—
मैनेजर
श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
रतलाम

॥ ॐ ॥

लेखक के दो शब्द ।

श्री गुरु चरणारविन्दों की अनुपम अनुकम्पा से, आज, मै इस तुच्छ कृति द्वारा, पाठकों के सन्मुख, अपने कुछ टूटे फूटे विचार रखना चाहता हूं। आशा है, विज्ञ और प्रेमी पाठक इस के भाव-राज्य मे अवश्य विचरण करने की कृपा करेंगे। यदि, विद्वान और विचारवान पाठकों ने इस के द्वारा कुछ भी लाभ उठाया, और जैसा कि मुझ से मेरे, हितैषी और प्रेमी पाठक बार बार आग्रह करते रहते है, उन्हें, मै एक संसार-त्यागी के नाते, विश्वास दिलाता हू कि यों तो मेरे जीवन का प्रत्येक पल पल लोक-कल्याण के लिए नित्य प्रति ही न्यौछावर है, तथापि, प्रेमी पाठकों के अनुरोध के अनुसार, मेरी भी यही उत्कट अभिलाषा है कि भविष्यत् में, मै भी ऐसे ही छोटे, किन्तु मानव-समाज के अबाल-वृद्ध प्राणी मात्र को, सु-मार्ग और सु-नीति की स्वर्गीय सड़क पर ले जानेवाले दिव्य सन्देशों को, उन के अपने श्रवण सम्पुट द्वारा, उन के हृदयों तक पहुँचाऊँ। मेरे इस भाव-राज्य को हर प्रकार से सुन्दर व सुदृढ बनाने मे इन्दौर के एक उत्साही और धर्म पिपासु अध्यापक भाई रामकुमार जी मालपाणि "विशारद" एवं "साहित्यालङ्कार" ने, समय समय पर, अपने विचारों द्वारा विशेष सहायता दी। तथा, इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ द्रव्य सम्बन्धी सारा भार श्रीयुत चुन्नीलाल जी सूरजमल जी सोहनगरा सिङ्घी फागणा निवासी (पश्चिम खानदेश) ने अपने ऊपर ले लिया है। अस्तु। संशोधक और द्रव्य-सहायक दोनों का पाठकों को उपकृत होना चाहिए।

नोट —संशोधन करने का पूरा प्रयत्न करते हुए भी दृष्टि दोष से कोई अशुद्धि रह गई होतो पाठक सुधार कर पढने की कृपा करें।

लेखक

रतलाम,
वीराब्द २४५५
विक्रमाब्द १९८६

समर्पण।

मैं अपनी इस अकिञ्चन कृतिको, जैन-समाज के उन नौनिहाल, अपने माता-पिताओं के उन महत् दुलारे, देश के उस यशोधन, जातीय-गत-गौरव के एक मात्र उन सं-रक्षक और भगवान् जिनेन्द्र व गुरु चरणारविन्दों में जिन की अटल-अनुपम-अनथक और अतुलनीय श्रद्धा-भक्ति तथा अनुराग है, उन के पवित्र और कोमल कर-कमलों में, सप्रेम रखता हूँ। वह मङ्गलकारी भगवान्, अरचकजी की इस अत्यल्प, किन्तु आदर्श उदारता के नाते, उन के शुभ दिलों को, कर्तव्य और कल्याण की कुछ गूढ़ और गम्भीर उलझनों को सुलझाने की शक्ति और समझ प्रदान करे।

संसार के प्राणी मात्र का—

कल्याण कामना कांक्षी,

लेखक।

॥ ॐ ॥

वन्दे वीरम्।

सुश्रावक अरणकजी।

मङ्गला चरण।

तुभ्यं नम स्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय॥ १॥

मानतुंगाचार्य्य

जगत् में बड़ी बड़ी परीक्षाएं होती है। यदि, एक बार गिर पड़ो, तो हताश मत होओ। क्योंकि गिरना कोई बुरा नहीं है, गिर कर भी उठा जा सकता है और जो चलता है, वही गिरता भी है। अस्तु। कभी घबराओ मत चलो गिरो, उठो, फिर आगे बढ़ो, कमर कस कर परीक्षाओं के मैदान में साहस पूर्वक उतर पड़ो। बस फिर तुम देखोगे, कि कल्याण और काञ्चन, पद पद पर तुम्हारी शरण में आने के लिए लालायित–उत्सुक–है।

—— स्वामी रामतीर्थ

कुछेक शताब्दियों के पूर्व, इस भारत–माता की भव्य गोदी में चम्पा नामकी एक विशाल नगरी थी जो अपनी तत्कालनी चमक दमक से चहुं ओर के देशों के लोगों का मन मोहती थी। जो भी इसकी यह चमक दमक, ऊपर से

वनाओ धर्म मे अटल विश्वास रक्खो मुख्य प्रकृति के साथ सच्चा सहयोग करना सीखो, कठिन से कठिन आपदाओं का सामना ध्रुव धैर्य से करो। बस, नियति तुम्हे भी फिर वैसेही हृदय से लगावेगी, जैसे कि इन गुणों से युक्त अन्य पुरुषों को वह लगाती है।" अस्तु।

देश के व्यापार की वृद्धि के लिए एक समय हमारे चरित नायक ने अपने मनमें ठाना, कि देश के व्यापारियों के लाभार्थ अब विदेशों में जहाज-यात्रा करें। और साथ में जितने भी जैनबन्धु इस काम में योग लेना देना चाहे सहर्ष लें दें। अरणकजी के इस विचार का अनुमोदन और समर्थन तत्कालीन पुर वासियों में बहु सम्मति से हो गया। तदनुसार इस विचार की नगर भर में घोषणा करवादी गई। साथही इसके समस्त जैन जनता को यहभी जाहिर करवा दिया गया, कि जो जैन बन्धु, फिर चाहे वे किसी रोजी से लगे हुए हों या वे रोजगार हों, पर हों इस कार्य में मेरे साथ विदेश यात्रा कर, धन कमाने के हिमायती। वे सबके सब सहर्ष मेरा सह गमन कर सके हैं मेरे साथ चल सके है। उनके मार्ग खर्चका सारा इन्तिजाम मैं स्वय करूँगा। इसके सिवाय भी और किसी प्रकार की यदि उन्हें इमदाद-सहायता की जरूरत हुई, वह भी मैं उन्हें दूंगा।

भला, इस सुवर्ण सुयोग से कौन अभागा लाभ उठाने को उत्सुक न हुआ होता। मनुज रत्न अरणकजी का यह कार्य "नेकी और पूछ २ कर" की कहावत को पुर के कोने कोने में चरितार्थ करने लगा। इस शुभ सवाद के सुनते ही, नगर का बहु संख्यक व्यापारिक दल सेठजी के साथ चलने को तैयार होगया। पाठकों! जरा सोचिए और आज के राम राज्य (?) की परिस्थिति में पैदा होने वाले और पले पोषे

शिक्षित मानव समुदाय का सङ्गठित शक्ति की तत्काल
जनता जनार्दन की सात्त्विक शक्ति से तुलना कीजिए। हमारा
हमारा अनुमान है यदि विचार पूर्वक आप शास्त्रों की गुत्थियों
को अपने सामने रक्खेंगे, तो आप भी यही निश्चय निकाल
सकेंगे कि हमारे पूर्वजों में सात्त्विक शक्ति का प्रबलता व्याप
रूप से विशेष रूप से काम कर रही थी। और इसी एक मा
सामुदायिक बल के सहारे, दूर देशों में जाकर वे भी आज
यूरोपियन व्यापारियों की भांति धन और यश कमा लाते
दूसरी ओर आप हमारे चरित्र नायक के समान, तत्काल
बहु सम्पर्क भारतीय जनों में उदारता की भी पराकाष्ठा
पायेंगे। जहां आज का रङ्ग से गए और मीटी सें हाथी र
प्रायः प्रत्येक प्राणी अपने यश-बल वैभव और सत्ता के स
दूसरे के यश बल वैभव और सत्ता को फूटी आंखों
देखना पाप और ताप समझता है और यूरोपीय म
सरीखे महा युद्धों का उत्तरदं देखता है, वहां तत्काल
प्रायः प्रत्येक नर-वीर दूसरे की भलाई और सहायता
अपने आप को निछावर कर देना अपना कर्त्तव्य
जीवन की सफलता समझता था। हमारे शाहजी की उदार
का उदार नमूना भी पाठक अब सुनें ! सेठजी ने नगर-भर
घोषणा करवा दी थी कि विदेश यात्रा में जो सद्गृहस्थ
उन के सफ़र का सारा खर्च मैं उठाऊँगा और व्यापार में
और जितना भी लाभ होगा वह सभी को समान रूप में
दिया जायगा। बन्धुओ ! कहां है हृदय की वह व्यापक
शालता ! और कहां आज के यह क्षुद्र गर्जीपन का पुरुषार्थ
और स्वार्थ है ! जिधर भी आप आंख उठाकर विचार पू
देखियेगा तहां तहां आप यही पाइयेगा कि उस व्यापक
शालता का पवित्र और पूजनीय आसन अधम स्वार्थ

सङ्कीर्णता और ईर्ष्या के द्वारा कलुषित हो रहा है। उदाहरणार्थ, यदि आज का कोई दूकानदार रुपये के माल के सत्रह आने करना चाहता है, तो दूसरा उसे पन्द्रह आने ही में बेच कर अपने अन्य भाई, तथा अपने आप को मटिया-मेट करना अपनी आज की हृदय की उदारता का निकृष्ट नमूना संसार के सामने रखना अपना कर्तव्य मान बैठा है। किम्बहुना, "छिद्रेष्वऽनर्थो बहुलीभवन्ति" के न्याय से जिधर भी देखिएगा, चहुँ ओर ईर्ष्या-द्वेष-मोह और मात्सर्य की भरमार देख पाइयेगा। हम अपने इन विचारों को लेकर अपने पाठकों की सेवा में फिर कभी उपस्थित होंगे। आज विषयान्तर भय से हम इन्हें यहीं छोड़ अपने विषय के अन्तर्गत प्रवेश करते हैं।

अब, हमारे शाहा अरणकजी शुभ मुहूर्त और श्रेष्ठ शकुन देख कर, सर्व सङ्ग के साथ, जहाजों पर सवार हुए। सम्भव है, हमारे अनेक बन्धु, यहा यह प्रश्न पैदा करें, कि एक श्रावक के लिए शुभ मुहूर्त और श्रेष्ठ शकुन देखना, यह कार्य कैसा! तो हम उन्हें यही कहेंगे कि यहा मुहूर्त से हमारा यही मतलब है, कि प्रत्येक कार्य के प्रथम जो मङ्गल मनाया जाता है, वही शुभ मुहूर्त है और इसी प्रकार, जो प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व, उत्तम प्रकार से विचार पूर्वक उस कार्य का आदि-अन्त देखा जाता है, यही श्रेष्ठ शकुन है। हम अच्छी तरह जानते हैं, कि हमारे प्रत्येक पाठक हमारे इन विचारों को रोज़ काम में लाते होंगे। हमारे शाहाजी ने भी जहाजों पर आरूढ़ होने के पहले मङ्गल मनाया और निर्णय-बुद्धि से विचार कर लिया। इस से अब हमारे पाठक इस सिद्धान्त पर आ पहुँचते हैं, कि हमारे पूर्वज भी आज के वैदेशिक व्यापारियों की भांति सु-दूर देशों से जहाज़ों के द्वारा व्यापार किया करते थे। और देश को हरप्रकार के धन धान्य और वैभव से सम्पन्न करना

अपना ध्येय समझते थे। अस्तु । आज के इस सिद्धान्त का वि जहाजों द्वारा विदेश-यात्रा नहीं करना चाहिए हमारे उपर्यु कथन से किस कुल अवश्य होजाता है । पर हां उस समा ऐसी यात्राओं के प्रारम्भ ही में उन देशों के जल वायु के अ कूल सब तैयारियां यहीं से करली जाती थीं। जिस से स्वदेश के प्रति अभिमान स्व धर्म के प्रति निष्ठा और स्वकर्तव्य के प्रति आत्म बलिदान कर देने की शीघ्र आजाने तक मे कट्टरता बनी रहती थी।

अब अरबकजी आनन्द-पूर्वक अर्णवपोतों के द्वारा अपन सजातियों को साथ लेकर समुद्रीय मार्ग को काट रहे हैं पाठकों ! संसार का यह एक अटल सिद्धान्त है कि जो वस्तु जितने ही अधिक महत्व की होती है संसार में उस का मोल भी उतना ही अधिक होता है और उस के प्राप्त करने में बाधाएं भी उतनी ही अधिक आती हैं। और जो वस्तु जि तने हो कम मूल्य की और सुलभता से मिल सकती है वे उतनी ही संसार का कम उपयोगिनी भी होती हैं। उदाहरणार्थ आप एक एक छटाक को तोल के लोहे के दो टुकड़े लीजिए, जिन में से एक की घड़ी बनाइए और दूसरे की कीलें। इन दोनों प्रकार की वस्तुओं में से यह आप को प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञात हो चुका होगा कि पहले के बनाने में समय शक्तियां और श्रम अधिक लगा है और दूसरे में समय शक्तियां और श्रम बहुतही कम मात्रा में खर्च गया है । फिर इन्हें बेचने पर भी आप को ज्ञात हो जायगा कि पहली वस्तु बाज़ार में जहां १५) पन्द्रह रुपए के कम से कम मूल्य में बिकती है वहां दूसरी अधिक से अधिक केवल दो पैसे ही में बिक सकती है। इस से पाठक प्रवर, हमारे उपर्युक्त सिद्धान्त को संसार का अच्छी तरह वृत्त सकते हैं । इसी सिद्धान्त पर

हमारे चरित नायक भी अब कसे जाने वाले हैं। जब जहाज समुद्रो का पेट चीरते हुए, आनन्द पूर्वक, अरणकजी की यात्रा को सम्पन्न कर रहे हैं त्योंही अचानक, हमारे ऊपर के सिद्धान्त के अनुसार, जोरों की आंधी समुद्र में चलती है, आकाश मघाच्छन्न होजाता है उसमें बिजलियां कड़कने लगती हैं चारों ओर तूफान पर तूफान आकर अपना ताण्डव नृत्य अरणकजी और उन क साथियों को दिखाते हैं, इतना ही करके नियति का निर्धारित नियम हल नहीं होजाता है, वरञ्च विशालकाय, महान् भयावना रूप धारण किये हुए एक देव भी, उस समय आकाशी मार्ग से दौड़ा हुआ, वहां आ उपस्थित होजाता है। उस का दृश्य ऐसा रोमाञ्च कारी था, कि देखने से प्रत्यक्ष धैर्य का भी धैर्य छूट पटा जाता था बड़े बड़े शूरों के भी पांव उखड़ जाते थे, और हृदय थर्रा जाते थे। पर, पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिए, कि हमारे शाहाजी का धैर्य उस समय भी वैसा ही बना रहा जैसा, कि वह शान्ति के समय बना रहता था। और, वे तनिक भी भय भीत न हुए। इस का मूल कारण यही था, कि सेठजी के नस नस में अपने धर्म और कर्म के प्रति उत्साह की लाली भरी हुई थी, और हिम्मत का हिमायती पन उन के हृदय में हुलसा रहा था। यहा हम अपने पाठकों के मनोरञ्जनार्थ, यह भी प्रदर्शित कर देना उचित समझते है, कि एक उत्साह-पूरित हृदय संसार को क्या क्या कर दिखता है। इस के सम्बन्ध में हम अपने विचारों को आप के सम्मुख कुछ न रखते हुए, केवल एक सुकवि ही के विचारों को, पद्य रूप में, यहा, अविकल उद्धृत किये देते हैं। जैसे—

जिस देश के मनुष्यों में हो उत्साह की लाली।
करते न हो निज चित्त को उत्साह से ख़ाली॥

वीरों का तो उत्साह महा-मन्त्र ही जानों।
उत्साह की दासी है सकल सिद्धियां मानो ॥ ५ ॥
उत्साह ही इस जग में सफलता का पिता है।
उत्साह ही वैरी के लिए जलती चिता है ॥
उत्साह ही माधुर्य में स्वादिष्ट + सिता है।
उत्साह का इस जग में अजब ढङ्ग × क़िता है ॥
उत्साह पै रहती है सदा ईश की छाया।
वीरों के सुकृत्यों ने है यह जोग लखाया ॥ ६ ॥
संसार के सब काम हैं उत्साह पर निर्भर।
यह जान के निज चित्त को उत्साह से लो भर ॥
फिर देखो कि किस काम को तुम सकते नहीं कर।
पत्थर भी बने पानी, अगर जाओ न तुम डर ॥
अब आगे सुनाते हैं तुम्हें सत्य कहानी।
उत्साह बढ़े सुनते ही और भीति हो पानी ॥ ७ ॥

"कवि-दीन"

उस भीम काय देव ने रोमाञ्चकारी शब्दों में अरणकजी को कहा, कि हे अरणक ! यह जैन धर्म जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों को सहज ही में कल्याण कल्प-तरु के समान फल-दायक है। दया की फैली हुई जड़ ही पर इस कल्प वृक्ष की सारी कल्पना है—दया ही इस धर्म की सारी शान और वान है, दया ही इस का जीवन-प्राण है। फिर, जभी तो लोग ऐसा कहते हैं, कि

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।

हे अरणक ! दया, धर्म की मूल अर्थात् किसी को ज़रा भी बाधा न पहुंचाते हुए सम्पूर्ण प्रकार की उन्नतियों (धर्म) की जड़ कैसे है, सो भी सुनले। दया का वास्तविक अर्थ

+ चीनी × तार

है दूसरों के दुखों का दूर कर सुखी होता। इस कारण जो दया ही से मय आणी का हृदय दूसरों के दुखों से द्रवीभूत हो जाता है यह यह बात बिलकुल स्वाभाविक है कि उस दुखिया दूसर प्राणी को भी उस दयावान के सुख में सहानुभूति किसी न किसी प्रकार का अवश्य होता ही चाहिए। अब इस प्रकार दयाके सूत्र से बंधे हुए सम्पूर्ण प्राणियों को एक दूसरे के प्रति हमदर्दी है तो फिर कौन किस का शत्रु हो सकता है ? ये प्राणी फिर-वैर भाव के अभाव में एक दूसरे के हित चिन्तक होजाते हैं। इस हित चिन्तना के महद् व्यापार से सात्विक शक्ति पैदा होती है। और, यही सात्विक शक्ति सब ऐहिक और क्या पारलौकिक सभी उन्नतियों का मूल कारण है। उदाहरण के लिए एक सम्यक् संयोग के सात्विक शक्ति ही से इस दृश्यमान संसार का सम्पूर्ण सुन्दर व्यापार चल रहा है। अस्तु। दया ही धर्म की सुदृढ़ मूल है। यही कारण है जैन धर्म में राजा से लेकर रङ्क तक और कीट पतङ्ग से गज राज तक सब ही की आपस में अच्छी तरह पटती है। इस के सिद्धान्त बड़े ही सीधे सुन्दर, सुपाच्य और लोकोपकारी हैं। यही एक मात्र जैन-धर्म सम्पूर्ण इह लौकिक और पार लौकिक सुखों का देने वाला है। इसी अपनी सारी अच्छाइयों से इस धर्म ने सम्पूर्ण प्राणियों के हृदयों को एकता के एक मजबूत सूत्र में बांध कर निर्यात के राज्य में बड़ी भारी सनी पैदा करदी है। पापी से पापी भी इस धर्म का आश्रय पाजाने पर बड़े भारी पापों का धर्म से आत्म-प्रदान कर लेता है। ए भारतके ! तू भी उसी जैन-धर्म का धारण करने वाला अन्य-मित्र अधिकारी जैन है। और यही कारण है कि निर्यात के व्यापार की इस असामयिक किन्तु स्थायी हलचल को मिटाने के लिए ही आज तुम सर्गमें उसी के

सम्मुख, मै अचानक आ उपस्थित हुआ हूँ। और तुझ से आग्रह-पूर्वक, तेरे जैन-धर्म को छोड़ देने के लिए कहता हूँ जिस से, भविष्यत् में नियति के सारे व्यापार अपने अपने वास्तविक रूप में ठीक बने रहें। फिर भी सम्भव है, मेरे इस कथन का तुझ पर पूरा पूरा असर न पड़े। इस लिए, पहले तू मेरी शक्ति को भी अच्छी तरह पहचान ले, ताकि तुझे अन्त में पछताना न पड़े। देख! तूने मुझे मेरे आगमन के मार्ग से ही पहचान लिया होगा, कि मेरी जल-थल और आकाश में सब जगह समान गति है। तूने मेरे भीमकाय शरीर को देख कर इस बात का भी अनुमान कर ही लिया होगा, कि तुम मनुष्यों की शारीरिक सम्पति, मेरी स्थूल शक्ति के आगे किसी गिन्ती ही की नहीं है-मै तुम्हें खटमल, पिस्सू की तरह, एक आन की आन ही में पीस सकता हूँ। मेरे चहरे के हाव-भाव और बोली-बाणी का परिचय पाकर तुम्हें मेरे क्रूर और और कट्टर स्वभाव का भी कुछ पता लग ही गया होगा। एक बार जिस किसीने, ज़रा भी मेरी क्रोधाग्नि को भड़काने का प्रयत्न किया, कि बस, मै ने उसे अपने हाथ की, देख! इस चमचमाती और लपलपाती हुई मीयान-वासिनी तलवार के घाट ही उतारा समझो! बस एक, ही हाथ के हलके से वार मात्र में ही, वह तलवार की तीक्ष्ण धार के घाट उतर कर, बेचारा, तत्काल ही, परलोक का पासपोर्ट कटाते ही बनता है-अपनी जीवन-लीला का वह वहीं सवरण कर देता है। मेरे इन सख्त और अप्रिय शब्दों को सुन कर और मेरी शारीरिक शक्ति को देख कर, तुम यह भी अनुमान कर सकते हो, कि अगर तुमने मेरी हाँ में हाँ न मिलाई, मेरी आज्ञा का ठीक ठीक पालन न किया, तो मै तुम्हारी इस जहाज को बात की बात में औंधि कर के जल-मय कर सकता हूँ, और, तुम्हारे

तथा तुम्हारे सम्पूर्ण साथियों के जीवन को इस समुद्र के
जीवन-जल के हाथों सौंप सकता हूँ। तुमने मेरी वर्तमान की
करनी से यह भी जान ही लिया होगा कि धर्म-कर्म के ढको-
सलों को भी कुछ नहीं मानता। अस्तु ! मैं जो बादशाह
अपनी मनोनीत इच्छा के अनुसार कर गुजरता हूँ—कर बैठता
हूँ। फिर मैं वहां न तो समय ही का विचार करता हूँ, न
स्थान ही को सोचता हूँ। और न फिर पर-पक्ष की शक्ति
और सम्पत्ति ही की तलाश में मैं उधेड़-बुन मचाता हूँ।
अरणक ! तू धर्म-निष्ठ होने से विचारवान तो हो होगा।
अतः मेरे शब्दों को भी तू ने पूर्ण रूप से सुन ही लिया होगा।
यदि तू ने अभी तक के मेरे कथन पर अपने धर्म को छोड़ने
का कोई विचार स्थिर न किया हो तो मैं तुझे कुछ मिनिटों
का अवकाश और भी सुधारा दिये देता हूँ। तू फिर भी अपने
पूर्वापर हानि-लाभ को सोच समझले। अन्यथा, मैं तुझे और
तेरे साथियों को इस अगाध अम्बुधि में डुबो मारूंगा। जिस
से तुम्हारा प्राणान्त तो यहीं हो ही जायगा और तुम्हारे
कुटुम्बी लोग तुम्हारे नाश के कारण अपने अपने घर पर
मर मिटेंगे। रे अभागी अरणक ! यदि तू मेरे इस कथन
से भी तत्त्व की तह तक नहीं पहुँच सके, तो तुझे अपनी
ज़बरदस्त ज़िद के कारण यह सौदा हर प्रकार सूखा और
महँगा ही पड़ेगा। क्योंकि तू एक तरफ जहां अपने धर्म को
छोड़ना स्वीकार नहीं करता है वहां तू अपने साथियों तथा
अपने और उनके कुटुम्बियों के सब नाश का मूल कारण भी
बन जैन-धर्म के मूल सिद्धान्त दया का पालन भी तो नहीं
कर सकता है। फिर दया धर्म का मूल तेरे लिये लागू ही कैसे
हो सकता है अस्तु। जब मूल ही नहीं तो पींड और पत्र के रूप
में धर्म की स्थिति भी कैसे रह सकती है। दूसरे, जिस दया और

देव भयकर रूप धारण कर अरणकजी को जो अपने साथियों के साथ जहाजमें यात्रा कर रहे हैं कह रहा है कि कहदो "जैन धर्म झूठा है"

Lakshmi Art Bombay, 8

सम्पत्ति को कमाने तुम विदेश को चले हो, उसका कामभी तो तुम्हारे ही प्राणों के साथ,यहीं तमाम हो जायगा। विपरीत इसके तू केवल अपना धर्म-मात्र देकर, वदले में अपना, अपने साथियों का और अपने तथा उनके पारिवारिक जनों का जीवन और अटूट रत्न-राशि तथा मुझ सरीखे महान् देव की आज्ञा के पालन करने का श्रेय प्राप्त कर सकता है। इस लिए, अरणक! तू अभी भी सँभल जा! इस सुवर्ण सुयोग को तू किसी तरह भी हाथ से न जाने दे! अगर, तू सचमुच में वणिक समुदाय का पुरुष है तो "जो धन जातो जाण जे आधो दीजे बांट" इस उक्ति के अनुसार, अन्य सम्पूर्ण वातों को रख कर, वदले में तू केवल जैन-धर्म-मात्र ही को छोड़ दे। देव ने अपना इतना लम्बा चौड़ा रोना-गाना गा कर, कुछ देर के लिए, वोलना वन्द किया।

देव के इतना भय दिखाने और धमकी देने पर भी वीर और धर्म-रत श्रावक अरणक के मन में, ज़रा भी भय की भगदौड़ न हुई—वह जरा भी न डरा। प्रत्युत, जैन धर्म के प्रति, उस की और भी गाढ़ी प्रीति जागृत हो आई। धर्म के आवेश में उस का हृदय वासों उछलने लगा। उस पिशाच रूप देव के मुह से सुनी हुई अपने धर्म की उस व्याज-स्तुति से, उसकी नस नस में नयेपन की एक निराली छटा काम करने लगी, जिस के कारण, उस का चहरा एक विशेष प्रकार के दैविक सौन्दर्य से और भी दम-दमा उठा। पर हाँ, जो उस के साथी लोग थे, वे कुछ अवश्य घवरा उठे, और गद्गद तथा कम्पित स्वर से रोते और भयभीत होते हुये, अरणकजी से कहने लगे। "सेठ साहव! 'हमने जैन-धर्म छोड़ दिया' वस, आपके इतने शब्दों के कहने ही पर तो, अपन सव की जान वची जाती है। फिर, विद्वान् लोग यह भी तो कहते हैं कि—

विपद् हेतु रच्छे धन हिं; धन तें दारा मारि।
धन अरु दारा त्यागिये; आतम नित्य विचारि।

अर्थात् आये हुये आपत्काल के लिये मनुष्य को चाहि
कि वह सदा धन की रक्षा करे, परन्तु यदि उस धन से अ
ना स्त्री की रक्षा होती है तो फिर वहाँ अपनी स्त्री की रक्षा
उस धन का भी मोह छोड़ दे। परन्तु जहाँ अपनी ही र
का प्रश्न आ पड़े तो वहां उस धन और स्त्री दोनों की
कुछ पर्वाह न कर अपने स्वार्थ और सुख की वेदी पर उन
बलि करदे। या यूं कहो कि अपनी रक्षा को सर्वापेक्षा उत्त
समझ कर उस के लिये स्त्री और धन के नाश की भी कु
पर्वाह न करे। नीतिकारों का भी यही कथन है। भाई पि
धर्म कोइ ईंकामिसे की वस्तु भी तो नहीं है जो ऐसी बाह
दिखावटी बातों से मिट सकती या रह सकती है। जिस
भी " आपत्काले मर्यादा नास्ति " के नाते आप ऊपर
शब्द कह कर, क्यों नहीं इस पिशाच रूप देव से अपना त
हमारा पिण्ड छुड़ाते हैं! हमारी समझ में तो इतना क
से कोई ऐसा पाप भी नहीं होता है। थोड़ी देर के लिये य
यह मान भी लिया जाय कि ऐसा कह देने पर, फिर ध
रहा ही क्या! तो अपने धर्म गुरुओं से इस अपराध का दण
(प्रायश्चित) लेकर आप पुनः शुद्ध हो सकते हैं। और आप
के आजाने पर तथा किसी उचित मार्ग के न मिल
पर यह नियम तो पृथ्वी के सभी लोगों से प्रति पालि
है। दुनिया के सारे लोग इस नियम को निश्चय पूर्वक ए
स्वर से स्वीकार करते हैं, कि विपत्ति काल में मर्या
को मर्यादा नहीं रहता । अतः तुम्हें भी इतना मा
कह देने पर हर्ज ही क्या है! फिर अकेले तुम ही थोड़े पा

क भागी हो रहे हो ! हमारी भी तो इसमें पूर्ण सम्मति है, जिसके कारण, हम भी तो तुम्हारे पाप के बंटवारा कराने वाले वन रहे हैं। दूसरे, इस जगत् की बुद्धिमानी भी तो इसी में है, कि आप के दो चार शब्दों ही में, अपने सबों के प्राण बचे जाते हैं। अपने ही क्यों, अपने कुटुम्बियों के प्राण भी तो अपन बचा रहे हैं। क्या अपने कुटुम्बियों को दुःख से उवारना, यह अहिंसा और दया नहीं है? अस्तु। एक ओर देव के शब्दों के अनुसार, सिर्फ यह कह देना कि- "हम ने जैन धर्म छोड़ दिया" हमारी राय में तो, दूसरी ओर के अपने कुटुम्बी आदि के प्राणों को बचा कर, जैन धर्म के जन सुख-दायक तत्त्वों के पालन कर लेने ही के समान है। अपने ऐसा कर लेने पर, अपने बाल बच्चे व सारे कुटुम्बी जन घर पर सुखी होंगे। प्रत्युत, न कहने पर, यह देव रुष्ट हो, अपने सबों के प्राणों का ग्राहक बन बैठेगा। उधर यह सवाद जब कुटुम्बी लोग सुनेंगे, वे भी घोर दुःख के सागर में डूब जावेंगे। यह सारा पाप और ताप फिर आप के सिर ही मॅढा जायगा, जिस से, जन्म-जन्मान्तरों में भी छुटकारा पा सकना कठिन हो जायगा। फिर समय के चले जाने पर, युग युगान्तर तक पछताते रहोगे और कर्म कर कर के सड़ोगे, तथा, नित नये नये पापो का भार अपने सिर लादोगे। इतना ही नहीं इस प्रकार तुम कर्म-क्षय के बदले, नित्यम्प्रति, तुम अपने कर्मों की वृद्धिही में सहायक होंगे, जिस के कारण तुम निर्वाण पद की प्राप्ति से भी कोसों दूर भागते जाओगे। साथियों के इतना समझाने बुझाने पर भी अरणकजी तनिक भी अधीर न हुए, और जो के त्यों परमात्म चिन्तवन ही में मग्न हो सबके कथन को सुनते रहे। जब प्रत्येक साथी एक एक करके अपने विचार प्रकट कर चुका तब अरणकजी ने

मा अपने दो शब्द कहना चाहे। ये वाल ' ए मेरे मित्रों !' यह इस नश्वर जगत् का धन और धाम यह पौद्गलिक शरीर और शक्ति, ए बाल और बच्चे, यह मौसम अवसर, यह कुटुम्ब और कबीला यह संयोग और वियोग और यह सम्पदा और विपदा आदि कई बार मिले और कर्म-विपाकवश फिरभी कई बार मिलेंगे; पर देव-दुर्लभ यह जैन-धर्म जो जन्म जन्मान्तरों के सुकर्मों से सम्प्राप्त हुआ है-मिला है भला इसे एसी साधारण क्षणिक आपत्ति से विरक्त कैसे खो दिया जाय ! भला करोड़ों हीरों की अवसा बदली मुट्ठी भर कांच के टुकड़ों से करलेना कहां की बुद्धिमानी है ! कहां का यह न्याय है ! और कहा का यह न्यायोचित नियम है ! तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरों के पापों के क्षय और सु-कर्मों के उदय का यह प्रत्यक्ष फल है कि तुम इस जैन धर्म की शीतल सुखद छाया में फल फूल रहे हो और जिसकी इस वय अकारण शरारत करके भी क्रूर पुरुष भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते फूले अङ्ग नहीं समाते हैं, साथ ही जिसे इस धर्म की ईर्ष्या दिन रात सन्तप्त किये रहती है। अस्तु। मेरी तो यह ध्रुव धारणा है कि यह एक क्या-इस सरीखे सैकड़ों नहीं हजारों नहीं परन्, लाखों और करोड़ों भी देव एकही समय में मुझ अकेले पर अपना आघात आकर करें तो भी मैं तो जब तक मेरी जान में जान है, अपने स्वीकृत और आत्म पवित्र धर्म का एक क्षण-भर का भी छोड़ने के लिये उतारू नहीं हूँ। अरे बन्धुओं ! जिस धर्म के धारण किये रहने ही पर तो अपनी धारणा-स्थिति-संसार में हो रही है, फिर क्या यह धर्म भी कोई छोड़ने की वस्तु है !

इतने में वह देव भी अपनी मायिक शक्ति के बलपर डराता हुआ कहता है, कि अभी तक तो अरणक जरा भी अधीर नहीं हुआ। मेरा, तथा सम्पूर्ण दल के साथियों का

इसे इतनी देर तक समझाना बुझाना, इस के लिए केवल "अरण्य रोदन" होगया। हमारे समझाने बुझाने पर यह तो पहले से भी और अधिक धर्म में निष्ठावान् हो गया है। हमारे विषैले कथन ने तो इस पर अमृत का असर कर दिखाया है। सच है, धर्म-बल के आगे, सारे सांसारिक बल केवल पशु बल हैं। और, फिर इस नश्वर जगत् में तो—

कर्तव्य का पालन ही है बस धर्म कहाता।
कर्तव्य का पालन ही है सब पुण्य का दाता॥
कर्तव्य का पालन ही है सुर-लोक दिलाता।
कर्तव्य का पालन ही है संसार का त्राता॥
कर्तव्य के पालन मे जो है ढील दिखाता।
वह मानो है संसार की बुनियाद ढहाता॥ १॥
संसार में हर व्यक्ति अकेला ही है आता।
फिर अन्त समय जग से अकेला ही है जाता॥
कर्तव्य के पालन से जो है पुण्य कमाता।
वह पुण्य ही दो रूप से है मोद का दाता॥
धर धर्म वपुप संग मे सुर-लोक सिधारे।
यश रूप से संसार में प्रख्याति पसारे॥ २॥

फिर—निज धर्म की रक्षा मे लगाता है जो तन-मन।
बन जाता है बस रंग महल उस को विकट वन॥
रक्षा के लिये देता है जगदीश भी निज गन।
सौ मन का गरू भार भी हो जाता है इक कन॥
कुछ बात असम्भव नहीं रह जाती है उसे फिर।

निज ध म समक देता है जिस धात में आ सिर ॥ ३ ॥
—"कविहीन

येम हा धार्मिक पुरुषों की ओर इंगित करते हुए एक महात्मा ने भी क्या ही मच कहा है कि——

"चक्की चली सा चलनेदा, पिस कर आटा होय।
लग रहा सा कीले से जा, बाल न बाँका होय ॥"

अर्थात् जो धर्म रूप कील मे लगा रहता है उस का बाल मात्र भी कदापि बुरा नहीं हो सकता।

जब उस वृष मे जम पूर्ण रूप से भरी हुई जहाज को अगाध समुद्र की पेंदी में बैठा देने के लिए-डुबा देने के लिए आकाश की ओर उस को उठाया और ज्योंहा वह उन्हें पटकन ही को था कि उतने ही में अरहन्नकजी के साथियों ने उस वृष में कुछ अनुनय-विनय कर, थोड़े समय के लिए उस ओर ठहर जाने का कहा। और दूसरी ओर वे शाहजी से सम्बोधन कर कहने लगे/अरे हत्यारे सठ! क्या आज तू ने हम सभा का जाम का गया देने का ठका ही लिया है? अरे अर्थ-पिशाच! लालची सेठ!! तू बता तो सही आखिर कार तेरा इरादा क्या है! अरे शंन क्रूर पर्य कुमार्गी! वृथा-धाम् धमन की स्पर्ध डींग मारने वाले!! तू हमारे प्राणों का ग्राहक धमन के साथ ही साथ हमारे बाल-बच्चों और औरतों का आजन्म रुदन और शोक की सम्मत गोदी में क्यों छोड़ दे रहा है! अरे पापा कलो!!

माह हाय गराम की, कबहुन निष्फल जाय।
मुई खाल की स्वाँस सों, सार भस्म हाजाय ॥

अरे अरहन्नकजी! तुम हम गरीबों की आहों में जन्म जन्मांतरों के लिए रौरव नर्क के अधिकारी न बनो। अरे तू!

हमारे लिए क्यों, "ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार में" वाला बन रहा है! अरे धर्म धर्म की निरर्थक और निरन्तर नाद मचाने वाले! अगर मरना ही है, तो तू ही अकेला क्यों नहीं मरता! भला, हमें तू साथ लेकर क्यों डूबता है! अरे! क्या, भारत की रमणी-रत्नों ने तुझ सरीखा और किसी को, इस काल में, धर्म का धोरी पैदा ही नहीं किया? अरे अकरुण अरणकजी! अब तो तेरे हृदय में जरा दया ला! अरे! हम ईश्वर को साक्षी कर कहते हैं, कि तेरे इन शब्दों के, कि- "हमने जैन-धर्म छोड़ दिया" कहने पर जो कुछ भी पाप होगा, उस के हम सब समान हिस्सेदार होंगे। अरे! अब तो तेरे मुंह से "हॉ" कह! हमारा प्राण कण्ठगत हो रहा है, हमारे हाथ-पांव इस असामयिक मृत्यु का आगमन देख फूल उठे हैं, हमारा कण्ठ अब घबराहट के कारण, अवरुद्ध सा होगया है। हम अब जीते हुए भी मुर्दा से बन बैठे हैं।" इधर तो शाहाजी के साथी, जिन्हें शाहाजी अपने असमय के भी चिरसङ्गी समझता था, उसे इस प्रकार, औंधा सौंधा कोस रहे थे, दूसरी ओर, वह पिशाच-रूप धारी देव अलग ही क्रोध के मारे आग-बगूला हो रहा था, और कह रहाथा "अरे मूढ अज्ञानी अरणक! जो भी तुझे अपने प्राणों की पर्वाह नहीं है तो न सही, पर तौ भी तू! इन बेचारे ग़रीब अनाथों को जान को, क्यों मटिया-मेट करवाने का निमित्त बन रहा है? ये बेचारे आये तो थे धन कमाने की आशा में, और जायेंगे प्राणों पर बाज़ी लगा कर! यह तेरा इन के साथ घोर विश्वास घात हुआ है। इन का तेरे साथ आना तो, "चौबेजी छब्बे बनने गये और वापस लौटे बेचारे दुबे ही रह कर," इस कहावत के अनुसार भी नहीं हुआ। मुझे समझाते समझाते इतनी देर होगई, पर, अभी तक तेरी बुद्धि सद्-असद् विवेक

के घाट उतारा नहीं है। तू अभी तक अपनी ऐंठ ही में अकड़ा फिरता है, अब तू सचेत हो जा ! अन्यथा, यह तेरी अकड़ अब कुछ मिनिटों ही में मिट जाने वाली है, यह तेरी सारी हेकड़ी अब शीघ्र ही खिसिया जायेगी। यदि तुझे अपना और साथियों का कल्याण प्यारा है तो तू अब भी मेरे कथन को मान जा ! नहीं तो अब समझ ! यह मेरी तलवार तेरे खून की प्यासी लपलपाती हुई तेरी गर्दन को अपना लक्ष्य बनाना ही चाहती है ! और, यह मेरा खञ्जर, तेरे खोपड़े पर खिसिया रहा है और उत्सुक है कि अब शीघ्र ही रक्त-रञ्जित मुख हो मेरे स्वामी देव को भड़कती हुई कोपाग्नि को कुछ शान्त करूँ। तू अब भी तेरी ऐंठ को छोड़ दे। यह मेरा तू अन्तिम कहना समझ ! और एक बार सिर्फ कह दे कि "मेरा जैन धर्म झूठा"। बस इतना कहने ही में तो तेरी कुशल क्षेम है। और तुम्हारा स-कुशल घर लौटना व अपने कुटुम्बियों से मिलना तभी सम्भव है जब कि तुम यहां से स-कुशल लौट सकोगे। अस्तु "

साथियों की झिड़कियों और गालियों तक की उस विकट चीत्कार ने और उस देव के उस भयङ्कर ध्वनि ने अहिंसा-धर्म के सच्चे और वीर उपासक अरणकजी के दिल-जिगर पर अणु-मात्र भी असर न डाल पाया। हमारी धर्म-परायणता की सच्ची कसौटी भी तो ऐसी ही आकस्मिक घटनायें हुआ करती हैं। यदि ऐसे समयों में हमारा धैर्य रञ्च-मात्र भी न डटा यदि हमारा मन तिल-मात्र भी न डिगा, यदि हमारी धर्म-निष्ठा में लेश-मात्र भी धक्का न लगा, तो प्रवीण पाठको ! समझ लीजिए कि आप का धर्म-रङ्ग गाढा है। आप धर्म के कट्टर धारी हैं, धर्म आप का चिर-साथी है और आप धर्म के वीर-उपासक हैं। बस आप का सब जगह व

अरणकजी के "जैन धर्म झूंठा है" ऐसा न कहने पर देव भयकर रूप वनाकर जहाज को सिरपर उठा कर समुद्रमें डूबाने की चेष्टा कर रहा है

ल्याण ही कल्याण है। यहां हमारे पाठकों को यह भी स्मरण रखना कदापि न भूलना चाहिए, कि कोई कायरता का नाम अहिंसा नहीं है। वरन् अहिंसा और क्षमा निर्भीक तथा वीर पुरुषों का धर्म है। भाग कर घर मे घुस जाने वाले कायरों और का-पुरुषों का नहीं। हमारे शाहाजी भी ऐसे ही धर्मानु-रागियों में से एक थे। फिर धर्म को वे और धर्म उन को छोड़ भी कैसे सकता था। ऐसे ही धीर पुरुषों की प्रशंसा मे राजर्षि भर्तृहरि कहते हैं—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समा विशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणास्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा :॥
—"नीतिशतकम्।"

अर्थात् चाहे नीतिमान् पुरुष निन्दा करें वा स्तुति, लक्ष्मी चाहे आवे या चली जाय, मरण चाहे आज हो या युगान्तर के पश्चात्, परन्तु न्याय के पथ का धीर पुरुष कदापि परि-त्याग नहीं करते।

अब हमारे शाहाजी ने उस देव से निधड़क होकर कहा अरे देव! तू मुझे, क्या धर्म-पथ से भ्रष्ट कर सकता है! यदि, तेरे सरीखे, कई सैकड़ों, नहीं नहीं कई हजारों, देव भी एक ही साथ, एक ही स्थान पर आकर, मुझे अपने धर्म-पथ से विचालित होने की धमकी, या प्रलोभन दें, तो भी मैं अपने प्राण रहते तो अपने जैन-धर्म को कभी भी छोड़ नहीं सकता। फिर, तू तो अकेला मेरे लिए है ही किस बाग की मूली! दूसरा मेरा तो यह भी अचल अटल सिद्धान्त है कि—

" एस धम्मे धुव निच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेणं, सिज्झिस्सन्ति तहावरं ॥

अर्थात् जिनेश्वर भाषित यह धर्म ही ध्रुव, नित्य, और शाश्वत है। इसी धर्म ही से जीव मोक्ष में गये हैं, और जायेंगे। अस्तु। बस हट ! दूर रह ! मेरे पास धर्म ही एक ऐसा विशाल वशीकरण मंत्र है कि तुम सरीखे धर्म भ्रष्ट करनेवाले देव रूपी मार्गों का उस के आगे कोई वश ही नहीं चल सकता। या मैं तो दावे के साथ यहाँ तक कह सकता हूँ कि तुम सरीखे देव मेरा एक बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मुझे तो एक मात्र अपने उसी धर्म का सच्चा विश्वास है जिस के कारण तुम सरीखे हिंसक स्वभाववाले और महान् शक्ति रखनेवाले देव अभी तक मुझ जैसे छोटे से मानव देहधारी किन्तु धर्म पिपासु से बातों ही बातों में उलझ रहे हैं। इसलिए मैं यह भी क्यों न कहूँ कि 'सब घूमेंगे अंगूठा, एक गुरु न रूठा चाहिए।"

फिर लौकिक धर्म भी चार प्रकार के माने गये हैं। अर्थात् वर्णधर्म, आश्रम धर्म, सामान्य धर्म और साधन धर्म। इस प्रकार का मुख्य कारण है देश-काल और पात्रों की विभिन्नता। इन में से सामान्य धर्म अधिक महत्वशाली है। क्योंकि उस का पालन सब काल सब देशों और सब पात्रों के द्वारा यथा-योग्य रूप से हो सकता है।

प्रिय पाठको ! इतना ही क्यों भारत के प्रत्येक भारतीय हिन्दू मात्र का विशेषत्व है उस का धर्म मानना। भारतीय जाति के व्यक्ति-गत व्यवहार उस की सामाजिक रीतियाँ और उस का राजनीति या शासन-प्रणाली सभी एक मात्र

धर्म ही पर प्रतिष्ठित है और यह धर्म ही भारत के चरित्र और अनुष्ठान, में, भरा हुआ है। भारत के लिए धर्म एक काल्पनिक मुक्ति नहीं है परन्तु, वह एक सु-स्पष्ट, ध्रुव और जीवित पदार्थ है। इस धर्म की उपेक्षा लापरवाही या अवहेलना कर के हम जिस जिस के जो जो कुछ किया और करते हैं, तथा करेंगे, उस से हमारा कल्याण न कभी हुआ ही है न होता ही है और न भविष्यत् ही में उस के होने की कोई आशा है। विरोधी सभ्यता के सहसा सङ्घर्ष से भारत की तमोमयी निद्रा का जो भी कुछ तिरोभाव हुआ सा दिखता है तथापि, उसी के साथ ही साथ, वह अपने सनातन आदर्श से, धर्म के पारम्परिक पथ से भ्रष्ट भी होगया है। हमारे पूर्वजों ने इसी सत्य, सनातन जैन, धर्म का अनुसरण और अवलम्बन करके ही अपने जीवन को धन्य और कृतार्थ माना था और किया था। उन्होंने धर्म ही के उज्ज्वल प्रकाश को अपने हृदयों में सु-स्पष्ट देख कर, यह जगत्-विख्यात घोषणा की थी, कि केवल सत्य स्वरूप धर्म ही भारतीय सन्तानों को सर्वापेक्षा प्रियतम वस्तु है, वह पुत्र से भी उत्तम है, और धन से भी उत्तम है, और उसी के एक मात्र बल से सब की अपेक्षा अन्तरतम, तथा सर्वापेक्षा प्रियतम परमात्मा को हम प्राप्त कर, जीवन की अगम यात्रा को परम सुलभ बना सकते हैं। फिर, अन्न जैसे स्थूल शरीर की पुष्टी करता है। इसी प्रकार, धर्म, अध्यात्म जीवन का पोषण करता है। धर्म ही जगत् की प्रतिष्ठा या आश्रय है और-" धर्मेण पापमनुदति " धर्म ही पाप का नाश करता है। भारतीयों के लिए धर्म ही औषध है और धर्म ही पथ्य है। हमारे पूर्वज, जैसे एक छोटा बच्चा माता को ज़ोरों से पकड़े रखता है, उस प्रकार धर्म को सर्वापेक्षा प्रिय समझ कर वे पकड़े हुए थे। उन्ही के धर्म बल

से आज इस प्रति-कूल घटनाओं के चक्र में पड़े हुए भी हम अपने विशपत्व का—अपने असली पन को—किसी प्रश में बचाये हुए हैं। नहीं तो अतीत इतिहासों के अवलोकन करने से पता लगता है, कि न मालूम कितनी जातियाँ कितने प्रभावशाली साम्राज्य और कितने विश्व-विजयी सम्राट जो एक समय बड़े उन्नत थे अतीत के परदे में छिप गये। परन्तु यह सब से प्राचीन जाति जो किसी अतीत युग में एक दिन मेघ-हीन शुभ्र किरणोज्वल आकाश के तले आपूर्त होकर महर्षि उस ईश्वर के अमल कोमल पाद-पद्मों के पूजित प्रकाश को प्रणाम कर प्रेम-पुष्पाञ्जली अर्पण कर चुकी थी इस बात को आज कितने युग बीत गये कितने युग युग यहाँ आये और चले गये, बुरी घटनाएं यहाँ घटीं, कितने बर्बर व असभ्य बार बार यहाँ आये और काल के गाल में विला गये, कैसी कैसी भयङ्कर आवश्यकताहियाँ यहाँ मचीं, परन्तु तिस पर भी इस का एक भी ऐसा युग नहीं बीता जो किसी न किसी स्थानीय घटना की विजय-वैजयन्ती को अपने वक्ष स्थल पर, बिना धारण किये ही अतीत के गर्भ में लीन हो गया हो। दैव-दुर्विपाक से आज कल हम लोग धर्म का पालन प्राणों की बाजी लगा कर नहीं करते, कुछ लोक दिखाऊ बाह्याडम्बरों में ही हमारे धर्म का स्थान अधिकृत कर रखा है। इसी से आज न हमारे चित्त में शान्ति ही है और न प्राणों ही में आराम तथा आशाऽवराम की शक्ति है। फिर कुछ शुष्क अर्थ-हीन नियमों के पालन को ही धर्म नहीं कहते हैं, जो अनेक के साथ एक को और एक के साथ अनेक का एक्य स्थापन करा सकता हो जो सान्त (स-अन्त) के साथ अनन्त तक को और मृत्यु के साथ अमृत का अगर मिलन करा देता हो उसी का नाम वास्तव में धर्म है। जैसे एक

सु-कवि कहता है--

धन, विद्या, गुण आयु बलः यह न बड़ापन देत ।
'नारायण' मोहि बड़ोः सु-कृत सों जेहि हेत ॥

फिर, यह भी देखा जाता है कि इस संसार में मनुष्य जो कुछ सत्कर्म करता है, जो कुछ वह धर्म सञ्चय करता है, वही इस लोक में उस के साथ रहता है और उस लोक में भी वही उस के साथ, मरण के पश्चात जाता है । साधारण लोगों में कहावत भी है, कि ' यश अपयश रह जायगा ' और चला सब जायगा " । महर्षि मनुजी भी इसी हमारे कथन की पुष्टि करते हैं । जैसे—

मृतं शरीर मुत्सृज्य काष्ट लोष्ट सम क्षितौ ॥
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनु गच्छति ॥

अर्थात्, मनुष्य के मरने पर घर के लोग उस के मृत शरीर को काष्ठ अथवा मिट्टी के ढेले की तरह स्मशान में विसर्जन कर के विमुख लौट आते हैं, सिर्फ उस का सत्कर्म-धर्म-ही उस के साथ जाता है ।

प्राय ऐसा देखा जाता है, कि जो लोग धर्म को छोड़ देते हैं-अधर्म से कार्य करते हैं-उन की पहले तो वृद्धि होती है, परन्तु वही वृद्धि आगे चल कर, उन के नाश का कारण भी हो जाती है । जैसे, कहा जाता है—

करत पाप फूलै फलै, सुख पावत बहु भाँति ।
शत्रु न जय करि आप पुनि, मूल सहित बिनसाति ॥

महर्षि मनु जी भी यही कहते हैं—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततःसयान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

अर्थात्, मनुष्य अधर्म से पहले बढ़ता है उस का उ
सुख मालूम होता है (अन्याय से) शत्रुओं को भी जी
है। परन्तु अन्त में जड़ से नाश हो जाता है। अतः, म
का पहला और प्रधान कर्तव्य यह होना चाहिए, कि
धर्म की रक्षा करे। जो मनुष्य धर्म का हनन कर देता है,
भी उसका मार देता है-अध पतन कर देता है। और
धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उस की रक्षा करता
इसी लिए, महर्षि व्यास जी ने महा-भारत में धर्म को ज
की किसी भी दशा में न छोड़ने का आदेश दिया है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् ।
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः ॥
धर्मो नित्यः सुख दुःखे त्वनित्ये ।
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥
—" महा—भारत । "

अर्थात् न तो किसी कामवश न किसी प्रकार के भय से
न लाभ से यहाँ तक कि जीवन के हेतु से भी धर्म को क
नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि धर्म नित्य है और सांसा
जितने भी पदार्थ हैं सारे अनित्य हैं। जीव जिस के
धर्म का सम्बन्ध है वह भी नित्य है, और उस के हेतु जि
भी हैं व सब क सब अनित्य हैं। इसलिए, धर्म का कि
कारण से भी कदापि त्याग नहीं करना चाहिए।
फिर—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्
—" मनुस्मृति " ।

अर्थात्, धर्म की रक्षा पर ही हमारी स्थिति और रक्षा है
र उस के वध या अधः पतन पर हमारा अधः पात निर्भर
। अस्तु। प्राण देने की बारी और आवश्यकता आ पड़े,
। प्राण भी हँसते हँसते न्यौछावर कर दिये जाँय, परन्तु धर्म
ो रक्षा से हम कदापि न हटें। इसी में हमारे नर-देहका
र है, यही हमारा सच्चा सुख और प्रथम तथा प्रधान कर्त-
य है। फिर, मनुष्य-जीवन, तथा पशु-जीवन में अन्तर भी
। एक धर्म ही का है, जैसा, कहा है-

आहार निद्रा भय मैथुनं च,
सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणाम् ॥
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीना पशुभिः समानाः ॥
—" हितोपदेश ।

प्यारे पाठको ! विषयान्तर भय से, अब हम अपने चरित-नायक की धर्म की इस धारणा को यहीं रख कर, पुन अपने विषय की ओर आते हैं।

प्यारे जैनियो ! भगवान् जिनेन्द्र के जन्म-गत व्यवहारों से उपास को ! देखा, आप ने अपने एक जैनी की प्राण पर्यन्त न्यौछावर कर देने की पक्की प्रतिज्ञा को ! अहिंसा-धर्म के अविचल अनुयायी, प्यारे अरणकजी ! धन्य है आप के धैर्य को ! आप की धर्म-निष्ठा को, और आप के धर्म की पक्की धुन को ! जिस ने एक पूर्वज और आदर्श जैन के नाते, वर्तमान् के अन्धकारमय जीवन में, हमारे सन्मुख एक उत्कृष्ट उदाहरण रक्खा है। देव तक के कष्ट को, कष्ट ही क्यों, एक-मात्र धर्म की रक्षार्थ प्राणों की बाजी लगा ने तक के सारे कष्टों को सहना, आप ने सहर्ष स्वीकार कर लिया था आप का यह

पवित्र सन्देश कि— प्राण चल जांय तो भाज जाने दो पुत्र-कलत्र और परिवार का भी भाखान्त होता हो तो तुम हो जाने दो यदि तुम्हारी सात्विक सम्पत्ति और शक्ति का सत्वर वियोग होता हो तो उसे भी हो रहने दो। तुम्हारे सांसारिक सखी यदि तुम्हें कोस रहे हो, तो उन्हें भी मरते कोस लेने दो। पर तुम अपने जैन धर्म से जरा भी पावत होओ। क्षण-भर को भी तुम उसे न छोड़ो। धर्म ही को तुम अपना प्राण-पुत्र मित्र-कलत्र और परिवार बनाओ। धर्म को तुम अपनी शक्ति और सम्पत्ति समझो। तुम्हारा सब और जन्म जन्मान्तरों का चिर-सखी भी एक-मात्र तुम धर्म ही का मानो। बस तुम्हारे इतना कर लेने ही की देरी है फिर, तुम देखोगे कि दैहिक दैविक और भौतिक सम्पूर्ण प्रतिकूल-विपरीत-बातें तुम्हारे कैसी अनुकूल बन जाती है अनुकूल ही क्यों तुम जरा ही देर में प्रत्यक्ष देख सकोगे कि ये बातें तुम्हारी अनुकूल बनने को किस प्रकार लालायित है आप की दिगन्त व्यापिनी शुभ-यशः पताका को तब से प्रत्येक जैनी के हृदय रूपी गगन-मण्डल में फहराये रक्खेगा जब तक इस जगत में जैन-धर्म का अस्तित्व रहेगा।

प्यारे जैन बन्धुओ ! आज देव जन्य कष्ट तो एक ओर रहे, पर बिना ही कष्ट पैसे के लिये अहांगीरी के लिए, औरतों के लिए, बाल-बच्चों के लिए, राज्य में मान पाने के लिए पद-होम पार्टियों में हमारे गोरे महा प्रभुओं के साथ बैठकर खाना खाने के लिए सांसारिक पद और प्रतिष्ठा पाने के लिए, आदि आदि ऐहिक सुखों के लिए, धर्म के अनुकूल आचरी और समापेक्षा उत्तम होते हुए भी आप अपने उपर्युक्त कार्यों या ऐसे ही किसी अन्य कार्य के बदले उसका विनिमय-अदला-बदली-कर बैठते हैं। तिस पर भी आप जैन

मानते हैं, धर्मध्वजी होने को ! धन्य है, आप की आज की धर्मप्रियता को ! क्या, धर्म भी केवल दिखाने और देखने की कोई वस्तु है ? प्यारे बन्धुओ ! हमारा सत्य किन्तु अप्रिय कथन आप को असन्तोषकर प्रतीत होगा पर क्षमा कीजिए। हमारा, इस प्रकार के अप्रिय और असन्तोषकर कथन से, आप के प्रति कोई कटाक्ष नहीं है। हमारा, तो आप के प्रति उस कथन में वही पवित्र भाव छिपा हुआ है, जो कि किसी घर के एक बड़े बूढ़े के अपनी दुध-मुँही सन्तान के प्रति, उस के मुंह को काजल से लीपा-पोता रखने में है। अर्थात, अपनी सन्तान का मुंह काजल से काला कर देने में, उस बड़े-बूढ़े का, तनिक भी कोई अनिष्ट उद्देश्य नहीं है। वह तो, उठते बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, हर समय केवल यही हृदय से चाहता है, कि मेरी प्यारी सन्तान, मेरी गोदी की वह सलोनी शोभा, मेरे बुढ़ापे की वह बैशाखी, किसी प्रकार से भी, बाहर की दुष्ट नजर का, शिकार बनने से सदा बची रहे: उसे बाहर वाले की कभी कोई बुरी नजर न लग जावे। फिर, यह भी निश्चय रखिये, कि " धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित । " अस्तु।

प्यारे बन्धुओ ! एक बार आप अपने आदर्श चरित्रों के ऊपर निगाह डालिये, उन के इतिहासों को पढ़िये। उन की जीवनी के एक एक कर्तव्य की ओर सूक्ष्म दर्शी बन कर दृष्टिपात कीजिए, फिर देखिए, कि सर्वस्व के सत्यानाश की बाजी लगने पर भी, वे किस प्रकार धर्म की रक्षा करते थे। एक कंजूस, जिस प्रकार, धन को दाँतों से पकड़ कर रखता है, उसी प्रकार, वे प्राणों के रहते हुए, धर्म को किस प्रकार पकड़ कर रखते थे ! सज्जनों ! यदि, आप भी धार्मिक-जीवन

क यश का मम्मास कर इस पौद्गलिक शरीर के साथ हमारे, पर मा, इस नश्वर संसार में, यशोरूप शरीर से चिरलव काल के लिए अमर जीवन प्राप्त करना चाहते हैं तो मन पार कमर कस कर अपने पूर्वजों के सुमार्ग का अनुसरण करना सीखिये। और उन चित्त और चरित्र को एक एक कर के अपना बनाइए। उन्हीं पूर्वजों की दिगन्त-व्यापिनी सुकीर्ति सौरभ अतीव सुन्दर और हृदय को शान्ति प्रद है। और उसी सुकीर्ति की तुलना में आज का हमारा व्यापार भी क्या हृदय-ग्राही (?) हो रहा है। जैसा कि नीचे वर्णित है—

उन पूर्वजों की कीर्ति का, वर्णन अतीव अपार है।
गाते हम हैं गुण उन्हीं का, गा रहा संसार है॥
वे धर्म पर करते न्योछावर, तृण समान शरीर थे।
उन से वही गम्भीर थे, वर वीर थे, ध्रुव धीर थे॥

—" भारत-भारती "।

म,—यश-पुष्प है दुनिया में अभी उनके महकते।
हैं नाम अमर उन के सितारों से चमकते॥

— " वीर-पञ्च-रत्न "।

अथवा,-जिस हिन्द में हो गुजरे हैं ऐसे धरम वीर।
उस हिन्द के वीरत्व का कहना भला क्या फिर॥
पर अब तो नज़र आता है कुछ रङ्ग सा बदला।
हर मर्द बना जाता है मय मीठ सी अबला॥
टीसी सी कसें लोग मजब माँग सँवारें।
फूसें जो कहीं चिट्ठी तो नौकर को पुकारें॥ १॥

ग्रौर,-खाना व पड़े लौटना और तोंद बढ़ाना।
कुछ नीच सी कुलटाओं के सङ्ग रङ्ग मचाना॥
विद्वान् व सन्तों के कभी पास न जाना।
आजायें अकस्मात् तो मिलना न मिलाना॥
दिन-रात विषय-भोग का आनन्द उड़ाना।
अब मर्द इसे जानते हैं मर्दानगी बाना॥ २॥
—"कवि दीन"।

प्यारे सज्जनो! अंत में, जब उस पिशाच रूप-धारी मा
वी देव के देवत्व का, धर्म-प्राण अरणकजी के आदर्श चरित्र
आगे कुछ वश न चला, जब उस देव को यह पूर्ण रूप से
ीत होगया, कि यह श्रावक प्राणों के रहते तो, किसी भी
ार, त्रिकाल में भी, जैन-धर्म से अणु-मात्र भी च्युत न
ा, यह भगवान् जिन के अमल कोमल चरणों की चिर
न्तिमयी शरण को कभी न त्यागेगा, तब, उस देव ने अपना
रोमाञ्चकारी, रौद्र-रूप, जो पैशाचिक जाति का था, छोड़
अपने असली देव रूप को धारण किया और उस धर्म-
ष्ट श्रावक की, वह भूरि भूरि प्रशंसा करने लगा। समुद्री
ाएं भी सब प्रकार से अनुकूल बहने लगी। जहाज सुस्थिर
से आगे बढने लगे। अरणक जी के समस्त साथियों ने
, मुस्कुराते और लज्जित होते हुए, उन से अपने अप्रिय
थन और टेढ़ी सीधी बातों के लिए, बार बार क्षमा, प्रार्थना
गी। अरणकजी का चहरा, एक अपूर्व और अलौकिक
म्भीर्य से और भी देदीप्यमान हो उठा। उन के प्राणों में
र्म के प्रति, और भी गाढा स्नेह उत्पन्न हो आया। अरणक
ी के सत-समागम से, उन के बुज़-दिल साथियों के दिलों

और मनमन में अविचल आनन्द का एक अपूर्व उमड़ हो आई।

उस देव ने अरणक जी की आदर्श उदारता का सिक्का मान गया। वह बोला —"हे श्रावक! तुम जैसे नर पुङ्गव ही का मनुष्य जन्म और जैन धर्म मिलना संसार में सब भाँति से श्रेयस्कर है। और ऐसे ही जैन धर्म प्रेमी जैनियों की संसार के कोने कोने में आवश्यकता है।" इतने ही में उसके साथी लोग बोल उठे — अरणक जी! हम आपको ऐसा नहीं जानते थे। आप अपने इरादे पर डटे रहे। आपके आदर्श चरित्र का प्रत्यक्ष अनुभव कर हम आज निःसङ्कोच रूप से यह स्वीकार करते हैं कि हम तो केवल नाम-मात्र ही के जैनी हैं! पर आप करणी से जैनी हैं जो इतना प्राणान्तक कष्ट आ पड़ने पर भी आपने अपने धर्म की उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा। हम भी प्रायः पहले आज से अपने धर्म की अवहेलना कभी न करेंगे। आपको अपनी इस धर्म-वीरता के लिये शतशः साधुवाद है। आप ही ने आज हमें यह पाठ अपने जीवन से सीखा है कि एक सच्चे जैनी के भांति प्राणों पर संकट आ पड़ने पर भी हम कभी स्व-धर्म से पतित एवं शिथिलाचारी न होंगे, तथा इस देव दुर्लभ नर जीवन में हम अपने अन्तिम श्वास तक आपके सम्मिलित बने रहेंगे।
अन्त में उस देव ने प्रसन्न हो अरणकजी को रत्न जड़ित कानों के कुण्डल प्रदान किये। साथ ही यह आशीर्वाद भी दिया कि । धर्मप्राण मेरे प्यारे अरणक! जन्म-भर मन वचन कर्म से सब प्राणियों के प्रति तेरी अगाध मैत्री में रति बनी रहे। तू अपने आदर्श चरित्र से उन्हें दया का दिव्य पाठ *नित्यप्रति* पढ़ाता रह, तथा तेरे द्वारा सब प्राणियों को सुख पहुँचे। कोई छोटे से छोटा जैन धर्म का उपासक भी
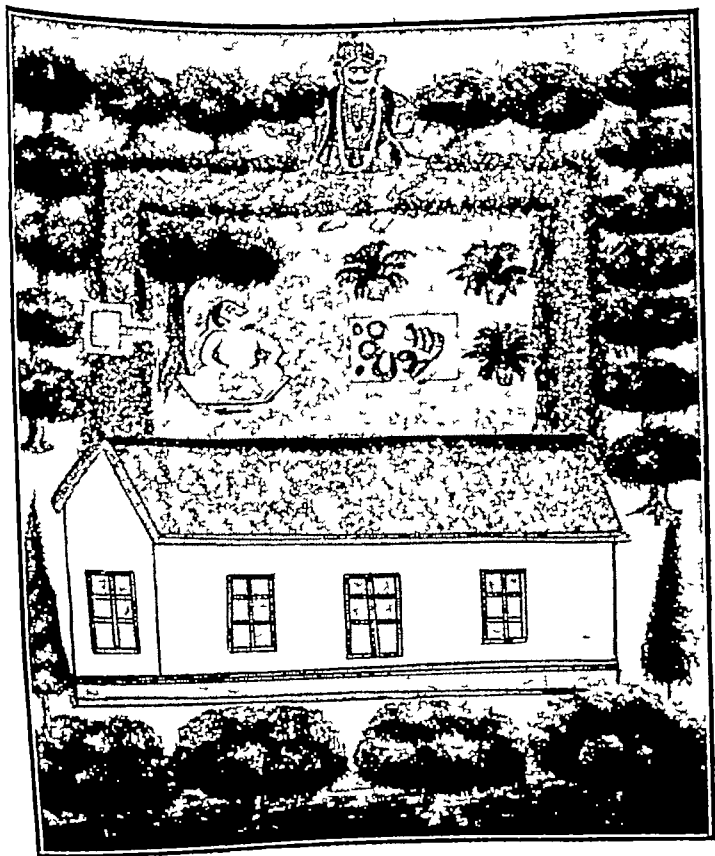
देवने ज्ञानसे देखा कि इतना कष्ट देने परभी अरणकजीने जैन धर्म को झूठा नहीं कहा तो उसने प्रसन्न होकर अपना दिव्य रूप बनाकर उनकी तारीफ करते हुवे रत्नजडित कुंडल अरणकजी के भेट किये

तेरी वाणी का अनुसरण कर, किसी भी प्राणी को, कभी,
वाणी से कष्ट पहुँचाने वाला न बने। अर्थात् वह कभी किसी
की निन्दा न करे, चुगली न खावे, कभी किसी को कठोर वचन
न कहे, और, इस प्रकार वह वाणी की हिंसा के पाप से
कोसों दूर रहे। वह, तेरी मानसिक उदारता का अनुगामी
बन कर मन से कभी किसी के अकल्याण का चिन्तवन न
करे, मात्सर्य से वह मीलों दूर रहे, और, इस प्रकार, सारे
मानसिक हिंसा के पापों से वह सदैव बचता रहे। फिर
वह, हाथों से भी किसी को न सतावे। उस के हाथों के बल
शाली बनने का यह उद्दण्ड उद्देश्य कदापि न हो, कि जिस
से वह, "शक्तिः परेशां पर-पीड़नाय," की उक्ति को चरितार्थ
करने वाला बन जावे। और, इस प्रकार वह, कर्म से भी
सदा अहिंसा-व्रत का अमर उपासक बना रहे। यों, तीनों
प्रकार की हिंसाओं से बचता हुआ वह जैनी, तेरे मन-वचन
और कर्म का अनुसरण करने वाला बन कर, क्रूरता से सदा
दूर रहे, जिस से उस के मन में सद्-भावों का सदा निवास
बना रहे। इस प्रकार मानसिक सद्भावों का बल प्राप्त कर,
वह अपने पापों का प्रति क्षण क्षय करने वाला होवे, जिस से
उसे इस लोक, तथा पर-लोक में चिरन्तन शान्ति मिले।
प्यारे अरणक! इन क्रमिक ऐहिक, व पारलौकिक जीवन के
विकासों द्वारा अन्त में तेरे हृदय में यह भव्य भाव पैदा हो, कि-

> दया कौन पर कीजिए, का पर निर्दय होय।
> सांई के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय॥

जिस से, तु निर्वाण-पद का निरन्तर अनुयायी बना रहे
जा! मेरा, तुझे यही पवित्र और दिव्य शुभाशीर्वाद है। इतना

सब कुछ कह देने पर भी मेरा मन तेरी धर्म में अचल श्रद्धा और विश्वास देख कर यह भी कहे बिना नहीं रहता कि जगत् का जो कोई जीव-मात्र यह फिर जैन हो या अजैन-मती इस शुभ गाथा को कहेगा पढ़ेगा सुनेगा या सुनायेगा उसे धर्मी दैवी यातना कभी भी न व्यापेगी। भगवान् जिन तेरा सदा सर्वदा मङ्गल साधन करें।"

इस प्रकार, आशीर्वाद पाकर वह श्रावक अपने समस्त साथियों को साथ ले अपने गन्तव्य स्थान को जहाज द्वारा रवाना हो गया और वर्षों के समय को दिनों में पार करता हुआ शीघ्र ही वहीं जा पहुँचा। उधर वह देव भी आकाश के अन्तर्गत विलीन हो गया। वहाँ उस देव और अपने धर्म की शुभ कृपा से उस ने अटूट धन-राशि प्राप्त कर जगत् में बड़ा सम्मान प्राप्त किया। तदनन्तर उस धन-राशि को ले कर, अपने साथियों के साथ वह धर्म प्राण श्रावक घर सकुशल सानन्द अपनी चम्पा नगरी को लौट आये। यहाँ आकर उस श्रावक ने अपने पूर्व वादे के अनुसार अपनी समस्त धन-राशि को समान भागों में अपने साथियों को बाँट दिया। और, देव के शुभाशीर्वाद तथा अपने धर्म-बल से वह कुटुम्ब अपनी पूर्ण आयु को सानन्द सुखोपभोग कर अन्त में स्वर्ग पद को प्राप्त किया। शुभम्।

॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॥

आदर्श मुनि।

इस ग्रन्थ के अन्दर, प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि
ी १००८ श्री चौथमलजी महाराज के किये हुवे
ामाजिक, धार्मिक, सदाचार, दयामयी आदि
ै महत्व पूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया
। साथ ही में जैन धर्म की प्राचीनता के विषय
, अनेक विदेशी विद्वानों की सम्मतियों सहित,
अन्य मत के ग्रन्थों के प्रमाणों से तुलना करते
ए, अच्छा प्रकाश डाला गया है। पुस्तक अति
त्तम उपयोगी एवम् हर एक के पढ़ने योग्य है।
सकी तारीफ अनेक अखबार वालोंने और विद्वा-
ों ने की है।

इस में राजा, महाराजाओं के, व सेठ साहु-
कारों के, २० उम्दा आर्ट पेपर पर चित्र हैं। पृष्ठ
संख्या ४५०, रेशमी जिल्द होते हुए भी, मूल्य
लागत मात्र से कम रु० १।) और राज संस्करण
का मूल्य रु० २) रक्खा गया है। डाक खर्च अलग
होगा।

पत्ता—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम.

॥ श्री ॥

खुश खबर।

सर्व सज्जनों को विदित हो कि वैशाख सुदी ५ संवत् १९८६ को श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने "श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस" के नाम से एक प्रेस कायम किया है। इस प्रेस में हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी का काम बहुत अच्छा और स्वच्छ तथा सुन्दर छापकर ठीक समय पर दिया जाता है। छपाई के चारजेज वगैरा भी किफायत से लिये जाते हैं।

अतःएव धर्म प्रेमी सज्जन, छपाई का काम भेजकर धर्म परिचय देने की कृपा करेंगे ऐसी आशा है।

निवेदक—

मैनेजर

श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम

मुक्ति-पथ

(तृतीय भाग)

B-1467

रचयिता—

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि

श्री चौथमल जी महाराज

****

प्रकाशिका —

श्रीमान् कन्हैयालालजी की धर्मपत्नी

श्रीमती बतासीदेवी

लोहामण्डी, आगरा।

मुक्ति-पथ

[तीसरा भाग]

---

* दोहा *

भक्त शरण दातार जो, श्री सद्गुरु शुभ देव ।
उन प्रभु को इस दास का; वन्दन होय सदेव ॥१॥

[तर्ज रामायण]

* प्रार्थना *

प्रातःकाल सामायिक कर, प्रभु से विनती करनी चहिये ।
अनुचित नहीं कुछ भी हो हमसे, यह बात हृदय धरनी चहिये ॥१॥
शुद्ध भाव अपने करके तुम, भगवद् भक्ति में लीन बनो ।
सब जीवों से माफी माँगो, और अशुभ ध्यान को तुरत हनो ॥२॥
लख चौरासी योनी में, हैं खेल किये प्रभु सुन लीजे ।
हो प्रसन्न शिव सुख दीजे, या जन्म मरण वारण कीजे ॥३॥
श्रवण कीर्तन मनन सेवना, वन्धन ध्यान लघुता जानो ।
समता एकता नवधा भक्ति, करके जन्म सफल मानो ॥४॥
अहम् ब्रह्म अहमेवात्मा, प्रज्ञान ब्रह्म और तत्त्वमसी ।
इन सब का है आशय सोऽहम्, जो जपै इसे वह सत्यरसी ॥५॥
गुणवान् नम्र परिशुद्ध हृदय, परमात्मा के गुण का चिन्तन ।
श्रवण मनन; कीर्तन प्रभु भक्ती, श्रेष्ठ ज्ञान कीजै धारन ॥६॥

-: परमात्मा :-

तुही एक और तूँ अनेक, तूँ है सब में पर न्यारा है।
तेरे दर्शन को दर्शक गया तरसे सदा तुम्हारा है ॥७॥
ब्रह्म असंग अक्रियय व्यापक, अरु परम शुद्ध है पुन्य निकन्द ।
विषय कषायादिक तृष्णा, अरु मान रहित है परमानन्द ॥८॥
सचित् आनन्द ब्रह्म रूप यह, मन्त्र जिसे बतलायोगे ।
चमत्कार इसका क्या है, यह वही देख तुम पावोगे ॥९॥
है अत्यन्त पास क्यों तूँ ढूंढे जो कोई मुझे पा लेता है ।
वह सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म हो नहीं द्वैत भाव फिर रहता है ॥१०
सच्चिदानन्द तक नहीं पहुँचे नाम रूप में भटकता है ।
वह प्राणी शुभाशुभ कर्म कमा जगतीतल मध्य भटकता है ॥११॥
जिसने प्रभु का दर्शन पाया तरकीब वही बतलायेगा ।
भगवत् दर्श अनिर्वचनीय, न दर्शक लिखवा पायेगा ॥१२॥
नहीं गिरजा मन्दिर मस्जिद है नहीं आश्रम गुरु द्वारा है ।
हम जहाँ बैठे वही आश्रम है, और वही पै प्रभु हमारा है ॥१३॥

सद्गुरु :-

हिंसा झूठ चोरी व्यभिचारी मूर्च्छा रात्रि भोजन जानो ।
स्वयं त्याग को करे करावे, सद्गुरु वही अपना मानो ॥१४॥
प्रभु है हममें हम हैं प्रभु में भटके जो पृथक् समझता है ।
द्वन्द मिटे न बिना सद्गुरु के, क्यों संशय बीच भटकता है ॥१५॥

सत्संग

सत्संग परम हितकर औषध और आत्म रोग का नाशक है ।
समता शान्ति विवर्धक है, और आत्म ज्ञान परकाशक है ॥१६॥
अपनी मर्जी माफिक चलता वह घोर अनर्थ कमाता है ।
बिन ज्ञानी का सत्संग किये, यह जीव न सत्पथ पाता है ॥१७॥

जिस घट में लाकर गन्ध धरो, वह गन्धमयी हो जाता है।
सत्संग करे नहीं लखे सत्य, मिट्टी से नीच कहाता है ॥१८॥

-: आत्म-शोध :-

शुद्ध नय से आतम विज्ञान, एक द्रव्य नाम कई पाता है।
सर्वांग लखी निज ध्यान करे, वह सिद्ध स्वरूप हो जाता है ॥१६॥
प्रभु सो जीव वही ईश्वर, वपु को प्रभु तुम मत जानो।
जो वपु की स्तुति करता है, वह प्रभु की स्तुति मति जानो ।२०।
आत्म रूप दर्पन में अपना, जब समस्त गुण दर्शाता है।
तब तो प्रभु स्वय आप है, राग द्वेष मोह सब भगता है ॥२१॥
शोधक मिट्टी से कनक ग्रहे, दधि मथ कोई मक्खन लेते हैं।
ज्यों हंस दुग्ध का पान करे, यों आतम गुण गह लेत हैं ॥२२॥
सम दम उपशम अहिंसा सत्त दत, ब्रह्मचर्य अममत्व गुणधार।
एकाग्रता मन की करले हो, आत्मा उसके साक्षात्कार ॥२३॥
अनुभव रूप चिन्तामणिरत्न का हृदय प्रकाश हो जाता है।
वह आवागमन तज पवित्र आत्मा, मोक्ष धाम को पाता है ॥२४॥
जीव यदि पहले शुद्ध था, तो किसने अशुद्ध बनाया है।
और अशुद्ध बनाने वाले ने, कहो नफा कौनसा पाया है ॥२५॥
जो सुखी को दु खी बनाता है, वह न्यायी नहिं कहना चाहिये।
अन इच्छा से पाप लगे तो, ईश्वर के लगना चाहिये ॥२६॥
वर्षों तक कनक रहे जल में, पर काई कभी न आती है।
यों शुद्ध आत्मा रहे विश्व में, नहीं मलिनता छाती है ॥२७॥
मादक पदार्थ के बिन सेवे, नशा कभी नहीं आता है।
बिन क्रिया के कर्म न होता है, यह समझे वही ज्ञाता है ॥२८॥
देह से भिन्न स्वपर प्रकाशक, परम ज्योति शाश्वत सुखकन्द।
आत्मा अन्तर्मुख विलीन हो, जब पाता है अनत आनन्द ॥२६॥
ईश्वर के तुल्य जीव में भी, गुणगण सब ही हम पाते हैं।
अज्ञान मोह परदा हटता तो, जीव ईश बन जाते हैं ॥३०॥

तुम शान्त चित्त भीतर उतरो, और आत्म ज्ञान का यत्न करो ।
उस वैभवशाली शक्ति का अनुभव होगा जब तुम मथन करो ॥३१॥
जब आत्म शक्ति का ध्यान करे, तब नहिं संचार होन देता ।
जो आत्मा का जब ज्ञान होय, तब काम क्रोध सब तज देता ॥३२॥
अपने जानने की विद्या ही, आत्म ज्ञान कहलाता है ।
सर्वोत्तम उन्नति के निमित्त साधन शुभ तत्त्व कहाता है ॥३३॥
जिस तत्त्व ज्ञान से सर्व वस्तु का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है ।
वह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान आत्मोपासक ही पाता है ॥३४॥
तुम अपनी शक्ति से प्रकृति में भी उलट फेर कर सकते हो ।
तन मन के तो तुम मालिक हो क्या दूजों का दुख हरते हो ॥३५॥
जब आत्मा आत्म विचार करे, तब चिन्तादिक मिट जाते हैं ।
ज्यों रसायनों के सेवन से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥३६॥
शास्त्रज्ञान और आत्म मनन जीवन का ध्येय बताया है ।
जिसने इनका अभ्यास किया उसने जीवन सुख पाया है ॥३७॥
तू शुद्ध है बुद्ध है निरञ्जन है, संसार माया परिवर्जित है ।
संसार स्वप्न तज मोह नींद कर मनन तुझे यदि वांछित है ॥३८॥
दृढ़ संकल्प करो कि मैं ही इस देह का शासक हूँ ।
यह शरीर मेरा सेवक है मैं ब्रह्म-ज्ञान परकाशक हूँ ॥३९॥
अविनाशी आत्मतत्त्व को भी, जाने बिन जीव मरता है ।
उसका जीवन निष्फल समझो वह व्यर्थ मनुज तन धरता है ॥४०॥
इस चेतन जीव, आत्मा, ब्रह्म ईश्वर और परमेश्वर है ।
सिद्ध, स्वयंभू चिन्मय रूप और साक्ष विष्णु ज्ञानेश्वर है ॥४१॥
स्मरण करता जिन भावों को जब काया को तज जाता है ।
वह उसी गति जाति के अन्दर, जन्म जाय पा जाता है ॥४२॥
हो गमन पलक शामिल इतना भी विलम्ब नहीं कर पाता है ।
रूप मान और तैजस शरीर, आत्मा को लीन ले जाता है ॥४३॥

आहार शरीर इन्द्रिय श्वासा,मन वच कर्म पर्य्याय को पाता है।
वह तेल बड़े के न्याय आत्मा, निज आकार वनाता है ॥४४॥
''हले कारीगर आता है, पीछे वह नींव लगाता है।
सी तरह से गर्भाशय में, तन का खेल रचाता है ॥४५॥
ह जीवन दु ख सुख मय स्वतन्त्र औ पराधीन जो होता है।
ह सब है आत्मा के अधीन,क्यो इसको तूँ नहिं जोता है ॥४६॥
प्रन्तरात्मा भिन्न ब्रह्म को, ब्रह्मवेत्ता हो मानता है।
काम कर्मफल और अविद्या से, स्वतन्त्र नही पहिचानता है ॥४७॥

-: आत्मोद्‌गार :-

अजर अमर शाश्वत अजन्म, स्वपर्याय परिणामिक हूँ।
शुद्ध चैतन्य रूप मात्र, निर्विकल्प दृष्टात्मक हूँ ॥४८॥
मैं एक असङ्ग प्रभावयुक्त, असख्यात देशात्मक हूँ।
आत्मरूप अव गाहक हू, पुद्‌गल के हित रूपान्तर हूँ ॥४९॥
वसन तन इन्द्रिय मन वय तीनों, मोह अज्ञान मुक्तात्मा हूँ।
घटाकाशवत् वन्ध कर्म का, पर निरलेप बुद्धात्मा हूँ ॥५०॥
मन बुद्धि श्रुता प्रणाम परे केवल सोऽहं परमातम हूँ।
मैं वेद ज्ञान का विषय नहीं मैं, ब्रह्म ज्ञान गैयातम हूँ ॥५१॥

-: आत्म-ज्ञान :-

मति श्रुति अवध मनपर्यवज्ञान, ये एक देशी कहलाते हैं।
है केवल ज्ञान सर्वदेशी, यह होने पै शिव पाते हैं ॥५२॥
इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होय वह, अनुभव ज्ञान नहीं होता।
यह आत्म तत्व सम्बन्ध, न इन्द्रिय की सहायता को जोता ॥५३॥
जो ज्ञानी सब प्राणी को, निज आतम तुल्य समझते हैं।
उसको नहीं होता मोह-शोक, जिसको जग अपना लखते हैं ॥५४॥
आत्म-ज्ञान के सम्मुख प्यारो, चक्रवर्ती का राज निसारा है।
पुस्तक पढ़ने में लाभ क्या है, जो हृदय न शुद्ध तुम्हारा है ॥५५॥

तुम शान्त चित्त भीतर उतरो और आत्म ज्ञान का यत्न करो।
उस वैभवशाली शक्ति का अनुभव होगा जब तुम मनन करो ॥३१॥
जब आत्म शक्ति का ध्यान करें, तब नहिं सवार होने देता।
यों आत्मा का जब ज्ञान होय, तब काम क्रोध सब तज देता ॥३२॥
अपने जानने की विद्या ही आत्म ज्ञान कहलाता है।
सर्वोत्तम उन्नति के निमित्त, साधन शुभ तत्व कहाता है ॥३३॥
जिस तत्व ज्ञान से सर्व वस्तु का, ज्ञान स्वतः हो जाता है।
वह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान आत्मोपासक हो पाता है ॥३४॥
तुम अपनी शक्ति से प्रकृति में भी, उलट फेर कर सकते हो।
तन मन के तो तुम मालिक हो क्यों दूजों का मुंह तकते हो ॥३५॥
जब आत्मा आत्म विचार करें, तब विघ्नादिक मिट जाते हैं।
ज्यों रसायनों के सेवन से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥३६॥
शास्त्रज्ञान और आत्म मनन जीवन का ध्येय बताया है।
जिसने इनका अभ्यास किया उसने जीवन सुख पाया है ॥३७॥
तूं शुद्ध है बुद्ध है निरञ्जन है, संसार माया परिवर्जित है।
संसार स्वप्न तज मोह नींद कर मनन तुझे यदि वर्जित है ॥३८॥
दृढ़ संकल्प करो कि मैं ही, शुद्ध स्वदेह का शासक हूँ।
यह शरीर मेरा सेवक है, मैं ब्रह्म-ज्ञान परकाशक हूँ ॥३९॥
अविनाशी आत्मतत्व को भी, जाने बिन जीव मरता है।
उसका जीवन निष्फल समझो वह व्यर्थ मनुज तन धरता है ॥४०॥
हंस, चेतन जीव, आत्मा ब्रह्म ईश्वर और परमेश्वर है।
सिद्ध, स्वयंभू अव्यय रूप और लोक विष्णु ज्ञानेश्वर है ॥४१॥
स्मरण करता जिन भावों को जब काया को तज जाता है।
वह उसी गति जाति के अन्दर जन्म आप पा जाता है ॥४२॥
दो नयन पलक झपकन इतना भी विलम्ब नहीं कर पाता है।
कर्म भाव और तेजस शरीर, आत्मा को खींच ले जाता है ॥४३॥

आहार शरीर इन्द्रिय श्वासा,मन वच कर्म पर्य्याय को पाता है।
वह तेल बड़े के न्याय आत्मा, निज आकार बनाता है ॥४४॥
पहले कारीगर आता है, पीछे वह नींव लगाता है।
इसी तरह से गर्भाशय में, तन का खेल रचाता है ॥४५॥
यह जीवन दुःख सुख मय स्वतन्त्र औ पराधीन जो होता है।
यह सब है आत्मा के अधीन,क्यो इसको तूँ नहि जोता हैं ॥४६।
अन्तरात्मा भिन्न ब्रह्म को, ब्रह्मवेत्ता ही मानता है।
काम कर्मफल और अविद्या से, स्वतन्त्र नही पहिचानता है ॥४७॥

-: आत्मोद्गार :-

अजर अमर शाश्वत अजन्म, स्वपर्याय परिणामिक हूँ।
शुद्ध चैतन्य रूप मात्र, निर्विकल्प दृष्टात्मक हूँ ॥४८॥
मैं एक असङ्ग प्रभावयुक्त, असख्यात देशात्मक हूँ।
आत्मरूप अव गाहक हू, पुद्गल के हित रूपान्तर हूँ ॥४९॥
वसन तन इन्द्रिय मन वच तीनों, मोह अज्ञान मुक्तात्मा हूँ।
घटाकाशवत् बन्ध कर्म का, पर निरलेप बुद्धात्मा हूँ ॥५०॥
मन बुद्धि श्रुता प्रणाम परे केवल सोऽहं परमातम हूँ।
मैं वेद ज्ञान का विषय नहीं मैं, ब्रह्म ज्ञान गैयातम हूँ ॥५१॥

-: आत्म-ज्ञान :-

मति श्रुति अवध मनपर्यवज्ञान, ये एक देशी कहलाते हैं।
है केवल ज्ञान सर्वदेशी, यह होने पै शिव पाते हैं ॥५२॥
इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होय वह, अनुभव ज्ञान नहीं होता।
यह आत्म तत्व सम्बन्ध, न इन्द्रिय की सहायता को जोता ॥५३॥
जो ज्ञानी सब प्राणी को, निज आतम तुल्य समझते हैं।
उसको नहीं होता मोह-शोक, जिसको जग अपना लखते हैं ॥५४॥
आत्म-ज्ञान के सम्मुख प्यारो, चक्रवर्ती का राज निसारा है।
पुस्तक पढ़ने में लाभ क्या है, जो हृदय न शुद्ध तुम्हारा है ॥५५॥

स्वप्न जागृतावस्था को, अज्ञानी सत्य मानता है।
ब्रह्मवेत्ता मायामय जग को, मिथ्या ही पहिचानता है ॥५६
कल्पित दृश्य को सत्य मान वह दुःख का अनुभव करते हैं।
ब्रह्मवेत्ता इन्हें व्यर्थ समझ कर, हर्ष शोक सब हरते हैं ॥५७
ज्यों रवि दीपक और चक्षु सचराचर वस्तु प्रकाशक हैं।
त्योंही यह ज्ञान भी सकल वस्तु सचराचर की परकाशक है ॥५८
मति ज्ञान का भेद धारणा जिसका है जाति स्मरण ज्ञान।
मति सहित जन्म पाया होतो वह अविराम भव लेता है ज्ञान ॥५९
ज्ञान घटे मद मद बढ़े अरु ज्ञान बढ़े मदभेद घटे।
बढ़ सम्पत्ति सम्पद हो बहीं घटे सम्पत्ति सम्प हटे ॥६०
समय नत्र एक साथ जो, दहन की क्रिया करते हैं।
यों ज्ञान वैराग्य उभय एक संग पापों का शोधन करते हैं ॥६१
जैसे चक्षु में जल थल आदि, प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब दिखाते हैं।
यों ज्ञाता के केवल ज्ञान में, ज्ञेय द्रव्य सर्व समाते हैं ॥६२
ज्ञानी उदय प्रेरणा से जो शुभ अशुभ क्रिया को करता है।
पर आत्मा को भिन्न लखे तो कर्म उन्हें नहीं लगता है ॥६३
मोह उदय विकल बुद्धि जिसकी करुणा तज हिंसा करता है।
ज्ञान रवि का उदय होत तब, मोह अन्धकार को हरता है ॥६४
जैसे असि निज धार से, एक के दो खण्ड बनाती है।
यों जड़ चेतन को भिन्न करे, वह सुबुद्धि कहलाती है ॥६५
सम्यक् ज्ञान से स्वपर लख के पर स्वभाव नसाता है।
सहज स्वभाव में रमण कर, चेतन प्रकाश शुद्ध पाता है ॥६६
जगे न जहाँ तक स्वप्न सत्य मृत्यु तक जगत् असत् जाने।
ज्ञान से आत्म नित्य लख ले, तब मृत्यु को मिथ्या माने ॥६७
आसन प्राणायाम यम नियम, धारणा ध्यान प्रत्याहार।
समाधि के आठ योग पर भेद विज्ञान के बिना असार ॥६८

अनन्त चतुष्टादिक भाव स्वरूप, अणु जीवी गुण कहलाता है।
मोहादिक तीव्र कर्मोदय, यह प्रतोजीवी गुण पाता है ॥६६॥
जैसे पर से पक्षी उड़कर, इच्छित अस्थान पे जाता है।
सम्यक् ज्ञान क्रिया से ऐसे, मोक्ष में जीव सिधाता है ॥७०॥

-: पुनर्जन्म :-

नव जात शिशु अन्धा रोगी, जब तड़फ तड़फ मर जाते हैं।
पुनर्जन्म जो नहीं मानो तो, यह कौन कृत्य फल पाते हैं ॥७१॥
गौ के विपिन में बच्चा होता है, वह स्वय खड़ा हो जाता है।
फिर स्वयं दूध पोने लगता, यह कौन उसे सिखलाता है ॥७२॥
माता शिशु के मुंह में स्तन दे, नहीं पीने की क्रिया बताती है।
पूर्व जन्म के अभ्यास से वह, अनायास आजाती है ॥७३॥
तूँ स्थित भोगे किस कारन से, कल क्या होगा क्यों नहिं जाने।
जिस कारण वाञ्छित फल न मिले, घटना का कारण पहिचाने ॥७४॥

-: आत्मीय धर्म :-

दुर्गति गिरते हुये प्राणी को, केवल एक धर्म बचाता है।
स्वर्गापवर्ग देता उसको, जो नर इसको अपनाता है ॥७५॥
मनुष्य जन्म सुत दारा द्रव्य, हर एक को ये मिल जाते हैं।
दुर्लभ सत्सङ्ग अरु धर्म श्रवण, फिर बोध बीज को पाते हैं ॥७६॥
जिस धर्म से नर तन उत्तम कुल, और सुख सपति को पाता है।
कृतघ्न उसको निश्चय समझो, जो इसे नहीं अपनाता है ॥७७॥
धार्मिक का धर्म उसके प्रत्येक, कार्यों में साफ झलकता है।
सर्व कुशलता मे श्रेष्ठ एक, धर्म कुशलता लखता है ॥७८॥
न्यायी गुणग्राही सरल नम्र, गम्भीर दयालु कहाता है।
ये गुण जिस में होवे, वह भी तीर्थङ्कर पदवी पाता है ॥७९॥
वस्तु स्वभाव का नाम धर्म, जड़ चेतन सम्बन्धी अर्थ मानो।
चित्त निरुन्ध का नाम काम, सब बन्धन मुक्त मोक्ष जानो ॥८०॥

-: तत्त्व स्वरूप :-

संवर तत्त्व [अखंड] नौकावत्, पापों की रोक लगाता है।
प्यारा मित्र यही जीवों के, आवागमन मिटाता है ॥१०५॥
साबुन पानी के जरिये रजक ज्यों वस्त्र का मैल निराता है।
वैसे तप निर्जरा करने से कुछ पाप क्षीण हो जाता है ॥१०६॥
घटाकाश या पुष्प गन्ध पय [पानीवत्] बन्ध जानो।
वैसे कर्म जीवका बन्धन, अनादि प्रवाह से मानो ॥१०७॥
कर्मों से हो मुक्त आत्मा सिद्ध स्वयं बन जाता है।
सच्चिदानन्द निर्लेप प्रभु, वह जगत् पूज्य कहलाता है ॥१०८॥
चेतन जड़ का मेल जो है, जग में बन्ध तत्त्व जानो।
ऊर्ध्वमुखी पुण्य अधोमुखी पाप द्वार आस्रव मानो ॥११०॥
आस्रव की रोक करे संवर, निर्जरा पाप का नाश करे।
होकर फिर निर्लेप आत्मा, वही मोक्ष में वास करे ॥१११॥
चेतना लक्षण युक्त जीव अनादि निधन शिव यही मानो।
ज्ञाता द्रष्टा कर्ता भोक्ता यह प्रमाण है पहिचानो ॥११२॥
अचेतन द्रव्य रूपा रूपी अरु जीव सहे प्रयोगसा है।
जीव रहित वह मिस्सा पुद्गल, वह अनादी विस्रसा है ॥११३॥
अति स्थूल टूटे पे मिले नहीं स्थूल टूटे पे मिल जाता है।
सूक्ष्म बादर धूप छाया, बादर सूक्ष्म शब्द कहाता है ॥११४॥
सूक्ष्म कर्म वर्गणादिक, जो इन्द्रियों के अग्राही हैं।
अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, जो नित्य जगत् के माहीं हैं ॥११५॥
पुण्य पवित्रपुद्गल सुखदाई, मुक्ति का साधक बाधक है।
हेय ज्ञेय उपादेय के अज्ञान विराधक एकान्त प्रस्थापक है ॥११६॥
पाप तत्त्व अहित दुःखकारी, अशुभ योग मिलाता है।
एकान्त त्यागन योग्य समझ के, क्यों नहीं ध्यान में लाता है ॥११७॥
फूटी नौकावत् आस्रव अधम पुण्य पाप जमा कर देता है।
भव सिन्धु बीच डुबोता है, तू क्यों न लक्ष्य में लेता है ॥११८॥

-: पाप :-

१ २ ३ ४
प्राणातिपात और मृषावाद, चौरी व्यभिचारी पहिचानो।
५ ६ ७ ८ ९ १० ११
परिग्रह क्रोध मान माया, अरु लोभ राग ईर्ष्या जानो ॥११९॥
१२ १३ १४ १५ १६
कलह कलक चुगली निन्दा, है रति अरति लख लेना।
१७ १८
और कपट झूठ मिथ्या दर्शन, यह पाप अठारह तज देना ॥१२०॥
ज्ञानाज्ञान से विष सेवन, तत्काल उसे फल देता है।
बस यों ही सब पापों का विपाक, जो करता है वह लेता है ॥१२१॥
जिस प्रकार रेशम का कीड़ा, जाल वपु पर मढ़ता है।
उसी तरह मिथ्यात्वी जीव, पापों का बन्धन करता है ॥१२२॥
मस्तिष्क में अङ्कित होते हैं, अनुचित और उचित विचार सभी।
परिणाम रूप उसके फलते हैं, पूर्व जन्म संस्कार सभी ॥१२३॥
ज्ञानी जन पाप मे डरते हैं, अज्ञानी जन हर्षाते हैं।
निद्त और निकाश्चित दोनों, पाप बन्द हो जाते हैं ॥१२४॥
ज्ञान सार सब विश्व में है, और ज्ञानी पाप हटाते हैं।
ज्ञानी बनकर अनन्त आत्मा, जोत में जोत समाते हैं ॥१२५॥
चौरी की तस्कर तुम्बों की, पानी के बीच छुपाता है।
एक को दाबे तो एक उकसे, यो अन्त पाप प्रकटाता है ॥१२६॥

-: पुण्य :-

अन्न वस्त्र आसन जल थल, मन वचन काय तीनों शुभ जान।
नमस्कार यह नव प्रकार का, पुण्य बताया श्री वर्द्धमान ॥१२७॥
यंत्र मंत्र तारा शशिग्रह, सुर भूमि राज बल यश मानों।
धन कुटुम्ब आदि सब जब तक, तब तक अपने पुण्य जानों ॥१२८॥

पुण्य यह है उधार देना, अरु पाप कर्ज का पाना है।
यह समय खरीदी का मित्रो, मद्धमें ही लाभ कमाना है॥१२६॥
पुण्य अनुबन्धी पुण्यवान, हो सुखी पुनः यह धर्म करे।
पुण्य अनुबन्धी पापवान, हो निर्धनता भी पाप करे॥१३०॥
पाप अनुबन्धी पुण्यवान, धनवान् धर्म पर पाप करे।
पाप अनुबन्धी पापवान्, हा निर्धन तो भी पाप करे॥१३१॥

- कर्तव्यफल -

तिरछे लोक में पशु मनुष्य, और अधोलोक के बीच नरक।
ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग स्थान है, सर्वोपरि सिद्ध नहीं फरक॥१३२॥
महा आरंभी महापरिग्रही, पचेन्द्रिय के प्राण सताता है।
करे मांस का आहार जीव वह नरक गति का पाता है॥१३३॥
कपट करे कपट में कपट और अच्छे में बुरा मिलाता है।
मात्सर्य रखे इस कारण से वह गति पशु की पाता है॥१३४॥
प्रकृति का भद्रिक विनीति जीवों पर करुणा लाता है।
अमत्सर भावी जीव वही जो मनुष्य गति में आता है॥१३५॥
साधु श्रावक का धर्म करे, और अज्ञान तप कमाता है।
बिन इच्छा के कष्ट सहे वह जीव स्वर्ग में जाता है॥१३६॥

- कर्म स्वरूप -

एक ग्रास से शोणित मांस त्वचा नाखून बाल सब बनते हैं।
त्यों हिंसादिक प्रत्येक पाप से, सप्ताष्टक कर्म बन्धते हैं॥१३७॥
अपने ही कर्मों के माफिक, सुख दुःख सब जग में पाते हैं।
ईश्वर का नहीं दोष इस में, यह ज्ञानी जन बतलाते हैं॥१३८॥
ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण मोह अन्तराय अशुभ घनघाती है।
आयुष्य वेदनी नाम गोत्र, ये कर्म शुभाशुभ अघाती है॥१३९॥
ज्ञान में बाधा जो पहुँचाता, ज्ञानावरणी बन्ध जाता है।
जैसे नर की परदा ढक दे यों अज्ञानी हो जाता है॥१४०॥

दर्शनावरणी कर्म बन्धे, जो दर्शन में बाधा देता।
नृप से नोकर नहीं मिलने दे, त्यों अन्धापन का फल लेता ॥१४१॥
राग द्वेष से मोह कर्म हो, जीवों को वेसुध करता है।
जैसे मादक पुरुषों की, बुद्धी को वह हर लेता है ॥१४२॥
राजा तो दे दान किसे, पर खजानची अटकाता है।
दे अन्तराय हो अन्तराय, रोजी में लात लगाता है ॥१४३॥
जो असिधारा से शहद चखे, हो प्रसन्न फिर पछताता है।
वेदनी शुभाशुभ भवों से, साता असाता पाता है ॥१४४॥
ज्यों कैद में कैदी नर देखो, बिन मयाद के नहीं आ सकता है।
जैसा आयुष्य बान्धा जीवने, वैसा ही वह पा सकता है ॥१४५॥
ज्यों चित्रकार अपने कर से, नाना बिध चित्र बनाता है।
त्यों नाम कर्म शरीरादिक, यह जीवों का निर्माता है ॥१४६॥
मिट्टी से नाना विध बर्तन, ज्यों कुंभकार निर्माण करे।
त्यो ऊँच नीच जाति कुल में, यह गोत्र कर्म अस्थान करे ॥१४७॥
ज्ञानावरणादिक घाती कर्म, क्षय उपशम वे हो सकते हैं।
वेदनादिक अघाती कर्म, भोगे बिन ये नही टलते हैं ॥१४८॥
ज्ञानावर्णादिक घाती कर्म, बन्ध सत्वोदय क्षय को जानों।
मोह कर्म के साथ अविद्या, भावी इनको पहिचानों ॥१४९॥
सब कर्मों का नृप मोह कर्म, जीवों को खूब रुलाता है।
पर भोलापन भी इतना है, एक पल में क्षय हो जाता है ॥१५०॥
जो ज्ञान पढ़े पढ़ावे कोई, और मदद ज्ञान में देता है।
ज्ञान आराधिक बना आतमा, केवल ज्ञान को लेता है ॥१५१॥
जो चक्षु आदि के दोष हरन में, नहीं बाधा पहुँचाता है।
सुदर्शन का गुण ग्राम करे, वह केवल दर्शन पाता है ॥१५२॥
जो राग द्वेष तज सम्भावी, हो मोहनी कर्म हटाता है।
नशा हटे पे शुद्धी हो ज्यों, आतम को लख पाता है ॥१५३॥

दानादि में देवे नहिं अन्तरा, निबलों का सबल बनाता है।
वह अन्तराय का नाश करी फिर अनन्त बली हो जाता है ॥१५४॥
प्राण भूत जीव सत्व को, कष्णा का नहीं सताता है।
वह कर्म वेदनी को क्षय करके निराबाध सुख पाता है ॥१५५॥
जो पापादिक नहीं करे जीव, वह पुण्य अरु पाप खपाता है।
वह आयु कर्म से मुक्त होय, फिर अटल अवगाहना पाता है ॥१५६॥
जो शुभाशुभ भावों को तज, वह शुद्ध भाव में आता है।
वह नाम कर्म से अबन्ध हो अमूर्ती गुण प्रकटाता है ॥१५७॥
जाति कुल आदि गर्व त्याग, जब अनित्य भावना भाता है।
वह गोत्र कर्म से छूट आत्मा अगुरुलघुपन पाता है ॥१५८॥

- गुण-स्थान :-

निश्चय से जीव एक है व्यवहार चतुर्दश जान।
स्वर्ण वास्तव एक है, भूषण भिन्न पहिचान ॥१५९॥

मिथ्यात्व शास्वादान मिश्र, अव्रत व्रत प्रमत्त अप्रमत्त है।
अपूर्वकर्ण अनिवृत्ति भाव सूक्ष्म लोभ दशवें स्थित है ॥१६०॥
उपशान्त मोह क्षय मोह संयोगी अयोगी ये चौदह जानो।
यह जीवों का अस्थान कहा अब लक्षण पै चित्त आनो ॥१६१॥
एकान्तवपक्षी और सत्यलोपी और यथार्थ को विपरीत माने।
संशयवान अज्ञान कृष्णपक्षी मिथ्यात्व पंच यही जाने ॥१६२॥
जो समदृष्टि मिथ्यात्व गहे वह सादी मिथ्यात्वी कहाता है।
जो ग्रन्थी भेद ना कभी करे, अनादि मिथ्यात्व कहाता है ॥१६३॥
जो खीर पान कर वमन करे, शेष स्वाद रह जाता है।
त्यों समकित से गिर एक समय षट आवली जो रहजाता है ॥१६४॥
मिश्र सत्यासत्य भाव रूप श्रीखण्ड समान जो रहते हैं।
तृतीय गुण स्थान की स्थिति, अन्तमुहूर्त की कहते हैं ॥१६५॥
यथा अपूर्व अनिवृत्तिकर्ण, का कोई क्रमशः कर जाता है।
मिथ्याग्रन्थी को नाशकरी समकित रत्न को पाता है ॥१६६॥

ज्ञान विना सम्यक्त्व का मित्रो, भेद जीव नहीं पाता है।
मत भेदादिक के कारण ही, सच्छास्त्र समझ नहिं आता है ॥१६७॥
सम्यक्त्व प्राप्ति का योग मिला, नहिं लक्ष्य आतमा ने दीन्हा।
प्रत्यक्ष परोक्ष के जानने में, कर्मों ने विघ्न अधिक कीन्हा ॥१६८॥
मोह जेल में जीव पडा, अज्ञान कपाट लगाया है।
राग द्वेष पहरे वाले, समकित ने आन छुडाया है ॥१६९॥
मन्द कषाय मोक्ष की वाञ्छा, वन्ध रूप जग को जानो।
स्व और परकी दया करो, श्रीवीतराग वच सच मानो ॥१७०॥
सम्यक्त्व ज्ञान दोनों अभिन्न, जैसे मणि ज्योति होती है।
उपशम अरु क्षयोपशम, सम्यक्त्व वास्तविक क्षायक होती है ॥१७१॥
सम्यक्त्व प्रतिज्ञा जिस मानव को, एक बार मिल जाती है।
उसमें तीजे या पद्र भव में अर्ध पुद्गल में मुक्ति ले जाती है ॥१७२॥
सम्यक्त्व ज्ञान केवल से कहे, मैं जीव मोक्ष पहुँचाता हूँ।
मुझ से तू क्या विशेष करता, मैं तेरे पहले आता हूँ ॥१७३॥
देह मोह तज आतम भाव में, जो नित्य स्थिर रहता है।
निर्लिप्त सदा व्यवहार करे, जग समदृष्टि तब कहता है ॥१७४॥
सम्यग्दर्शन ही शुद्ध चेतना, अशुद्ध चेतना कर्म जनित।
जब शुद्ध श्रद्धान हो जीवों को, वहीं से जन्म की होय गणित ।१७५॥
सम्यग्दृष्टि अन्त करण में, ज्ञान वैराग्य धारण करते।
निज स्वरूप में स्थिर होकर, ससार समुद्र से तरते ॥१७६॥
जितना भाव वन्ध कम हो, उतना ही समकित पाता है।
यदि तीव्र स्नेह पदार्थों में, परमार्थ पृथक् हो जाता है ॥१७७॥
अर्ध पुद्गल काल जीव कोई, समकित तज गोते खाते है।
कोई अन्तर्मुहूर्त में ग्रन्थि भेद, पथ लाँग मोक्ष सुख पाते हैं ॥१७८॥
अन्तमुहूर्त अर्ध पुद्गल के, समय जितनी समकित जानों।
काल व्यतीत ज्यों दोष हने, गुण वृद्धि हो तुम पहिचानों ॥१७९॥

अनन्तानुबन्धी कषाय मिथ्यात मिश्रसमकित मोहनी कहिये।
ये सातों उपशम उपशम हैं सातों क्षय हो क्षायक कहिये ॥१८०॥
चार क्षय उपशम त्रय पंच क्षय, उपशम दो प्रकृती जानों।
क्षय पद् उपशम एक क्षयोपशम, समकित भेद तीनों मानों ॥१८१॥
चार क्षय दो उपशम एक वेद क्षयोपशम वेदक जानो।
पंच क्षय एकोपशम एक वेदे क्षयोपशम वेदक मानो ॥१८२॥
क्षय पद् एक वेदे क्षयवेदक, क्षमवेदक यों बतलाए हैं।
पद् उपशम एक वेदे यह उपशम उपशम वेदक नौमी दर्शाई है ॥१८३
यह चौथवीं गुण स्थान, आतम की प्रकटे ज्योति है।
एक अन्तर मुहूर्त स्थिति या तैंतीस सागर की होति है ॥१८४॥
अप्रत्याख्यान कषाय तजे, जब देश व्रती में आता है।
द्वादशव्रत एकादश प्रतिमा संयम का अंश जहाँ पाता है ॥१८५॥
अभय दुर्ध्यानत्याग एक बीस, गुण उत्तम जिसमें पाते हैं।
देश न्यून पूर्व कोटि स्थित, कल्प लोक में जाते हैं ॥१८६॥
एक समय से एकावलि तक, कनिष्ठ अन्तर्मुहूर्त जानों।
सब न्यून उत्कृष्ट घड़ी दो का अन्तर्मुहूर्त पहिचानों ॥१८७॥
प्रत्याख्यानी हटते छट्ठे गुण सत्ताईस प्रकटाते हैं।
विषय कषाय धर्मराग विकथा निद्रा प्रमद यों पाते हैं ॥१८८॥
स्थविर कल्प जिन कल्प दोनों, निर्ग्रन्थ यहाँ पर होते हैं।
स्थविर बसे वन या बस्ती जिन कल्प विपिन को जाते हैं ॥१८९॥
आहार हेतु बस्ती में आवे, दो उपदेश न शिष्य बनाते हैं।
न उपरोरो एकाकी रहवे दवा न काम में लाते हैं ॥१९०॥
न कंटक दूर करे कर से न सिंह देख फिर जाते हैं।
अटल प्रतिज्ञा है उनकी न कष्टों से घबराते हैं ॥१९१॥
वज्र ऋषभ नाराच संहनन और नव पूर्व का धारी हो।
नविन दीक्षित या दीक्षित का दीक्षित, वही जिन कल्प विहारी हो ॥१९२

स्थविरकल्पी के शिष्य शाखा, और धर्म देशना देते हैं।
परमाणोपेत वस्त्र रखते, और औपधि भी ले लेते हैं ॥१६३॥
बिन कारण गृहस्थ के घर पर, आहारादिक नहीं पाते हैं।
लाके स्थान पै गुरु आज्ञा से, वे विधि युक्त पा लेते हैं ॥१६४॥
बाईस परिषह उभय सहे, द्वादश विध तप कमाते हैं।
देश न्यून कोटि पूर्व स्थिति, या अन्तर्मुहूर्त रह पाते हैं ॥१६५॥
अप्रमत्त गुण स्थान में यह, जिस समय आत्मा जाती है।
धर्म ध्यान में स्थिर होकर, प्रमाद को दूर नशाती है ॥१६६॥
जहाँ आहार विहार का काम नहीं, स्थिति अन्तर्मुहूर्त की पाता है।
या तो लौट के छट्ठे आता, या ऊपर को चढ़ जाता है ॥१६७॥
अब आठवाँ गुण स्थान वह, जहाँ शुक्ल ध्यान भी आता है।
उपशम श्रेणी या क्षय श्रेणी, दोनों में एक कर पाता है ॥१६८॥
यहाँ ऋद्धि सिद्धि लब्धि आदि, अद्भुत शक्ति प्रकटाती है।
क्षपक श्रेणी वहाँ करे आत्मा, जो घाती शीघ्र खपाती है ॥१६९॥
अनिवृति बादर नौवाँ जहाँ, अधिक भाव स्थिर हो जाता।
सजल के क्रोध मान कपट, तीनों विकार षट् मिट पाता ॥२००॥
दशवाँ है सूक्ष्म सम्प्रदाय, यहाँ सूक्ष्म लोभ रह जाता है।
सिद्धि या शिवपुर की वाञ्छा, बस यही इसे अटकाता है ॥२०१॥
उपशान्त मोहिनी गुणस्थान, जो मोह उपशांत कर पाता है।
पुन. मोह प्रज्ज्वलित होता है, गुणोत्तम से फिर गिर जाता है॥२०२॥
द्वादशवें गुण स्थान जाके यह, मोह कर्म विनशाता है।
सम्यक्दर्शन चारित्र दोनों की, पूर्ति जहाँ कर पाता है ॥२०३॥
क्षय मोह के चर्म समय में, घाती त्रय कर्म खपाता है।
संयोगी के प्रथम समय में, अनन्त चतुष्टय प्रकटाता है ॥२०४॥
राग द्वेष काम मिथ्यामत, षट् हासादिक का नाश हुआ।
अज्ञान निद्रा पाँचों अन्तराय, मिट आत्मगुण का प्रकाश हुआ॥२०५॥

मन वचन काय रुन्धन करके शैलेश अवस्था पाते हैं।
पंच लघु अक्षर की स्थिति जहाँ चौदहवाँ स्थान अब पाते हैं॥२०६॥
आश्रव बन्ध पैदा करता, संवर मोक्ष का दाता है।
संवर से आश्रव रुन्धन कर यह जगत् पूज्य बन जाता है॥२०७॥
शुक्ल ध्यान की अग्नि से, अघाती कर्म जल जाता है।
बन्ध छेदन गति पूर्व तीरवत्, सिद्धालय को पाता है॥२०८॥
नहीं बन्ध मोक्ष नहीं जन्म जरा मृत्यु का लगता बान नहीं।
नहीं राजा प्रजा स्वामी सेवक, जहाँ बस्ती और वीरान नहीं॥२०९॥
संयोग वियोग बोलना चलना कर्म काया का काम नहीं।
नहीं हर्ष शोक नहीं विषय भोग, गुरु शिष्य न्यूनाधिक नाम नहीं
एक में अनेक अनेक एक में, नहीं एक अनेक गिनाते हैं।
जैसे प्रकाश में प्रकाश ज्यों, सिद्धों में सिद्ध समाते हैं॥२११॥
समुद्र मांह खेत सैन्धव जाता वापिस नहीं आता है।
यों सिद्धों में पहुँच आत्मा स्वयं सिद्ध बन जाता है॥२१२॥
मोक्ष पाना कहे भेद जगत्, पर जो मुक्ति पा जाता है।
अकथनीय वह आनन्द वेद भी मयती मयती गाता है॥२१३॥

जैन:-

अज्ञानी जैन शास्त्र को निशि दिन नास्तिक रूप बतलाते हैं।
जैन धर्म तो आस्तिक है वे अज्ञान भेद नहिं पाते हैं॥२१४॥
जैन धर्म तो दया दान अरु ईश्वर भक्ति सिखाता है।
जीव अजीव पुण्य और पाप जगत अस्तित्व बताता है॥२१५॥
सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की भी जिसमें रक्षा बतलाई है।
एक परमाणु से लगा के जगत्, की वास्तविकता बताई है॥२१६॥
जैन कहे आत्मा तारा, और अनन्त शक्ति प्रकटाओ।
अनंत दुःखमय कर्म मुक्त हो, आवागमन को विनशाओ॥२१७॥
जैन मुनि त्यागी होते हैं, सब सत्य मार्ग बतलाते हैं।
गाँजा भंग मांस मदिरादिक से विमुख करवाते हैं॥२१८॥

एक दूजे को नास्तिक कहने से, नास्तिक नहिं बन जाते हैं।
आस्तिक को जो नास्तिक मानें, नास्तिक वे ही कहलाते हैं ॥२१९॥
समदृष्टी समदर्शी वीतरागी, समभावी शुद्धभावी कह दो।
आत्मज्ञानी अन्तरात्मा, चाहे उसे जैनी कह दो ॥२२०॥
राग द्वेष पर विजय करे, बस वही जैन पद पाता है।
वही पवित्र आत्मा है, और वही मोक्ष में जाता है ॥२२१॥
जैन धर्मी बिन बने जीव, नहीं कभी मोक्ष में जाता है।
जैन धर्म के शरण शक्त जो, आता वही शिव पाता है ॥२२२॥
अदने से आला तक देखो, सब जन जैनी बन सकते हैं।
हर वक्त खुला फाटक इसका, चारों ही वर्ण आ सकते हैं ॥२२३॥
मतभेद का कारण मोह शिथिलता, राग द्वेष बतलाते हैं।
सत्य का गला घोटने वाले, वे घोर नरक में जाते हैं ॥२२४॥
विक्षेप डाल के सत्य धर्म में, इच्छित मत अधम चलाते हैं।
प्रतिष्ठा के इच्छुक मनुष्य, वह आवागमन बढाते हैं ॥२२५॥
जैन धर्म का उद्देश्य वास्तव, जगत् दुःखों का बाधक है॥
जाति देश, समाज आत्मा, की उन्नति का साधक है ॥२२६॥
रख भेद भाव को अज्ञानी, डूबे खुद और डुबोते हैं।
जैन मुनि से ज्ञान श्रवण कर, अन्तर मल नहीं धोते हैं ॥२२७॥
आजीविका, स्त्री, प्रतिष्ठा हित, विधर्मी तक बन जाते हैं।
जाति धर्म का गौरव तज, उत्तम कुल से गिर जाते हैं ॥२२८॥

-: नीति :-

थोड़े जीने के लिये दीन, जनता के अधिकार कुचलते हो।
ईश्वर से विमुख हो देशद्रोही, क्यों परमार्थ से टलते हो ॥२२९॥
सदा न्याय की बात कहो, चाहे जग रूठे रुठन दो।
निज ध्येय पे अपने डटे रहो, पर सत्य को कभी न छूटन दो ॥२३०॥
क्रोध क्षमा नेकी से बदी, नीचता प्रेम द्वारा सहना।
असत्य सत्य से विजय करो, जो है उन्नति पथ का गहना ॥२३०॥

ह्रदय से जो शासन होता, वह नहिं विभाग से होता है।
ह्रदय बीच है प्रेम भरा मस्तिष्क में तामस होता है ॥२३१॥
कहने वाले बहुत मगर करने वालों की पूजा है।
हलवाई पकवान करे पर, खाने वाला दूजा है ॥२३२॥
दुष्प्राप्याम् भिखारी को, उपदेश असर नहिं करता है।
पड़ता प्रभाव उस नृप पर जो, तज राज्य तपस्या करता है ॥२३३॥
धर्मी बनते बनते तुम धर्मान्ध कदापि नहीं बनना।
धर्मान्ध प्राण पर का हरता हर्गिज यह पाप नहीं करना ॥२३४॥
जहाँ सत्य वहाँ सिद्धान्त नहीं सिद्धान्त सत्य न कहता है
सम उद्योत क अनवनवत् यह सत्य सत्य हो रहता है ॥२३५॥
प्रजा के दुख अन्याय शोष, नीति को तू अपने उर धर।
राजा भी है मेहमान मौत का, सारी जान का कर ॥२३६॥
यदि अधिकारी बने पुण्य से, प्रजा का हित करना चहिये।
भमक तू जिसका खाता है, उस प्रजा क हित मरना चाहिये ॥२३७॥

-ः शिक्षा :-

चाहे जितना परतन्त्र रहो पर मन पवित्रता मत तजना।
अनुचित विचार यदि उठे कभी, तो मृत्यु को तुम मत भजना ॥२३८॥
शुष्काध्यात्मसाराम बिन समझे जो व्यवहार उठाते हैं।
वे खुद को और दूसरों को भी, अधोगति पहुँचाते हैं ॥२३९॥
निर्धन कहे धन हो धर्म करूँ, धन गया कहीं नहीं धर्म किया।
धन के मद में धनवान् पड़े मर प्रेत योनि में जन्म लिया ॥२४०॥
प्राण तजा जग वास कहा तू क्यों नहीं नाम कमाता है।
कब किस का नाम रहा जग में, फिर व्यर्थ ममत्व बढ़ाता है ॥२४१॥
मद्य मांस को मन्दिर में नहिं कभी पुजारी खाने दे।
तो इसके मस्तक का परमेश्वर, कब बैकुंठ में जाने दे ॥२४२॥
दिया सुपात्र दान ग्वाला भव, शालिभद्र शुभ ऋद्धि पाई।
गज भव अभय दान दीन्हा, तो मेघ कुमार दई पाई ॥२४३॥

जिसने सद्गुरु का वचनामृत, आदर पूर्वक धारण कीन्हा।
अन्तःकरणान्तर्मुखवृत्ती. ब्रह्मरूप आनन्द लीन्हा ॥२४४॥
जूआ माँस मदिरा शिकार, वेश्या चोरी अरु परनारी।
ये सातों नर्क के दाता हैं, इनका तजना है अनिवारी ॥१४५॥
शान्त सत्य प्रिय कोमल बचन, अभ्यास बोलने का कीजै।
पर उपकार करो वृत्ती में मत, कदापि बाधा दीजै ॥२४६॥
नया वैर मत करो किसी सङ्ग, समझ तुझे कब तक जीना।
कितने दिन यहां सुख भोगेगा, ज्ञानी के वचनामृत पीना ॥२४७॥
साढ़े तीन हाथ भूमी बस, यह तन इक दिन मांगेगा।
राजा हो या रङ्क एक दिन, अवश्य यहां से भागेगा ॥२४८॥
तू चाहे जितना अर्थी हो, जीविका हेत अन्याय न कर।
अन्याय द्रव्य नहिं टिकने दे, इस शिक्षा को अपने उर धर ॥२४९॥
अधम कृत्य करके क्यों पामर, अशुभ मार्ग पर बढ़ते हो।
धन के अभिमान में आकर क्यों तुम अधोगति में पड़ते हो ॥२५०
क्रोध का छूमन्तर है क्षमता, मान का मंत्र नम्रता है।
लोभ का छूमन्तर संतोषता, कपट का मन्त्र सरलता है ॥२५१॥
चक्रव्यूह में फँसे हुए जन को, सिद्धान्त सुनाता है।
क्यों दुनियाँ के जंजाल बीच, फँस कर यह जन्म गँवाता है ॥२५२
अज्ञानी की हर सूरत में, दुष्कर्मों से रक्षा कीजै।
रोते बालक के भी हाथों से, जहर तुरन्त छीन लीजै ॥२५३।
तेरह चौदह की बात करो, पहला गुण स्थान नहीं छोड़ो।
अनन्त बार वकवाद किया, अब निश्चय से नाता जोड़ो ॥२५४॥
निश्चय से युत व्यौपार किया, उसने भव बन्धन तोड़ा है।
जो व्यर्थ विवाद बढ़ाता है, वह जोग से खाता जोड़ा है ॥२५५॥
अशुद्ध भावों से अनत गुण, शुद्ध भाव सुख दाता है।
अशुभ भाव संचित कर्मों को क्षण में शुद्ध खपाता है ॥२५६॥

अपने कल्याण की वास्तव में वह कुञ्जी पास तुम्हारे है।
अन्तर्दृष्टी को खोल देख क्यों बाह्य निमित्ति निहारे है ॥२५७॥
फर्स्टक्लास के रिजर्व डिब्बा में, बैठ आनन्द मनाते हो।
स्टेशन आने पर क्या करना आगे का न ख्याल लाते हो ॥२५८॥
जो नारी हो तो पतिव्रता, तो पति भी पत्निव्रत होना।
नीति विपरीत दोनों पक्ष के अपनी प्रतिष्ठा नहीं खोना ॥२५९॥
कि समय सम दशा राम नरियल सम मध्यम बताया है।
अधम पुरुष बदरी फलसा, महा अधम पुगीफल गाया है ॥२६०॥
उत्तम मार्ग रखे अनर्थ प्रास मध्यम काम नहीं तजता।
अधम मार्ग में आनन्द माने, अधमाधम लोगों हित मुरता ॥२६१॥
तनिक करणी अधिक फल चाहे, प्रत्यक्ष धर्म बंचता है।
स्वर्ग तो रहा दूर मगर, दुर्लभ तन नर का मिलना है ॥२६२॥
जीवन पर्यन्त जो क्रोध रखे वह अधोगति में जाता है।
ऊर्ध्वगति में ध्यान वाला, क्रोध को शान्त बनाता है ॥२६३॥
पूजक सच्चा ईश्वर का वह, जो परोपकार को करता है।
उसे ईश्वर का द्रोही जानो जो परोपकार पर हरता है ॥२६४॥
अधिक प्रतिष्ठा चाहे वह, उपहास्य का पात्र कहाता है।
जितनी योग्यता अपनी है, वह शेष प्रतिष्ठा चाहता है ॥२६५॥
प्रतिष्ठा नहीं धन संग्रह में जो त्याग पोष बतलाई है।
बिगाड़ में नहीं महत्त्व जरा जो सुधार में दिखलाई है ॥२६६॥
धर्मी के विपक्षी अवश्य हो और उसकी यही कसौटी है।
मेल महत्त्वशाली पुरुषों का एक यही बात अनूठी है ॥२६७॥
हिंसा प्रतिहिंसा ईर्ष्या द्वेष, मात्सर्य असत्य आदि जान।
जिस समाज में यह दूषण हो उस का कब होता है कल्याण ॥२६८॥
उपद्रव कह कषाय तजो, और सुर कषाय में उलझें हैं।
लगी कालिमा दाड़ मुख पे पर ले शीशा नहीं सुलझे हैं ॥२६९॥

ज़ुल्मों में उम्र सारी गुज़री, बदनामी खूब कमाई है।
तनिक द्रव्य दे सस्था में, लिया नेको में नाम लिखाई है ॥२७०॥
प्रिय वचन और विनय वन्त, दे दान दुखी को पीर हरन।
पर गुण ग्राहीवर्ती जिसकी, अमूल्य मत्र यह वशीकरन ॥२७१॥
इस मत्र से कर काज सिद्ध, नहीं इच्छा तो जग में फिरले।
विना मोक्ष के सुख नहीं हो, शिक्षा हृदे बीच धरले ॥२७२॥
प्रात हुई द्रव्य निन्द खुली, पर भाव नीन्द से भी जागो।
गया प्रमाद में अनत काल, अब तो सत पथ पै तुम लागो ॥२७३॥
नर होवे चाहे नारी हो, चाहे नग्न अनग्न विरक्ती हो।
जैनी हो चहे अजैनी हो, होते कषाय नहीं मुक्ती हो ॥२७४॥
संप्रदाय वाद के जोश में आ, एक दूजे की बुराई करते हैं।
श्रावक साधुता दूर रही, समदृष्टि भाव भी हरते हैं ॥२७५॥
निन्दा करो तो पापों की, पापी की निन्दा मत करना।
गुणग्राही बनना है तुमको, ना गैर के दुर्गुण धरना ॥२७६॥
जो जुदा करे उस कैंची को, भूमि पर डाली जाती है।
जो एक करे उस सूई को, पगड़ी में रक्खी जाती है ॥२७७॥
काम क्रोध मद लोभ चार, ये नर्क द्वार हैं पहिचानों।
शीघ्र तजो नहिं देर करो, है शिक्षा सतगुरु की मानों ॥२७८॥
सन्तोष दया और शील क्षमा, ये मुक्ति द्वार चारों जानो।
जो इसको अपनायेगा, वह कल्याण पायगा सच मानो ॥२७९॥
जिस महापुरुष के द्वारा जग, आवागमन मिटाता है।
एक जीव अशुभ कर्मोदय से, संसार अनन्त बढ़ाता है ॥२८०॥
सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र युत, देश काल का ज्ञाता हो।
जो श्रोता का हृदय लखे वह वक्ता उपदेश का दाता हो ॥२८१॥
सरल नम्र आत्म हितेच्छु, जिज्ञासु ऐसा होता है।
वक्ता से ज्ञानामृत पीकर, वह पाप कलिमल धोता है ॥२८२॥

सिद्धान्त पढ़ा और मनन किया, आतम प्रकाश जगाया है।
कुछ हिस्सा जिसका भाषा का किया मैंने समझाया है।।८८।।
मुक्ति पथ पर मनन करो, और हृदय तराजू पर तोलो।
चौथमल का कथन यही श्री महावीर की जय बोलो।।८९।।

० दोहा ०

गङ्गा तटनी के निकट, कानपुर शुभवास।
उन्नीस सौ चौरानवे, किया सुखद चौमास।।

समाप्त

मुद्रक—बा० गुलाबचन्द अग्रवाल बी० कॉम,
अग्रवाल प्रेस, रावतपाड़ा, आगरा।

मुक्ति-पथ

रचयिता—
जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि
श्री चौथमलजी महाराज ।

॥ श्रीमद् पार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ मुक्ति-पथ ॥
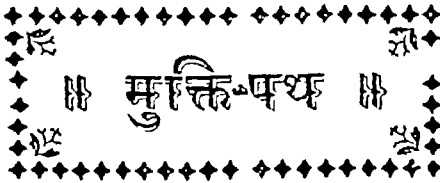
लेखक

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ।

प्रकाशक

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक, समिति, रतलाम ।
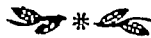
प्रथमावृत्ति	मूल्य	वीर सं० २४६७
२०००	दो आना	विक्र० सं० १९९७

॥ दो शब्द ॥

ज्ञान कंठ पैसा गांठ की कहावत के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण काल से उनका फर्माया हुआ ज्ञान याद करके कंठ दर कंठ आता रहा है। जब पूर्वाचार्यों की स्मरणशक्ति कमजोर होती आरही है तो उन्होंने उस अपूर्व ज्ञान को चिर स्मरणीय रखने के लिये हाथ से लिपिबद्ध करना आरम्भ कर दिया। यह लेखन कला कि क्रिया भी दिन प्रतिदिन दुसाध्य होती गई और गत शताब्दी से मूल शास्त्रों को छाप छाप कर प्रकाशित कर दिया गया। मूल सूत्रों के प्राकृत भाषा में होने के कारण जन-साधारण के कल्याण के लिये उनके अर्थ को सरल बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इसी अभिप्राय से सूत्रों का सरल अनुवाद प्रकाशित होने लगा।

जैन सिद्धान्त बहु पहलूदार हीरे के माफिक है। यह स्याद्वाद के तत्व पर आश्रित है उसमें बहुत सी बारीकियां और खूबियां हैं। इस पुस्तक में इसी प्रकार के विषयों का भली प्रकार विवेचन किया गया है। सिद्धान्त के गूढ़ अर्थों को सरल पद्य में लिखकर श्री० जैन दिवाकर चौथमलजी म० ने पाठक वृन्दों पर असीम उपकार किया है। पाठक गण इसे जितना मनन पूर्वक पढ़ेंगे उतना ही आनन्द-लाभ प्राप्त करेंगे। अन्त में हम जोधपुर के उन उदार चित्त सज्जनों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक की १०० प्रति प्रचारार्थ अमूल्य वितरण कर ज्ञान प्रचार के शुभ कार्य में हाथ बटाया है।

भवदीय
गुलाबचन्द जैन

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,
रतलाम

के

जन्म दाता

श्रीमान् जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित
मुनि श्री चौथमलजी महाराज

स्तम्भ

श्रीमान् दानवीर रायबहादुर सेठ कुंदनमलजी लालचन्दजी सा०	ब्यावर
,, सेठ नेमीचन्दजी सरदारमलजी सा०	नागपुर
,, ,, सरूपचन्दजी भागचन्दजी सा०	कलमसरा
, ,, पुनमचन्दजी चुन्नीलालजी सा०	न्यायडोंगरी
,, ,, बहादरमलजी सूरजमलजी सा०	सादगिरी
,, ,, नथनमलजी सौभागमलजी सा०	जावरा

संरक्षक

,, ,, श्रेमलजी लालचन्दजी सा०	गुलेदगढ़
,, ,, लाला रतनलालजी सा० मित्तल	आगरा
,, ,, उदेचन्दजी छोटमलजी सा०	उज्जैन
,, ,, छोटेलालजी जेठमलजी सा०	कतरा
,, ,, मोतीलालजी सा० जैन वैद	मॉगरोल
,, ,, सूरजमलजी साहेब	भवानीगंज
,, ,, वकील रतनलालजी सा० सर्राफ	उदयपुर
श्रीमान् सेठ कालूरामजी सा० कोठारी	ब्यावर
,, ,, कुंदनमलजी सरूपचन्दजी सा०	ब्यावर
,, ,, देवराजजी सा० सुराना	ब्यावर
,, ,, नाथूलालजी छगनलालजी सा०	मल्हारगढ़

,, ताराचन्दजी गादमी पुनमिया सादड़ी (मारवाड़)
श्री महावीर जैन नवयुवक मंडल चित्तौड़गढ़
श्री श्वे० स्था० श्रीसंघ बड़ीसादड़ी (मेवाड़)
श्रीमती पिस्ताबाई लोहामण्डी आगरा
,, राजीबाई बरोरा सी० पी०
भमरबाई, लोहामंडी आगरा
चन्द्रपतिबाई सब्जी मंडी, देहली
श्रीमान् मोहनलालजी सा० वकील उदयपुर
श्रीमान् सेठ मिश्रीलालजी नाथूलालजी सा० कोटा
,, ,, लखमीचन्दजी सतोकचन्दजी सा० मुरार
,, ,, चम्पालालजी सा० भंडारी ब्यावर
नेमाचन्दजी शीकरचन्दजी सा० शिवपुरी
,, फूलचंदजी सा० जैन कानपुर
पृथ्वीराजजी कुचेरिया धूलिया
इन्दरमलजी जैन हाथरस
,, ,, गुलाबचंदजी पूनमचन्दजी मदनगंज (किशनगढ़)
नवलरामजी गोकुलचन्दजी लसाणी (मेवाड़)
,, मालमसिंहजी केसरीसिंहजी चौधरी
नीमच (मालवा)
बाबजी श्री इन्दरमलजी भोगीलालजी डांगी
गंगरार (मेवाड़)
,, स्वर्गीय सेठ हीरालालजी नन्देती की धर्मपत्नि
श्रीमती पानबाई मालोट (मालवा)
श्री श्वे० स्था० जैन महावीर नवयुवक मण्डल
दूनका (टोंक स्टेट)
मस्पर
श्रीमान् सेठ फूलचन्दजी मदनलालजी महता दूंगला (टोंक स्टेट)
उदयरामजी कालूरामजी धामणी (बरार)

मुक्ति-पथ

* दोहा *

मंगलमय भगवान को, नमन करो हर बार।
जग है नित्यानित्य मय, यह मन में लो धार ॥ १ ॥

* प्रार्थना *

[तर्ज-रामायण]

प्रात काल सामायिक कर, प्रभु से विनती करनी चाहिये।
अनुचित नहीं कुछ भी हो हमसे, यह बात हृदय धरनी चाहिये ।१।
शुद्ध भाव अपने करके तुम, भगवद् भक्ति में लीन बनो ।
सब जीवों से माफी मागों, और अशुभ ध्यान को तुरत हनो ॥२॥
लख चौरासी योनी में, हैं खेल किये प्रभु सुन लीजे ।
हो प्रसन्न शिव सुख दीजे, या जन्म मरण वारण कीजे ॥३॥
श्रवण कीर्तन मनन सेवना, बन्धन ध्यान लघुता जानो ।
समता एकता नवधा भक्ति, करके जन्म सफल मानो ॥४॥
गुणवान् नम्र परिशुद्ध हृदय, परमात्मा के गुण का चिन्तन।

श्रवण मनन कीर्तन प्रभु भक्ति, श्रेष्ठ ज्ञान कीजे धारन ॥४॥
राग द्वेष अज्ञानादिक यह, दोष न जिसमें पावे हैं।
उस वीतराग सर्वज्ञ प्रभु का, सब जग मिल गुण गावे हैं ॥५॥

❁ ईश्वर ❁

घट के पट में भगवान बसे, पर मोह कपाट लगाया है।
गुरु बोध से जिसने ज्ञान लिया, उसने शुभ दर्शन पाया है ॥१॥
परमात्मा में परमोच्च नेह, विपदा सह कर भी कर लीजे।
बिन विपद सहे तन्मय भक्ति, नहीं मिले ध्यान में धर लीजे ॥२॥
जिसका ईश्वर में ध्यान लगा, उसे मोह शोक नहिं होता है।
वास्तविक सौख्य है यदि जग में, तो क्यों मुक्ति को खोता है ॥३॥
आत्म-देव ज्ञान ही सद्गुरु, धर्म स्वभाव में करे रमन।
इस निश्चय पर जो नहीं पहुँचे, वह जगती में करे भ्रमन ॥४॥
ज्यों नींबू का नाम लिये, मुख में पानी भर आवा है।
ऐसे प्रभु सुमिरन करने से, पाप जीव का जाता है ॥५॥
सब मंत्रों में नवकार-मन्त्र, यह मन्त्र मोक्ष का दाता है।
इसके गुण का जब मनन करे, तब चमत्कार प्रगटाता है ॥६॥
मनुज तीन बातों को लख ले, वही सफल हो जाता है।
ईश्वर सद्गुरु और अहिंसा, धर्म श्रेष्ठ कहलाता है ॥७॥
जप तप ध्यान सम्य सगति, अभ्यान्तर पाप मिटाते हैं।
उन ईश्वर की महिमा अपार, जो हम को मार्ग सुझाते हैं ॥८॥
तन मंदिर का मदेव तुम्य जग में है ऐसा देव नहीं।
मन स यह प्यार लगाता है, तू अन्य देव को सेव नहीं ॥९॥
जब ध्याता ध्येय में लीन होय, तब द्वैत भाव मिट जाता है।

आनन्द मूक के गुण समान, वह नहीं कथन मे आता है ॥१०॥
ब्रह्मवेत्ता के मन मे, स्वाभाविक सुख प्रगटाते हैं।
विपयो के सुख से अनन्त गुण, ये सुख बढ़कर कहलाते हैं ॥११॥
दुखी जीव दुख का दाता, ईश्वर को ही बतलाते हैं।
यह सब दुष्कर्मों का विपाक, इस तरफ ध्यान नहीं लाते हैं ॥१२॥
बिन रसना सर्व स्वाद् चखै, आँखों बिन जग को देख रहा।
बिन कान सुनै सब की बातें, बिन त्वचा स्पर्श को पेख रहा ॥१३॥
उस देश का भेद बतावे गुरु, जहापर होती दिन रात नहीं।
नहिं उगे जहा रवि शशि तारा, तम और प्रकाश की बात नहीं।१४।
नहिं काल वचन तन कर्म धर्म, है जहा प्यास और भूख नहीं।
नहिं खाने पीने की चिंता, जँह बसता सुख और दुख नहीं ॥१५॥
जँह नहीं रूप रस गधादिक, आधी व्याधी का नाम नहीं।
नहिं आवागमन अशाति जहा, उस शाति धाम सा धाम नहीं १६
सर्वज्ञ हितैषी समदर्शी, निर्दोष वह ईश हमारा है।
अफसोस है जो उसको भूले, वह सबका जानन हारा है ॥१७॥
जो ज्ञाता द्रष्टा सबका है, जो अतुलित शक्ति धारी है।
और निराबाध पूरण सुख है, उस प्रभु को नमन हमारी है ॥१८॥
सुवरन पैदा हो मिट्टी में, और अन्त उसी मे समाता है।
पर मुक्त आत्मा ईश्वर बन, नहिं भव-बन्धन में आता है ॥ १९ ॥
तुही एक और तू अनेक, तू है सब में पर न्यारा है।
तेरे दर्शन को दर्शक गण, तरसें खडे दुआरा है ॥ २० ॥
ब्रह्म असग अक्रियय व्यापक, अरु परम शुद्ध है दु ख निकन्द।
विपय कपायादिक तृष्णा, अरु मान रहित है परमानन्द ॥ २१ ॥
सच्चित् आनन्द ब्रह्म रूप यह, मत्र जिसे बतलाओगे।
चमत्कार इसका क्या है, यह वही देख तम पावोगे ॥२२॥

हूँ अलभ्य पास क्यों तू ढूँढे, जो कोई मुक्त पा लेता है ।
वह सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म हो, नहीं द्वैत भाव फिर रहता है ॥२३॥
सच्चिदानन्द तक नहीं पहुँचे, नाम रूप में भटकाता है ।
यह प्राणी शुभाशुभ कर्म करता, जगतीतल मध्य भटकता है ॥२४॥
जिसने प्रभु का दर्शन पाया, हरकीज वहां बतलायेगा ।
भगवत दशा अनिर्वचनीय, न दर्शक लिखला पावेगा ॥ २५ ॥
नहीं गिरजा मन्दिर मस्जिद है, नहीं आश्रम गुरु द्वारा है ।
हम जहां बैठे वहीं आश्रम है, और वहीं प्रभु हमारा है ॥ २६ ॥
अज्ञान नींद मिथ्या भ्रमत, अरु राग द्वेष भय शोक नहीं ।
नहिं हास्य काम अरु रत्यरति, अरु पुन जुगुप्सा दोष नहीं ।२७
दान लाभ भोगोपभोग, नहिं वीर्य अन्तरा पाते हैं ।
बस वही देव है जगद्वन्द्य, दोषी नहिं पूजे जाते हैं ॥ २८ ॥
प्रभु को चाहे जिस तरह भजो, उसका फल मिल ही जायेगा ।
उल्टा सीधा डालिये बीज, पर उगकर ऊपर आयेगा ॥ २९ ॥
पारस वह कैसा पारस, जो लोहे को नहीं पारस कर दे ।
यह शक्ति है श्री भगवान् में, जो आत्मा को परमात्मा करदे ।३०।

✿ प्रभु-वाणी ✿

ज्यों वृष्टि सकलस्थल में होती, त्यों प्रभु की होती वाणी है ।
अन्तर में तो है वचन योग सब जीवों की पुण्यवानी है ॥ १ ॥
श्री वीतराग के वचनों में ख्याति-गत नहीं दुराइ है ।
बात यथार्थ सब जीवों के, लिये आप फरमाई है ॥ २ ॥
जीवों की हिंसा का विधान जिस शास्त्र में बतलाया है ।
ईश्वर का वह कलाम नहीं, तू क्यों धोके में आया है ॥ ३ ॥
सिद्धान्ती विषयों के विरुद्ध, जो वाक्य साबित हो जाता है ।

वह इलहामी कलाम नहीं उसको कोई गैर बनाता है ॥ ४ ॥
नभ के पानीवत जिनवाणी, जो धारे वह तिर जाते है ।
इसमे व्यक्ति-गत निन्दा कर, कई द्वेषी मेल मिलाते हैं ॥ ५ ॥
वीतराग या वीतराग की, वाणी जो नहीं प्रगटाती ।
तो अज्ञान अधेरा छा जाता, अरु दया विश्व से उठ जाती ॥६॥

ॐ धर्म ॐ

इस सृष्टि मे सब से पहले, किसने धर्म चलाया है ।
गफलत मे सोये जीवो को, किसने आन जगाया है ॥ १ ॥
ऋषभदेव भगवान् ने जग में, धर्म अहिंसा फैलाया ।
सकल जीव अज्ञान ग्रसित थे, उन्हें सचेतन करवाया ॥ २ ॥
उच्च नीच का भेद जहापर, धर्म ठौर नहीं पाता है ।
धर्म तो ब्रह्मरूप नहिं उसमे, जाति पाति का नाता है ॥ ३ ॥
सच्चा धर्म वही है जिसमें, भेद भाव का नाम न हो ।
प्राणि-मात्र की हित चिन्ता, जिसमें झगडो का काम न हो ॥४॥
धर्म घोर से घोर पापियों, को भी आश्रय देता है ।
और पतित से पतित जीव को, यही शरण मे लेता है ॥ ५ ॥
भारत के महात्माओं ने, जिस तरह धर्म बतलाया है ।
नहिं अन्य देश के पुरुषो ने, यो धार्मिक जिक्र चलाया है ॥ ६ ॥
रूढिवादियो ने मानव मे, छूआछुत फैलाया है ।
धर्म-शरण मे लेकर उनको, समता पाठ पढ़ाया है ॥ ७ ॥
सम्यग्दर्श ज्ञान-चरित्र, स्वधर्म इन्हे धारण कीजे ।
विषय कषायादिक पर धर्मों का, न कभी सेवन कीजे ॥८॥
मैं सत् हूँ चित् हूँ आनन्द हूँ, परिशुद्ध धर्म यह मेरा है ।

अज्ञान मोह दु:खादिक यह, पर धर्म का सभी बखेड़ा है ॥९॥
पर भ्रम में पड़कर आत्मा ने, अपना स्वधर्म बिसराया है ।
पर धर्म स्व-धर्म की व्याख्या को, बिन गुरु न कोई पाया है॥१०॥
आत्मा अब आत्म धर्म ग्रहण ले, निज प्रवृत्ति भी वैसी कर ले ।
तब मानव जन्म सफल करके, भवसिन्धु सरलता से तर ले॥११॥
आत्मिक धर्म के अन्दर मित्रों !, नहिं रिश्तेदारी नाता है ।
सत्य को जिसने जान लिया, वह नहीं दवाया जाता है॥१२॥
देही का व्याधित होना, प्राकृतिक धर्म कहलाता है ।
चिन्तित होकर अधीर होना, पाशविक धर्म में आता है॥१३॥
कोई एक सत्पुरुष ढूंढ विश्वास उसी पर लाओ तुम ।
है आत्मिक सुख का सार यही सब भूल चूक बिसराओ तुम ॥१४॥
चाहे किसी धर्म का हो, इसमें नहिं पक्षपात मेरा ।
जिस तरह जगत जजाल छूटे, कर वही कि जिसमें हित तेरा॥१५॥
उपाध्याय आचार्य साधु, सम्प्रति भारत में पाते हैं ।
इनके द्वारा शुद्धात्म-बोध पा जीव स्वर्ग में जाते हैं ॥ १६ ॥
कई एक साधु श्रावक, एक भव कर मोक्ष में जाते हैं ।
जो अधिक पन्द्रह से न करें वे आराधिक कहलाते हैं ॥१७॥
राग रक्खो सत्कार्यों में, कुकर्मों से तुम द्वेष करो ।
नेह देह पर से त्यागो आत्मिक रुचि का पंथ धरो॥ १८ ॥
मल-मूत्र पूर्ण दुर्गन्धित इस विग्रह पर क्यों ललचाते हो ।
ये हैं असार एक धर्म सार इसका क्यों नहीं अपनाते हो॥१९॥
जुल्मी कामी अन्यायी और पापी की मदद नहीं कीजे ।
घंटे दो घंटे कम से कम, धार्मिक चर्चा भी कर लीजे॥ २ ॥
अधोगती में गिरने का अवरोध एक धर्म ही है ।
मानव को नीच बनाने का, कारण बस दुष्ट कर्म ही है॥२१॥

क्रोध का बदला क्रोध से ले, तो इसमें नहीं महत्ता है।
जो क्रोधी को भी क्षमा करे, उसका महत्व अलबत्ता है॥ २२॥
जीना यह धर्म प्राकृतिक है, मरना यह धर्म विभाविक है।
जीने की सभी करे इच्छा, जीना जन का स्वाभाविक है॥२३॥
संसार महा सागरवत् है, संसार है ज्वाला मुख समान।
संसार अंधकारवत् दीखे, संसार शकट कहते सुजान॥ २४॥
धर्म नाव से उदधि तरै, वैराग्य उदक से अग्नि शमन।
संपूर्ण अन्धेरा नशे ज्ञान से, राग द्वेष मिट छुटै भ्रमन॥ २५॥
मानव-धर्म रूप हीरे पर, श्रद्धा सान चढ़ाओ तुम।
तो अवश्य ही प्रभु के दर्शन कर, उच्च गती को पावो तुम॥२६॥
क्षमता संतोष सरलता ऋजुता, अन्तर्शुचि और सत्य वचन।
संयम तप ब्रह्मचर्य ज्ञान, इस दश विध धर्म का करो मनन॥२७॥

* दोहा *

कूप खने मिट्टी मिले, पुनि पानी बह जाय।
धर्म करे अघनाश हो, आतम सुख प्रगटाय॥२८॥

दुर्गति गिरते हुये प्राणी को, केवल एक धर्म बचाता है।
स्वर्गापवर्ग देता उसको, जो नर इसको अपनाता है॥२९॥
मनुष्य जन्म सुत दारा द्रव्य, हर एक को ये मिल जाते हैं।
दुर्लभ सत्संग अरु धर्म श्रवण, फिर बोध बीज को पाते हैं॥३०॥
जिस धर्म से नर तन उत्तम कुल, और सुख संपति को पाता है।
कृतघ्न उसको निश्चय समझो, जो इसे नहीं अपनाता है॥३१॥
धर्मी का धर्म उसके प्रत्येक, कार्यों मे साफ झलकता है।
सर्व कुशलता से श्रेष्ठ एक, धर्म कुशलता लखता है॥३२॥

न्यायी गुणग्राही सरल नम्र, गम्भीर दयालु कहाता है।
ये गुण जिसमें होवे, वह भी तीर्थंकर पदवी पाता है ॥३३॥
वस्तु स्वभाव का नाम धर्म, जड़ चेतन सम्बन्धी धर्म मानो।
चित्त निरुन्ध का नाम काम, सब बन्धन मुक्त मोक्ष जानो ॥३४॥
है पाप रूप और पुण्य लाभ, सोने पर मेल मिलाओ तुम।
यह धर्म सदा हितवर्द्धक है, इसको भाई अपनाओ तुम ॥३५॥
चाहे तो जमाना पलट जाये, पर धर्म नहीं पलटाता है।
जो पलट जाय वह धर्म नहीं है, धर्म तो ध्रुव कहलाता है ॥३६॥

वस्तु स्वभाव का नाम धर्म है, संयोग का कहें विभाव धर्म।
है बिना धर्म के द्रव्य नहीं मतिमान मनुज यह लख मर्म ॥३७॥
खा पीकर के हम मस्त रहें, यह जीवन का है सार नहीं।
बस जीव दया के तुल्य जगत् में, अन्य धर्म व्यापार नहीं ॥३८॥
धर्मी संकट के समय परीक्षा अपनी कठिन समझते हैं।
धर्म हीन पापी नर कष्ट में, प्रभु को गाली देते हैं ॥३९॥
सुख दुख धूप छायावत् हैं, ये आते जाते रहते हैं।
पर धर्मी धर्म में स्थिर रहकर के स्वर्ग मोक्ष पा लेते हैं ॥४०॥
ईमान धर्म खातिर पहिले, वे जान फना कर देते थे।
मगर धर्म के पर खिलाफ, नहीं झूठा हर्फ उठाते थे ॥४१॥
आज जरा सी आफतमें बस धर्म तर्क कर देते हैं।
उस ईर्ष्या का कहे कौन खास जो बदनामी सिर लेते हैं ॥४२॥
दया धर्म कमजोरों का हथियार नहीं कहलाता है।
धर्म से एक व्यक्ति देखो साम्राज्य जीत कर लाता है ॥४३॥
मननशील नर हो अवश्य, जो लाभ हानि सुख दुख जाने।
अन्यायी सबल से नहीं डरे, न्यायी धर्मी का डर माने ॥ ४४ ॥

कामदेव जी श्रावक की, दृढ़ताई शिक्षा देती है ।
यों धर्म ध्यान मे अचल रहो, नरतन की सुधरे खेती है ॥४५॥
सद्‌धर्म की सत्य प्रतिज्ञा पर, जब आत्मा दृढ़ हो जाती है ।
तब काम क्रोध मद लोभ मे, आनहि धर्म की सौगँध खाती है ॥४६॥
नन्दन मणिहारा धर्म तजा, वह दुर्दर योनि पाई है ।
फिर शरण गही जिन धर्म की, आ जिस से सुर की गति पाई है ।४७।
धर्म राज नीति व्यवहारादिक, सब सत् के द्वारा चलते हैं ।
इन चारों का यदि लोप होय तो, कार्य भयकर बनते हैं ॥ ४८ ॥
अज्ञान मृत्यु धार्मिक सशय, पापोत्पादक का करे कथन ।
राग द्वेप धर्मी का निरादर, अनाचार से करे भ्रमन ॥ ४९ ॥
आधार जगत् का सत् ही है, या सत् से ही जग ठहरा है ।
सत्य ही भौतिक वस्तु है, बिन सत् के सभी बखेड़ा है ॥ ५० ॥
समय का दुरपयोग न हो, नहीं तो भारी पछताओगे ।
मुसीबत के वक्त धैर्य रक्खो, तो अवश गिनत मे आवोगे ॥५१॥
एक धर्म नर्क का दाता है, सिन्धु एक धर्म तिराता है ।
बहुत फर्क है धर्म धर्म में, नर जिज्ञासु पाता है ॥ ५२ ॥
यौवन वय और धर्म दोनों, आपस मे मेल न खाते हैं ।
धार्मिक सस्कार बचपन से, तो यौवन में धर्म कमाते हैं ॥५३॥
त्याग धर्म है सर्व मान्य, बिन मेहनत धन बनता है ।
बिना त्याग के धर्म नही, यह कहना ज्ञानी जन का है ॥५४॥
परोपकार की शक्ति पाकर, उसे वह छिपाता है ।
करता मजाक जो दुखियो की, वो धर्म अयोग्य कहाता है ॥५५॥
प्रेम ही जग में परमेश्वर, सत्कृत्त को धर्म बताया है ।
जन की सेवा ही जन का कर्त्तव्य, श्रेष्ट जितलाया है ॥५६॥
है द्रव्य-भाव निजकर स्वरूप, व्यवहारादिक अनुबध जानो ।

निश्चय यों अष्ट प्रकार दया, व्यवहार धर्म को पहिचानों ॥४७॥
करके धर्म पश्चाताप करे, वह करणी निष्फल जावेगा।
कर धर्म आराधन प्रसन्न होय, वह इच्छित सुख को पावेगा ॥४८॥
प्रिय धर्मी पर हो दृढ़ धर्मी, उसका तिरना अनिवारी है।
केवल प्रियधर्मी होय जीव, उसका तिरना दुष्वारी है ॥४९॥

॥ मोक्ष अपुनरावृत्ति है ॥

मुक्त होने पर वही आत्मा, पुनर्जन्म नहीं पाता है।
जीव अनन्तानन्त जगत् में, गणना में नहीं आता है ॥१॥
अनन्त का अनन्त गुणा करदे, तो भी अनन्त ही आता है।
अनन्त ओड़ने पर अनन्त, फिर भी अनन्त रह जाता है ॥२॥
कोटि वर्ष तक चल व्योम में, पार कभी नहीं पाता है।
यों समय समय हो जीव मुक्त, जीवों का अन्त न आता है ॥३॥
लाखों वर्षों तक ईश्वर के गुण, गाय अन्त न आता है।
ज्यों वृक्ष बीज अरु पिता पुत्र, प्रारंभ न जाना जाता है ॥४॥
वन्ध्या के पति होने पर भी, गर्भिणी कभी नहीं होती है।
वस्तुस्व का छिलका हटने पर, बोने की युक्ति खोती है ॥५॥
जब चावल तुष से जुदा हुआ, तब उत्पन्नता को पाता है।
यों मुक्त दशा में वही आत्मा, स्वस्वभाव हो जाता है ॥६॥
छिलके से वस्तुस्व मुक्त होय, छिलके का फिर नहीं पाता है।
यों कर्मों से मुक्त आत्मा, बन्धन में फिर नहीं आता है ॥७॥

॥ आत्मा ॥

सत्य आत्मा एक ही है, और ज्ञान आत्मा एक ही है।

आनन्द आत्मा एक ही है, सच्चिदानन्द भी एक ही है ॥ १ ॥
आत्मा यह शान्ति के खातिर, दिन रात भटकती फिरती है।
पर विषय कषायादिक अशान्ति के गहरे गर्त में गिरती है ॥ २ ॥
जब तक यह आत्मा आत्मा भाव से, हेय प्रवृत्ति करती है।
मिथ्या सब शास्त्र समझती है, तब तक भव-सिन्धु न तरती है॥३॥
आत्मा जब आत्म-भाव वरते, तब पाती परम समाधी है।
रोग, शोक और मोहादिक का, आत्मा ही अपराधी है ॥ ४ ॥
यदि आत्मा को पहिचानना है, पर वस्तु से राग हटाओ तुम।
यदि पुण्य-धाम को जाना है, जग-जन से मोह घटाओ तुम ॥ ५ ॥
जैसे जल के बाहर मछली, पानी के हेतु तडफती है।
वैसे दुख द्वन्द्व मलिन आत्मा, आनन्द ढूंढती फिरती है ॥ ६ ॥
आत्मा एकाकी आती है, एकाकी आत्मा जाती है।
आत्मा कृत-कर्म स्वयं भोगे, इसमें न किसी की पाती है ॥ ७ ॥
आत्मा वास्तव आनन्द रूप, कर्मों से विकृत दिखाती है।
जैसे शीतल जल की प्रकृति को, अग्नि उष्ण बनाती है ॥ ८ ॥
आत्म-बोध है दुर्लभ जग में सुलभ देह का पाना है।
अत्यन्त सुदुर्लभ शुद्ध धर्म, और क्रिया काण्ड अपनाना है ॥ ९ ॥
जग सुख ही मोहानन्द बने, जगदु ख ईश्वरानन्द बनै।
आत्मानन्दी को सुख दु ख सम, ज्ञानानन्दी सब पाप हनै ॥ १० ॥
यह आत्मा ही कर्त्ता भोक्ता, स्वर्ग मोक्ष का साधन है।
आत्मा को शुद्ध बनाना ही, सब धन में यह ऊँचा धन है ॥ ११ ॥
है मोक्ष नहीं दुर्लभ जग में, दुष्प्राप्य मोक्ष का दाता है।
जो आत्मा में ही रमण करे, वह पुरुष मोक्ष में जाता है ॥ १२ ॥
इस देह को तजकर अन्य देह, पाने को जीव मागता है।

प्रतिपक्ष का एक करोड़ भाग भी समय न इसको लगाता है ॥१३॥
है यही मोक्ष का दरवाजा विषयों में व्यर्थ गँवाता है ।
यह आत्मा ही कर्ता भोक्ता द्रष्टा भर्ता कहलाता है ॥ १४ ॥
पंचभूत समुपासक जो वह नास्तिक है कहलाता है ।
इन षट् बातों का मनन करे वह महापुरुष कहलाता है ॥ १५ ॥
पुद्गल-प्रेमी पुद्गल चाहे, भव प्रेमी कर्म बढ़ाता है ।
आत्मानन्दी तो कर्म मुक्त हो सिद्ध गती में जाता है ॥ १६ ॥
देहाभिमान तज कर आत्मा यह परमात्मा पद पायेगी ।
सी लाख ज्ञान यदि ग्रन्थों की पर सार सभी अपनायेगी ॥१७॥
यह आत्मा जन धन विषयों हित अविराम परिश्रम करती है ।
निष्काम परिश्रम करने से भव–सागर पार उतरती है ॥१८॥
है नित्य आत्मा कर्मों की कर्ता है भोक्ता और मुक्ति ।
शुद्ध धर्म अरु मोक्ष मार्ग के पाने की यह अचल युक्ति ॥१९॥
तेरा मेरा मिथ्याभिमान जब निकल हृदय से जाता है ।
नित्यानन्द अनुभव जीवात्मा उसी समय कर पाता है ॥२०॥
दैहिक वाचिक मानसिक आत्मिक, यह चारों ही शक्ती है ।
हैं एक से एक श्रेष्ठ लेकिन आत्मिक शक्ति ही शक्ती है ॥२१॥
आत्मा को पवित्र करने का निम्नोक्त उपाय श्रेष्ठतर है ।
सह लेना कटु वाक्य सबकी सब कर्मों का छूमन्तर है ॥२२॥

॥ दोहा ॥

मायायुत जीवात्मा, नाना योनी पाय ।
बिन माया यह आत्मा, परमात्मा कहलाय ॥२३॥
पाँचों तत्त्वों को जो लखे, बहिरात्मा कहलाय ।

अन्तरात्मा मोह तजे तो, परमात्मा बन जाय ॥२४॥

फँस अविद्या रूपी रज्जू मे, पशुवत यह जीव लखाता है।
और मुक्त अविद्या से होकर निज रूप मे स्थित हो जाता है ॥२५॥
प्राणायामादिक क्रिया मे भी मन, श्रेष्ट नहीं बन पाता है।
जो आत्म रूप का मनन करे, वह जीवन मुक्त कहाता है ॥२६॥
इस लाभ से बढ़ कर लाभ नहीं, इस ज्ञान से बढ़ ज्ञान कर नहीं।
जो आत्मा आत्म रूप लख ले, फिर उसके और समान नहीं ॥२७॥
जो स्वयं सभी को देख रहा, जिसे अन्य नहीं लख पाता है।
वह आत्मा स्वयं प्रकाशित है, और मोक्ष मार्ग का ज्ञाता है ॥२८॥
उजले कपड़े पर जिस प्रकार, प्रत्येक रंग चढ जाता है।
शुद्धात्म जीव सत् शिक्षा को, त्यों ही निज लक्ष्य बनाता है ॥२९॥
मन इन्द्रियों को भोगो से हटा, माया का फन्द छुडाओ तुम।
आत्मिक सुख का अनुभव करके, परमात्म रूप बन जाओ तुम ।३०।
आत्मा नदी संयम तीरथ में, जो गोते खूब लगाओ तुम।
सत्योदक में तैरो, अपूर्व अनुभव सुख लाभ उठाओ तुम ॥ ३१ ॥
मन वचन कर्म की हट्टी है, आत्मा इसका अधिकारी है।
टोटा और नफा स्वयं भोगे, इसमें नहीं साझेदारी है ॥ ३२ ॥
तन मन्दिर को है खबर नहीं, अन्दर किसका उजियाला है।
पर आत्मा उसको जान रहा, वह खुद उसका रखवाला है ॥३३॥
जब हाकिम से मिलने के लिए, बढ़िया पोशाक सजाते हो।
तो मालिक से मिलने के लिये, क्यों रूह न पाक बनाते हो ॥३४॥
आत्मा यह शुद्ध जवाहिर की, फौरन पहचान बताती है।
पर शोक तो केवल इसीका का है, खुद को वह नहीं लख पाती है।३५।
तन बग्घी इन्द्रिय चक्र युगम, मन कोचवान् बलधारी है।

यह आत्माराम संसारी करके, घूमता फिरत भवझारी है ॥ ३६ ॥
शास्त्र साता से बद्ध करके, आत्म-साता सुख पाता है ।
क्योंकि आत्मा अनुभव वाला ही, सिद्ध गति को पाता है ॥ ३७ ॥
जैसे बिन बादल के बिजली, नभ में नहिं चमक दिखाती है ।
त्यों बिन विपत्तियां सहे, आत्मा प्रकाश-गुण नहिं पाती है ॥ ३८ ॥
सब आत्मा प्रत्यक्ष लक्ष, अस्पष्ट अनुमान से जानता है ।
सुख दुःखादिक से आत्मा का, अस्तित्व सदा यह मानता है ॥ ३९ ॥
यदि देहादिक हैं योग्य वस्तु, तो भोक्ता भी अवश्य जानो ।
सकाम है तो इसका कर्त्ता, निज आत्मा ही को पहचानो ॥ ४० ॥
वास्तव में आत्मा है अरूप, कर्मों से रूप दिखाता है ।
है कर्म ही कर्मों का कर्त्ता, संयोग से जीव कहाता है ॥ ४१ ॥
ज्यों व्योम नित्य निर्लेप त्यों ही, आत्म भी द्रव्य नित्य मानो ।
नभ तो जड़ है चैतन्य आत्मा, फक्त फर्क इतना मानो ॥ ४२ ॥
पट-नाश पे तन का नाश नहीं, तन नाश पे आप का नाश नहीं ।
पापादि नाश होने पर भी, आत्म का होय विनाश नहीं ॥ ४३ ॥
अज्ञान मृत्यु दुख जहां तक ही, आतम संज्ञा कहलाती है ।
तीनों ही नष्ट जब हो जावें, सच्चिदानन्द पद पाती है ॥ ४४ ॥
आत्मा का विनाश जो समझे, वो मृत्यु का भय खाता है ।
जो अविनाशी इसको समझे, वो मृत्यु विजयी कहाता है ॥४५॥
पौद्गलिक संयोग रहे जब तक, ये स्वार्थ या कि विनाशक है ।
गर समझे तो सब जान सके, तू अविनाशी न विनाशक है ॥४६॥

॥ आत्मोद्गार ॥

अजर अमर शाश्वत् अखण्ड, स्वपर्याय परिणामिक हूँ ।
शुद्ध चैतन्य रूप मात्र, निर्विकल्प दृष्टात्मक हूँ ॥ १ ॥

मै एक असङ्ग प्रभावयुक्त, असंख्यात देशात्मक हूँ ।
आत्मरूप अवगाहक हूँ, पुद्गल के हित रूपान्तर हूँ ॥२॥
वसन तन इन्द्रिय मन वय तीनों मोह अज्ञान मुक्तामा हू।
घटाकाशवत् वन्ध कर्म का, पर निर्लेप वुद्धात्मा हू ॥३॥
मन वुद्धि श्रुता प्रणाम परे, केवल सोऽहं परमातम हू।
मैं वेद ज्ञान का विपय नही, मैं ब्रह्म ज्ञान गैयातम हू ॥४॥
मैं नित्य अखण्ड अनादि हू, अतुलित वल रूप हमारा है।
इस तन से क्या सम्वन्ध मेरा, यह नाशवान् नि सारा है ॥५॥
मैं रूप रहित हू व्यापक हू, कर्मों ने रूप वनाया है।
अगुल के भाग असंख्य वने, इतना सा वदन रचाया है ॥६॥

* आत्म-वोध *

शुद्ध नय से आतम विज्ञान, एक द्रव्य नाम कई पाता है।
सर्वांग लखी निज ध्यान करे, वह सिद्ध-स्वरूप हो जाता है ॥१॥
प्रभु सो जीव वही ईश्वर, वपु को प्रभु तुम मत जानो।
जो वपु की स्तुति करता है वह प्रभु की स्तुति मत जानो ॥२॥
आत्मरूप दर्पन में अपना, जव समस्त गुण दर्शाता है ।
तव तो प्रभु स्वय आप हैं, राग द्वेप मोह सव भगता है ॥३॥
शोधक मिट्टी से कनक ग्रहे, दधि मथ कोई मक्खन लेते हैं।
ज्यों हस दुग्ध का पान करे, यो आतम गुण गह लेते हैं ॥४॥
शम दम उपशम अहिंसा सत्त दत्त, ब्रह्मचर्य अममत्व गुणधार।
एकाग्रता मन की करलेहो, आत्मा उसके साक्षात्कार ॥५॥
अनुभव रूप चिंतामणि रत्न का, हृदय प्रकाश हो जाता है।
वह आवागमन तज पवित्र आत्मा, मोक्ष-धाम को पाता है ॥६॥

वर्षों तक कनक रहे जल में, पर काई कभी नहीं आती है।
यों शुद्ध आत्मा रहे विश्व में, नहीं मलिनता छाती है ॥७॥
मादक पदार्थ के बिन सेवे, नशा कभी नहीं आता है।
बिन क्रिया के कर्म न होता है, यह समझ यहीं आता है ॥८॥
देह से भिन्न स्वपर प्रकाशक, परम ज्योति शाश्वत सुखकन्द।
आत्मा अन्तर्मुख विलीन हो जब पाता है अनन्त आनन्द ॥९॥
ईश्वर के तुल्य जीव में भी, गुण-गण सब ही हम पाते हैं।
अज्ञान-मोह पर्दा हटता तो, जीव ईश बन जाते हैं ॥१०॥
तुम शास्त्र चित्त भीतर उतरो, और आत्म ज्ञान का यत्न करो।
उस वैभवशाली शक्ति का अनुभव, होगा जब तुम मथन करो ॥११॥

जब आत्म शक्ति का ध्यान करे तब नहिं संसार ध्यान देता।
यों आत्मा का जब ज्ञान होय तब काम क्रोध सब तज देता ॥१२॥
अपने जानने की विद्या ही, आत्म-ज्ञान कहलाता है।
सर्वोत्तम उन्नति के निमित्त, साधन शुभ तत्त्व कहाता है ॥१३॥
जिस तत्त्व-ज्ञान से सब वस्तु का, ज्ञान स्वयं हो जाता है।
वह आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान, आत्मोपासक ही पाता है ॥१४॥
तुम अपनी शक्ति से प्रकृति में भी, उलट फेर कर सकते हो।
तन मन के तो तुम मालिक हो, क्यों दूजों का मुंह तकते हो ॥१५॥
जब आत्मा आत्म-विचार करे तब चिन्तादिक मिट जाते हैं।
ज्यों रसायनों के सेवन से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥१६॥
शास्त्र-ज्ञान और आत्म-मनन जीवन का ध्येय बताया है।
जिसने इनका अभ्यास किया उसने जीवन-सुख पाया है ॥१७॥
तू शुद्ध है बुद्ध है निरंजन है संसार माया परिवर्जित है।
संसार-स्वप्न तज मोह नींद कर मनन तुझे यही वांछित है ॥१८॥

दृढ़ सकल्प करो कि मैं ही, खुद स्वदेह का शासक हूँ ।
यह शरीर मेरा सेवक है, मैं ब्रह्मज्ञान प्रकाशक हूँ ॥ १६ ॥
अविनाशी आत्मतत्त्व को भी, जाने विन जीव मरता है ।
उसका जीवन निष्फल समझो, वह व्यर्थ मनुज तन धरता है ।२०।
हस, चेतन, जीव, आत्मा, ब्रह्म ईश्वर और परमेश्वर है ।
सिद्ध, स्वयभू , अव्यय, रूह, और सोल विष्णु ज्ञानेश्वर है ॥२१॥
स्मरण करता जिन भावों को. जब काया को तज जाता है ।
वह उसी गति जाति के अन्दर, जन्म जाय पा जाता है ॥ २२ ॥
हो नयन पलक शामिल इतना भी, विलम्ब नहीं कर पाता है ।
क्रय मान और तेजस् शरीर, आत्मा को खींच ले जाता है ॥२३॥
आहार शरीर इन्द्रिय श्वासा,मन वच कर्म पर्य्याय को पाता है ।
वह तेल वडे के न्याय आत्मा, निज आकार वनाता है ॥ २४ ॥
पहले कारीगर आता है, पीछे वह नींव लगाता है ।
इसी तरह से गर्भाशय मे, तन का खेल रचाता है ॥ २५ ॥
यह जीवन दु ख सुखमय, स्वतन्त्र औ पराधीन जो होता है ।
यह सव है आत्मा के अधीन, क्यों इसको तू नहिं जोता है ॥२६॥
अन्तरात्मा मित्र ब्रह्म को, ब्रह्मवेत्ता ही मानता है ।
काम कर्म फल और अविद्या से, स्वतन्त्र नहीं पहिचानता है ।२७।
शुद्ध स्वरूप मेरा क्या है, और कौन दु खों का दाता है ।
सर्वोच्च शांति का मार्ग है क्या, जिज्ञासु जिसको पाता है ॥२८॥
रे चित्त ! जरा चचलता तज, क्यों विपय-वासना में डोले ।
क्यों नहीं आत्मानन्द का सुख, निज हृदय तराजू मे तोले ॥२६॥
जैसे नर जल–प्रतिविम्व देख, सच्चा हर्गिज नहीं जानता है ।
त्यों ब्रह्मवेत्ता कर्म जनित वपु को, मिथ्या पहिचानता है ॥३०॥

॥ पुनर्जन्म ॥

नवजात शिशु अन्धा रोगी, जब तड़फ तड़फ मरजाते हैं।
पुनर्जन्म जो नहीं मानो तो यह कौन दुःख-फल पाते हैं ॥१॥
गौ के विपिन में बच्चा होता है, वह स्वयं खड़ा हो जाता है।
फिर स्वयं दूध पीने लगता, यह कौन उसे सिखलाता है ॥२॥
माता शिशु के मुंह में स्तन दे, नहीं पीने की क्रिया बताती है।
पूर्व जन्म के अभ्यास से वह, अनायास आ जाती है ॥३॥
तू स्थिर सोचो किस कारन से, कल क्या होगा क्यों नहिं जाने।
जिस कारण वांछित फल न मिले घटना का कारण पहिचाने ॥

❁ कर्त्तव्य-फल ❁

तिरछे लोक में पशु मनुष्य, और अधोलोक के बीच नरक।
ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग-स्थान है, सर्वोपरि सिद्ध नहीं फरक ॥१॥
महा आरम्भी महापरिग्रही पञ्चेन्द्रिय के प्राण सताता है।
करे मांस का आहार जीव, वह नरक गति को पाता है ॥२॥
कपट करे कपट में कपट और वचन में छुरा मिलाता है।
मात्सर्य रक्खे इस कारण से वह गति पशु की पाता है ॥३॥
प्रकृति का भद्रीक विनीत जीवों पर करुणा लाता है।
अमत्सर भावी जीव वही, जो मनुष्य गति में आता है ॥४॥
साधु श्रावक का धर्म करे और अज्ञान तप कमाता है।
बिन इच्छा के कष्ट सहे, वह जीव स्वर्ग में जाता है ॥५॥
पूर्वजन्म का किया मिला, अब करो वही फिर पाओगे।
जो गफलत में समय गमा तो मित्र! बहुत २ पछताओगे ॥६॥
क्रोध, मान, माया, लालच ये चार मोक्ष के बाधक हैं।

क्षमा, सरलता, संतोष, नम्रता, ये चार मोक्ष के साधक हैं ॥७॥
दान शील तप भाव चार, यह धर्म-अंग कहलाते है।
स्वहित परहित चाहने वाले, देते और दिलाते हैं ॥८॥
आचार, उचार विचार नीच, यह उभय लोक दुख पाता है।
जिसके तीनो ही उत्तम हो, वह श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है ॥६॥
ससारी-भोग तजे जिसको, वह नर हारा कहलाता है।
जो भोगों को ठुकराता है, बहादुर के पद को पाता है ॥१०॥
जैसे जीव-रूप-पट पर, कर्म मैल चढ़ जाता हे।
संयम साबुन तप पानी से, उज्ज्वलता को पाता है ॥११॥
स्वास्थ्य चित्त अरु नार-पुत्र, सुमित्र राज-यश पाता है।
सातवा सुख आत्मोन्नति करके, मोक्ष बीच मे जाता है ॥१२॥
जो मरने से पहले मरता, वही निजात को पाता है।
उसी पुरुष का जगतीतल में, नाम अमर हो जाता है ॥१२॥
कर्मों के खातिर क्षमा खड्ग, आचार इसी का वख्तर है।
समभाव शुद्ध रखते दुख में, उस नर की मुक्ति अक्सर है ॥१३॥

॥ पुण्य ॥

अन्न वस्त्र आसन जल थल, मन वचन काय तीनो शुभ जान।
नमस्कार यह नव प्रकार का, पुण्य बताया श्री वर्द्धमान ॥१॥
यत्र मंत्र तारा शशिग्रह, सुर भूमि राज वल यश मानों।
धन कुटुम्ब आदि सब जब तक, तबतक अपने पुण्य जानों ॥२॥
पुण्य है उधार देना, अरु पाप कर्ज का पाना है।
यह समय खरीदी का मित्रों ! सद्धर्म ही लाभ कमाना है ॥३॥
पुण्य अनुबन्धी पुण्यवान्, हो सुखी पुन वह धर्म करे।

पुण्य अनुबन्धी पापवान्, हो निर्धनता भी धर्म करे ॥
पाप अनुबन्धी पुण्यवान्, धनवान् बने पर पाप करे।
पाप अनुबन्धी पापवान्, हो निर्धन तो भी पाप करे ॥

❀ पाप ❀

प्राणातिपात और मृषावाद, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह जानों।
परिग्रह, क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, राग, द्वेष जाना
कलह कलंक चुगली निन्दा है रति अरति छल लेना।
और कपट झूठ मिथ्या दर्शन यह पाप अठारह तज देना ॥४॥
मानाज्ञान से विष-सेवन, तत्काल उसे फल देता है।
बस यों ही सब पापों का विपाक, जो करता है वह लेता है ॥[illegible]॥
जिस प्रकार रेशम का कीड़ा, जाल वपु पर मढ़ता है।
उसी तरह मिथ्यात्वी जीव, पापों का बन्धन करता है ॥[illegible]॥
मस्तिष्क में अंकित होते हैं, अनुचित और उचित विचार सभी।
परिणाम रूप उसके फलते हैं, पूर्व जन्म संस्कार सभी ॥[illegible]॥
ज्ञानी जन पाप से डरते हैं, अज्ञानी जन इर्षाते हैं।
निधत्त और निकाचित दोनों, पाप बन्द हो जाते हैं ॥[illegible]॥
ज्ञान सार सब विश्व में है, और ज्ञानी पाप हटाते हैं।
ज्ञानी बनकर अनन्त आत्मा मोक्ष में जोत समाते हैं ॥[illegible]॥
चोरी की तस्कर तुम्बों की, पानी के बीच छिपाता है।
एक को हाथ तो एक तबसे यों अन्त पाप प्रकटाता है ॥[illegible]॥

॥ मांस ॥

हिंसा का कारण रौद्र ध्यान अशुद्ध मलीन दिखाता है।

यह मांस रक्त दुर्गंधि-युक्त, रज विरज में उत्पता है ॥ १ ॥
यह मांस राक्षसी भोजन है, आतम द्रोही नर चाहते हैं।
सत्पुरुष मांस को महानिन्द्य, अभक्ष पदार्थ बताते हैं ॥ २ ॥
जहरी, रोगी, क्रोधी पशु का, जो मांस अगर कोई खाता है।
जहरी रोगी क्रोधी खुद ही, बन जाता फिर पछताता है ॥ ३ ॥
मांस में जीव असंख्य पैदा, एक क्षण भर में हो जाते हैं।
दाता है स्वर्ग का दया धर्म, आमिष-भोजी बिसराते हैं ॥ ४ ॥
आमिष के स्वादी बन करके क्यों दीन पशु को सताते हो।
इसका बदला होगा देना, क्यों नहीं लक्ष में लाते हो ॥ ५ ॥
मद्य मांस को मन्दिर में, नहिं कभी पुजारी लाने दे।
तो इसके भक्षक को परमेश्वर, कब बैकुण्ठ में जाने दे ॥ ६ ॥

॥ तत्व स्वरूप ॥

चेतना लक्षण युक्त जीव, अनादि निधन स्थित यही मानो।
ज्ञाता दृष्टा कर्त्ता भोक्ता, देह प्रमाण है पहिचानो ॥ १ ॥
अचेतन द्रव्य रूपा रूपी, अरु जीव सहे प्रयोग-सा है।
जीव रहित वह मिश्या पुद्गल, वह अग्राही विशेषा है ॥ २ ॥
अति स्थूल टूटे पे मिले नहीं, स्थूल टूटे पे मिल जाता है।
सूक्ष्म बादर धूप साय, बादर सूक्ष्म शब्द कहाता है ॥ ३ ॥
सूक्ष्म कर्म वर्गणादिक, जो इन्द्रियों के अग्राही हैं।
अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, जो नित्य जगत् के मांहीं हैं ॥ ४ ॥
पुण्य पवित्र पुद्गल सुखदाई, मुक्ति का साधक बाधक है।
हेय ज्ञेय उपादेय के अजान, विराधक एकान्त उत्थापक है ॥ ५ ॥
पाप तत्व अहित दुखकारी, अशुभ योग मिलाता है।

एकान्त त्यागने योग्य समझ के, क्यों नहीं ध्यान में लाता है ॥ ६॥
फूटी नौकावत् आश्रय अधम, पुण्य पाप जमा कर लेता है।
भव-सिन्धु बीच डुबाता है तू क्यों न हृदय में लेता है ॥ ७॥
संवर तत्व अखण्ड नौकावत्, पापों की रोक लगाता है।
प्यारा मित्र यही जीवों के आवागमन मिटाता है ॥ ८॥
साबुन पानी के जरिये रजक क्यों वस्त्र का मैल निकाला है।
यसे तप निर्जरा करने से कुल पाप जीव का जाता है ॥ ९॥
घटाकारा था पुष्प गन्ध पय पानीवत बन्ध जानो।
वैसे कर्म जीव का बन्धन अनादि प्रवाह से मानो ॥ १०॥
कर्मों से हो मुक्त आत्मा सिद्ध स्वयं बन जाता है।
सच्चिदानन्द निर्लेप ब्रह्म वह जगत् पूज्य कहलाता है ॥ ११॥
चेतन जड़ का मेल जो है, जग में बन्ध तत्व जानो।
ऊर्ध्वमुखी पुण्य अधोमुखी पाप द्वार आश्रव मानो ॥ १२॥
आश्रव की रोक करे संवर निर्जरा पाप का नाश करे।
होकर फिर निर्लेप आत्मा वही मोक्ष में वास करे ॥ १३॥
उस तत्व को पाने के पहले सयोग अगर बन जावेगा।
तो अवश्य ही वह तत्व तुझे, फिर अनायास मिल जावेगा ॥१४॥
जो अनुचित कार्य करें उनकी, सब दुनिया हँसी उड़ाती है।
और उनकी इज्जत हुमत भी सब मिट्टी में मिल जाती है ॥ १५॥
जिसने दुःख कभी नहीं भोगा वह मर्म न दुःख का जानता है।
दुःख भोगी ही दुःख को जाने सुख भोगी सुख पहिचानता है ॥१६॥

॥ पद् पद मनन ॥

यथार्थ रूप जिसने पाया उस ज्ञानी ने समझाया है।

सम्यक्दर्शन के निवास का यह, पट् स्थान वतलाया है ॥ १ ॥
जैसे घट पट आदिक पदार्थ, प्रत्यक्ष हमे दिखलाते हैं।
त्यों आत्मा स्वपर प्रकाशक है, इसका प्रमाण भी पाते हैं ॥ २ ॥
घट पटादि कृत्रिम पदार्थ तो, बनता और विनसता है।
आत्मा है स्वाभाविक पदार्थ, नहीं बनता नहीं विनसता है ॥ ३ ॥
सक्रिय ये सर्व पदारथ हैं, यों आत्मा भी सक्रिय मानो।
व्यवहार-दशा में आत्मा को, कर्मों का कर्ता पहिचानों ॥ ४ ॥
शीतोष्ण स्पर्श और विपयादिक सेवन का दुष्फल होता है।
क्रोधादिक उपशम की आत्मा, सब प्रकार से भोगता है ॥ ५ ॥
तीव्र कपाय से कर्म बन्ध, और मन्द से क्षय हो जाता है।
शुद्धात्मा होकर के विमुक्त, सच्चिदानन्द कहलाता है ॥ ६ ॥
सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र, ये कर्म बन्ध के रोधक हैं।
यही मोक्ष का है उपाय, जो आराधे वे शोधक हैं ॥ ७ ॥

❀ सिद्धान्त ❀

घर्म अधर्म आकाश जीव, परमाणु शब्द गन्ध वायु काय।
ये जिन हो दु खान्त करे न करे, बिन ज्ञानी के कोउ जाने नाय।१।
सिद्धान्त कहो वेदान्त कहो, तात्पर्य तत्वसार कहदो ।
अन्तिम प्रणाम वास्तविक यथार्थ, चाहे उन्हें आगम कहदो ।।२।।
सिद्धान्त गणित के मानिन्द है, इसमे अन्तर नहिं आता है।
चाहे जिस भाषा में लिख दो, यह गलत न होने पाता है ।।३।।
वह सिद्धान्त ही सच्चा है जो, जीवन उच्च बनाता है।
वह जीवन ही सच्चा जीवन, जो पुण्य-धाम पहुंचाता है ।।४।।
सिद्धान्त स्वय बतलाते हैं, तुम प्रकृति नहीं आत्मा हो ।

नहीं केवल मिट्टी के पुतले तुम, ज्ञानी और महात्मा हो ॥४॥
सिद्धान्तिक बातों से मन की शक्ति विकसित हो जाती है।
आत्म ज्ञान की शुद्धि होय, कुत्सित बुद्धि विनशाती है ॥६॥
दीनकाल में भुम सिद्धान्त वास्तविक नहीं पलटाता है।
देश काल से सूत्रों में तो, फेर फार हो जाता है ॥७॥
जीव का जड़ अजीव का चेतन, एक साथ नहिं सुगम वचन।
कृत कर्मों को नहीं भोगना अणु-छेदन न अलोक गमन ॥८॥
पुष्करावर्त घृत स्नेह क्षार, अमृत वर्षा है पंच प्रकार।
जिससे आत्यान्तिक क्षुधा तृषा, प्रकटी उत्सर्पिणी है दस बार ॥९॥
भद्रावान् सत्य मेधावी, बहुराजी अरु शक्तिवान्।
अल्प उपाधिवान् विचरे, केवल कहलाया वर्द्धमान् ॥ १० ॥
सिद्धान्त अमर बनने का हमें शुभ मुक्ति साफ दिखलाता है।
मरना नहीं बल्कि मृत्यु का ही, मारना हमें सिखलाता है ॥ ११ ॥
वास्तविक वस्तु में भेद नहीं बस दृष्टि-भेद दिखलाता है।
यह आशय समझ पवित्र बनो प्रशस्त यह सुखदाता है ॥ १२ ॥

❀ स्याद्वाद ❀

मीमांसा कर्म-काण्ड वैशापक न्याय प्रमाण बताता है।
पुरुषार्थ योग और सांख्य प्रकृति वेदान्त ब्रह्म उतलाता है ॥१॥
ज्यों कनिष्ठिका से अनामिका तो बड़ी नजर में आती है।
मध्यमा से अनामिका देखो तो छोटी ही दिखलाती है ॥ २ ॥
दशरथ राजा के पुत्र राम लव-कुश के पिता कहाते हैं।
यों पिता पुत्र के उभय धर्म श्रीरामचन्द्र में पाते हैं ॥३॥
सरिता के दोनों तट ऊपर, दो पुरुष खड़े हो जाते हैं।

अपनी अपनी स्वापेक्षा से, वे आर पार कहलाते हैं ॥ ४ ॥
अक्षर 'ही' और 'भी' को देखो, यह स्याद्वाद बतलाते हैं।
पैसे ही हैं, पैसे भी हैं, इस तरह हमें समझाते हैं ॥ ५ ॥
द्रव्यों में निज गुण आता है, पर द्रव्य के गुण नहीं पाता है।
स्याद्वाद का भेद यही, मुश्किल से समझ में आता है ॥ ६ ॥

॥ श्रद्धा ॥

जब आत्मा पर विश्वास नहीं, परमात्मा पर कब लाओगे।
यों ही सम्भ्रान्त बने रहकर, भवसिन्धु में गोते खाओगे ॥ १ ॥
अज्ञान क्रिया करने वाला, जितना उल्टे रास्ते पर है।
वाचाल शुष्क ज्ञानी भी तो, उतना उल्टे रस्ते पर है ॥ २ ॥
वास्तविक रूप समझे बिन जो, कुछ कठिन क्रिया की जाती है।
अज्ञान कष्ट वह क्रिया कभी, संसार घटा नहीं पाती ॥ ३ ॥
समदृष्टी को सम्यक्त्व, विषम दृष्टी को विषम लखाता है।
जैसा चश्मा हो आखों पर वैसा ही रग दिखाता है ॥ ४ ॥
दुष्तर्क मगज में उठने से, कुछ कार्य न होने पाता है।
श्रद्धा जिसके है हृदय बीच, बस वही मोक्ष में जाता है ॥ ५ ॥
जो भवी और पर्याप्त जीव, मन सहित सज्ञी पचेन्द्रिय हो।
काल लब्धि सामग्री युत, उस जीव को समकित प्राप्ति प्रिय हो ॥ ६ ॥
निर्ग्रन्थों के प्रवचनों पर, विश्वास पूर्ण हो जायेगा।
भक्ति अहिंसा युत तीनों से, मोक्ष तुझे मिल जायेगा ॥ ७ ॥
चरित्र ज्ञान के कारण ही, जो जीव प्रसिद्धि पाते हैं।
तोभी सम्यगदर्शन के बिन, नहीं कभी मोक्ष मे जाते हैं ॥ ८ ॥
हीरा कोयला दूध खून में, जितना अन्तर पाता है।

नहीं केवल मिट्टी के पुतले तुम, ज्ञानी और महात्मा हो ॥
सिद्धान्तिक बातों से मन की शक्ति विकसित हो जाती है।
आत्म ज्ञान की शुद्धि होय, कुत्सित बुद्धि विनशाती है ॥
दीनकाल में ध्रुव सिद्धान्त वास्तविक नहीं पलटाता है।
देश काल से सूत्रों में तो, फेर फार हो जाता है ॥
जीव का जड़ अजीव का चेतन एक साथ नहिं युगम बचन।
क्षय कर्मों का नहीं मागना अणु—छेदन न अलोक गमन ॥
पुष्करावर्त घृत स्नेह क्षार, अमृत वर्षा है पच प्रकार।
जिससे धाम्यादिक उगता वृक्ष, मण्डी उत्सर्पिणी है दस बार।
भद्रावाम् सत्य मेधावी, बहुशाखी अरु शक्तिमाम् ।
अल्प कषायीवाम् विचरे, केवल ववसायर सर्वमाम् ॥ १
सिद्धान्त अमर बनने का हमें शुभ युक्ति साफ दिखलाता है।
मरना नहीं बल्कि मृत्यु को ही, मारना हमें सिखलाता है ॥ १
वास्तविक तत्त्व में भेद नहीं बस दृष्टि-भेद दिखलाता है।
यह आशय समझ पवित्र बनो प्रयत्न यह सुखदाता है ॥ १

❀ स्याद्वाद ❀

मीमांसा कर्म-काण्ड वैशेषिक न्याय प्रमाण बताता है।
पुरुषार्थ योग और सांख्य प्रकृति वेदान्त ब्रह्म दिखलाता है
ज्यों कनिष्ठका से अनामिका तो बड़ी नजर में आती है।
मध्यमा से अनामिका देखो तो छोटी हो दिखलाती है ॥
दशरथ राजा के पुत्र राम लव–कुश के पिता कहाते हैं।
यों पिता पुत्र के उभय धर्म श्रीरामचन्द्र में पाते हैं
सरिता के दोनों तट ऊपर दो पुरुष खड़े हो जाते हैं।

अपनी अपनी स्वापेक्षा से, वे आर पार कहलाते है ॥ ४ ॥
अक्षर 'ही' और 'भी' को देखो, यह स्याद्वाद बतलाते हैं।
वैसे ही हैं, वैसे भी हैं, इस तरह हमे समझाते हैं ॥ ५ ॥
द्रव्यो में निज गुण आता है, पर द्रव्य के गुण नहीं पाता है।
स्याद्वाद का भेद यही, मुश्किल से समझ मे आता है ॥ ६ ॥

॥ श्रद्धा ॥

जब आत्मा पर विश्वास नहीं, परमात्मा पर कब लाओगे।
यों ही सम्भ्रान्त बने रहकर, भवसिन्धु में गोते खाओगे ॥ १ ॥
अज्ञान क्रिया करने वाला, जितना उल्टे रास्ते पर है।
वाचाल शुष्क ज्ञानी भी तो, उतना उल्टे रस्ते पर है ॥ २ ॥
वास्तविक रूप समझे बिन जो, कुछ कठिन क्रिया की जाती है।
अज्ञान कष्ट वह क्रिया कभी, ससार घटा नहीं पाती ॥ ३ ॥
समदृष्टी को सम्यक्त्व, विषम दृष्टी को विषम लखाता है।
जैसा चश्मा हो आखों पर वैसा ही रग दिखाता है ॥ ४ ॥
दुष्तर्क मगज में उठने से, कुछ कार्य न होने पाता है।
श्रद्धा जिसके है हृदय बीच, बस वही मोक्ष में जाता है ॥ ५ ॥
जो भवी और पर्याप्त जीव, मन सहित सज्ञी पचेन्द्रिय हो।
काल लब्धि सामग्री युत, उस जीव को समकित प्राप्ति प्रिय हो॥६॥
निर्ग्रन्थों के प्रवचनो पर, विश्वास पूर्ण हो जायेगा।
भक्ति अहिंसा युत तीनों से, मोक्ष तुझे मिल जायेगा ॥ ७ ॥
चरित्र ज्ञान के कारण ही, जो जीव प्रसिद्धि पाते हैं।
तोभी सम्यग्दर्शन के बिन, नहीं कभी मोक्ष मे जाते हैं ॥ ८ ॥
हीरा कोयला दध खन में. जितना अन्तर पाता है।

यों अन्धविश्वास और श्रद्धा में, अन्तर साफ दिखाता है ॥९॥
अग्नि स्पर्श विष-सेवन का कितना भय तू लाता है।
यों ईश्वर पर विश्वास कहां, क्योंकि दुष्कर्म कमाता है ॥१०॥
निज आतम का उद्धार करो अरु अनन्त शक्ति प्रकाश करो।
कर्म रूप दुख से छूटो, प्रभु-वचनों पर विश्वास करो ॥११॥
सर्वोत्तम विश्वास यही अन्धी श्रद्धा को तज दीजे।
सुविवेक कसौटी पर कस के दिल वैसा कीजे ॥१२॥
अहिंसा धर्म के पालने से नश्वर वासना का नाश करे।
यों परमात्म पद प्राप्त करे जिन वचनों पर विश्वास करे ॥१३॥
श्रद्धा प्रतीति अरु रुचि होवे तो अवश्य समझ में आता है।
फिर तो भवसिन्धु से मित्रों! वह नर अनायास तर जाता है॥१४॥

॥ कर्म स्वरूप ॥

एक ग्रास से शोणित मांस त्वचा, नाखुन बाल सब बनते हैं।
त्यों हिंसादिक प्रत्येक पाप से अष्टक कर्म बँधते हैं ॥१॥
अपने ही कर्मों के माफिक सुख दुख सब जग में पाते हैं।
ईश्वर का नहीं दोष इसमें यह ज्ञानी जन बतलाते हैं ॥२॥
ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण मोह, अन्तराय अशुभ घनघाती हैं।
आयुष्य वेदनी नाम गोत्र ये कर्म शुभाशुभ अघाती हैं ॥३॥
ज्ञान में बाधा जो पहुँचाता ज्ञानावरणी बँध जाता है।
जैसे नर के परदा ढक दे, यों अज्ञानी हो जाता है ॥४॥
दर्शनावरणी कर्म बंधे, जो दर्शन में बाधा देता।
नृप से नौकर नहीं मिलने दे, त्यों अन्धापन का फल लेता ॥५॥
राग द्वेष से मोह कर्म हो, जीवों को बेसुध करता है।

जैसे मादक पुरुषों की, बुद्धि का वह हर लेता है ॥ ६ ॥
राजा तो दे दान किसे, पर खजानची अटकाता है।
दे अन्तराय हो अन्तराय, रोजी में लात लगाता है ॥ ७ ॥
जो असिधारा से शहद चखे, हो प्रसन्न फिर पछताता है।
वेदनी शुभाशुभ भवों में, साता असाता पाता है ॥ ८ ॥
ज्यों कैद मे कैदी नर देखो बिन म्याद के नहिं आ सकता है।
जैसा आयुष्य बांधा जीवने, वैसा ही वह पा सकता है ॥ ९ ॥
ज्यो चित्रकार अपने कर से, नाना विध चित्र बनाता है।
त्यों नाम कर्म शरीरादिक, यह जीवो का निर्माता है ॥ १० ॥
मिट्टी से नानाविध वर्तन, ज्यों कुंभकार निर्माण करे।
त्यों ऊंच नीच जाति कुल में, यह गोत्र कर्म स्थान करे ॥ ११ ॥
ज्ञानावरणादिक घाती कर्म, क्षय उपशम वे हो सकते हैं।
वेदनादिक अघाती कर्म, भोगे बिन ये नहीं टलते हैं ॥ १२ ॥
ज्ञानावर्णादिक घाती कर्म, बन्ध सत्वोदय क्षय को जानों।
मोह कर्म के साथ अविद्या, भावी इनको पहिचानों ॥ १३ ॥
सब कर्मों का नृप मोह कर्म जीवों को खूब रुलाता है।
पर भोलापन भी इतना है, एक पल में क्षय हो जाता है ॥ १४ ॥
जो ज्ञान पढ़े पढ़ावे कोई, और मदद ज्ञान में देता है।
ज्ञान आराधिक बना आत्मा, केवल ज्ञान को लेता है ॥ १५ ॥
जो चक्षु आदि के दोष हरन में, नहीं बाधा पहुचाता है।
सुदर्शन का गुण ग्राम करे, वह केवल दर्शन पाता है ॥ १६ ॥
जो राग द्वेष तज सम्भावी, हो मोहनी कर्म हटाता है।
नशा हटे पै शुद्धी हो ज्यों, आतम को लख पाता है ॥ १७ ॥
दानादि में देवे नहिं अन्तरा, निबलों को सबल बनाता है।

यह अन्तराय का नाश करी, फिर अनन्त बली हो जाता है ॥१८॥
प्राप्त भूत जीव सत्व को, करुणा सा नहीं सताता है ।
यह कर्म वेदनी को क्षय करके, निराबाध सुख पाता है ॥१९॥
जो पापादिक नहीं कर जीव, वह पुण्य अरु पाप खपाता है।
यह आयु कर्म से मुक्त होय, फिर अटल अवगाहना पाता है ॥२०॥
जो शुभाशुभ भावों को तज, वह शुद्ध भाव में आता है ।
वह नाम कर्म से अबन्ध हो, अमूर्त गुण प्रकटाता है ॥ २१ ॥
जाति कुल आदि मद त्यागे वह अनित्य भावना भाता है।
वह गोत्र कर्म से छूट आत्मा, अगुरुलघुपन पाता है ॥२२॥
जैसे सिंह बंधा पिंजड़े में दुःखादिक सब सहता है ।
त्यों ही आत्मा कर्म-बन्ध में पराधीन हो रहता है ॥ २३॥
खूनी वस्त्र खून से धोये, शुद्ध नहीं हो पाता है ।
ऐसे हिंसा मिथ्यादिक से जीव मलिन हो जाता है ॥२४॥
पानी मिट्टी और साबुन से आत्मा नहिं शुद्धि पाती है।
सत्य ज्ञान तप दया अहिंसा से पवित्र हो जाती है ॥२५॥
जैसे स्वच्छ नेत्र बिन प्राणी, वस्तु देख नहीं पाता है।
त्यों अन्तःकरण की शुद्धी बिन वैदिक कलंक नहिं जाता है ॥२६॥
मूस सुहाग आग फुंकनी से, स्वर्ण शुद्ध हो जाता है ।
ज्ञान दया तप चारित्र से जीवात्मा शुद्धी पाता है ॥२७॥
जीव अजीव दोनों मिलने से, नाना रूप दिखाता है।
पृथक् पृथक् होना दोनों का, मोक्ष-धाम कहलाता है ॥२८॥
कर्म जीव-सम्बन्ध सदा से, पुष्प गन्धवत् मानो तुम ।
नैमित्तिक पार्थक्य सदा यह युक्ति गुरु से जानो तुम ॥२९॥
मति जैसी गति भी वैसी गति जैसी मति भी आती है।

यही वासना आत्मा को फिर, उसी स्थान ले जाती है ॥३०॥
अपना गुण अरु पर का दुर्गुण, जो अल्प को गिरि बतलाता है।
नीचे गिरने का पथ यही, जो दुर्गति मे पहुचाता है ॥३१॥
जो खुद मालिक का द्रव्य हरे, मालिकानी में व्यभिचार करे।
इन्हीं अनिष्ट कर्मों से वह नर, घोर दु:खो के बीच परे ॥३२॥
ब्रह्मचारी कहला करके भी, जो जन व्यभिचार कमाते हैं।
इन पापो से भव-सिन्धु मध्य, वह गहरे गोते खाते हैं ॥३३॥
पत्नी पती का और पति पत्नी का, प्राण यहा जो हरते हैं।
वे दु खी यहा पर होते हैं, और मर कर नर्क मे परते हैं ॥३४॥
चौतरफा ध्यान लगा अपना, क्यों माया मोह मे फँसता है।
थल जल अनल वायु आदिक सब बनता और विनसता है ॥३५॥
मरण जन्म के चक्कर मे, यो आवागमनी होती है।
लक्ष्य बना ईश्वर को अपना, भौतिक बाते थोती हैं ॥३६॥
तामस इन तीनों वर्णों को, अपनाता वह दु ख पाता है।
इनको जो उल्टे ग्रहण करें, वह पुरुप-रत्न बन जाता है ॥३७॥
जैसे बाजे की चूडी में जो, भर दो वही निकलता है।
वैसे आत्मा जो कर्म करै, सर्वत्र उसे वह मिलता है ॥ ३८ ॥
नाता का खाता रखने से, यह जीव जन्म फिर पाता है।
जब इसका खाता खतम करे, तो शान्ति-धाम बन जाता है॥३९॥
नहिं बची जाति कुल योनि कोइ, जहा जीव जनम कर नहीं मरा।
जन्मा जन्मेगा बार-बार, क्यों कि कर्मो का साथ करा ॥४०॥
कर्म-जनित फल देख देख, तू फूला नहीं समाता है।
ये नाशवान् और मिथ्या है, तू क्यो चक्कर मे आता है ॥४१॥
दुष्कर्मो के करने वालों !, स्मरण मृत्यु का कर लीजो।
बादल विपत्ति के टूट पड़े तो, शुद्ध भाव मत तज दीजो॥ ४२ ॥

प्रभु में तुम में क्या भेद, इसे एकान्त बैठ कर मनन करो ।
है भेद फक्त कर्मों का, इन्हें ज्ञानाग्नि से तुम हनन करो ॥४३॥
यह प्राणी इन कर्मों के वश, भव-भव में दुःख उठाता है ।
दुष्कर्मों में परिलिप्त मनुज आत्मिक सुख कभी न पाता है ॥४४॥

वैभव शरीर सुख दुःखादिक सब पूर्व जन्म की करनी है ।
जैसी करनी वैसी भरनी, ऋषि मुनियों ने भी वरनी है ॥४५॥
इक कर्म बिना भोगे न छूटे इक कर्म ज्ञान से होय हनन ।
है तीव्र मन्द भावों का भेद, यह हृदय बीच तुम करो मनन ॥४६॥

यह प्राणी कर्म खपाने से ही, वीतराग बन सकता है ।
बस यही अवस्था पाने को भिक्षुक की तरह भटकता है ॥४७॥
सुख की अभिलाषा रखकर के, जो दूषित कर्म कमाते हैं ।
वे मधुर आम खाने के हित भी कर बबूल रोपते हैं ॥ ४८ ॥

जितने ऊंचे पद पर चढ़ते, चारित्र से उतने गिरते हैं ।
संस्कार के फल भोगन हित लख चौरासी फिरते हैं ॥ ४९ ॥
कभी भाग्य पर निर्भर हो पुरुषार्थ को मत तजना तुम ।
उद्यम का ही परिणाम समझकर पराक्रम को भजना तुम ॥५०॥
योगों की चपलता ही बन्ध, यह स्थिर होना ही अबंध ।
मुक्ति को अबन्ध कहते हैं, मुक्तात्मा नहीं सहता है बन्ध ॥ ५१ ॥

ज्वर रुकता औषधि सेवन से, अन्दर की क्रिया न जानता है ।
यों बंधते कर्म न दिखते हैं, परिणाम देख पहिचानता है ॥५२॥
सुरसरि पूर्ण हलाहल जैसे सब हित अनहित करते हैं ।
त्यों जड़ ये कर्म प्राणियों के भी सुधि बुधि आत्मिक हरते हैं ॥५३॥
जग में जरा जन्म मृत्यु का, बीज कर्म ही को जानो ।
राग द्वेष यह कर्म बीज हैं, समता औषधि पहचानो ॥ ५४ ॥

सत् समागम सदाचार सत्, श्रद्धा अरु स्वाध्याय मनन ।
इन उच्च साधनो से अपने, कलुषित कर्मों का करो हनन ॥ ४६ ॥
तकदीर से ही तदबीर बनै, उद्यम तकदीर बनाता है ।
है दोनों ही अन्योन्याश्रित, क्यों नहीं ध्यान में लाता है ॥ ५६ ॥
हे भगवन ! जीव स्वकृत भोगे, या अन्य किये का पाता है ।
या उभय शुभाशुभ कृत भोगे, या कर्म परस्पर आता है ॥ ५७ ॥
हे गौतम ! जीव स्वकृत भोगे, नहीं अन्य किया फल पाता है ।
नहीं उभय शुभाशुभ कृत भोगे, ना कर्म परस्पर जाता है ॥ ५८ ॥
पथ्य अपथ्य भोजन सेवन से, हिताहित फल को पाते हैं ।
यो शुभाशुभ कर्मों के कर्ता, सुगति दुर्गति मे जाते हैं ॥ ५९ ॥
अत्यन्त पाप उदय होने से अधर्म करना रुचता है ।
जब सर्प का जहर व्यापे तब नीम भी मीठा लगता है ॥ ६० ॥
अहि-मुख में पहुचा एक चूहा, एक चूहे ने मीठा खाया ।
पुरुषार्थ किया दोनों ने, पर भाग्य लिखा वैसा पाया ॥ ६१ ॥
जो चारों घनघाती कर्म हैं, वे एकान्त अशुभ कहलाते ।
वेदनी, आयुष, नाम, गोत्र, ये कर्म शुभाशुभ कहलाते ॥ ६२ ॥

॥ ज्ञान ॥

ज्ञान वही सम्बन्ध से जिसके, वस्तु रूप प्रकटाता है ।
ससार असार दीखता है सब, अन्धकार मिट जाता है ॥१॥
विज्ञान का अर्थ जानना है, वह ज्ञेय जो जाना जाता है ।
जो अनन्त ज्ञेय को जानता है, वह विज्ञानी कहलाता है ॥२॥
जैसे शीशे में जल पर्वत, आदिक प्रतिबिम्ब दिखाता है ।
ऐसे ईश्वर के ज्ञान बीच, यह सारा विश्व समाता है ॥३॥

श्वेत वस्त्र पर रंग चढ़े, नहीं रंग कृष्ण पर आता है।
यों उत्तम नर ज्ञान होय पर पापी ज्ञान न पाता है॥ ४॥
शोभन अशोभन को ना देखो देखा निमित्त से जाता है।
यों ज्ञान ज्ञेय को जान रहा ज्ञानी नर साफ बताता है॥५॥

तृप्ति का कारण अगर नहीं, क्यों कि तृ तृप्त न हो पाया।
तृप्ति का कारण आतम ज्ञान, यों सत्पुरुषों ने समझाया॥६॥
बिन शास्त्री हो पद का मानव शास्त्री चौपदा बनाता है।
हो वैस शुभाशुभ होने पर फिर ज्ञान कहाँ से पाता है॥७॥
मति श्रुति अवधि मन पर्यय ज्ञान, ये एक देशी कहलाते हैं।
है केवलज्ञान सर्व देशी यह होने पे शिव पाते हैं॥८॥
इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होय यह, अनुभव ज्ञान नहीं होता।
यह आतम-तत्त्व सम्बन्ध, न इन्द्रिय की सहायता को जोता॥९॥

जो ज्ञानी सब प्राणी को निज आतम तुल्य समझते हैं।
उसको नहीं होता मोह-शोक जिसको जग अपना लखते हैं॥१०॥
आतम-ज्ञान के सम्मुख प्यारों, चक्रवर्ती का राज निसारा है।
पुस्तक पढ़ने में लाभ क्या है, जो हृदय न शुद्ध तुम्हारा है॥११॥
स्वप्न जागृतावस्था को, अज्ञानी सत्य मानता है।
ब्रह्मवेत्ता मायामय जग को, मिथ्या ही पहिचानता है॥ १२॥
कल्पित दृश्य को सत्य माने वह दुःख का अनुभव करते हैं।
ब्रह्मवेत्ता इन्हें व्यर्थ समझ कर, हर्ष शोक सब हरते हैं॥१३॥
ज्यों रवि दीपक और चक्षु सचराचर वस्तु प्रकाशक हैं।
त्यों ही यह ज्ञान भी सकल वस्तु सचराचर की प्रकाशक है॥१४॥
मति ज्ञान का भेद धारणा, हिस्सा है जाति स्मरण ज्ञान।
मन सहित जन्म पाया हो तो यह मतिज्ञान भेद लेता है जान॥१५॥

ज्ञान घटै मत-भेद बढ़ै अरु, ज्ञान बढ़ै मत-भेद घटै ।
बढ़े सम्पत्ति सम्पत हो वहा, घटै सम्पत्ति सम्प हटै ॥ १६ ॥
उभय नेत्र एक साथ जो, देखन की क्रिया करते हैं ।
यों ज्ञान वैराग्य उभय एक संग, पापों का शोधन करते हैं ॥ १७॥
जैसे चक्षु में जल थल आदि, प्रत्यक्ष प्रतिविम्ब दिखाते हैं ।
यों ज्ञाता के केवल–ज्ञान में, ज्ञेय द्रव्य सर्व समाते हैं ॥ १८ ॥
ज्ञानी उदय प्रेरणा से जो, शुभ अशुभ क्रिया को करता है ।
पर आत्मा को भिन्न लखे तो, कर्म उन्हें नहीं लगता है ॥ १९ ॥
मोह उदय विकल बुद्धि जिसकी, करुणा तज हिंसा करता है ।
ज्ञान–रवि जो उदय होय तब, मोह अन्धकार को हरता है ॥२०॥
जैसे असि निज धारा से, एक के दो खण्ड बनाती है ।
यो जड़ चेतन को भिन्न करे, वह सुबुद्धि कहलाती है ॥२१॥
सम्यक् ज्ञान से स्वपर लख के, पर स्वभाव नसाया है ।
सहज स्वभाव में रमण करे, चेतन प्रकाश शुद्ध पाया है ॥२२॥
जगे न वहां तक स्वप्न सत्य, मृत्यु लख जगत् असत् जाने ।
ज्ञान से आत्म नित्य लख ले, तव मृत्यु को मिथ्या माने ॥२३॥
आसन प्राणायाम यम नियम, धारणा ध्यान प्रत्याहार ।
समाधि के आठ योग पर भेद, विज्ञान के बिना असार ॥२४॥
अनन्त चतुष्टादिक भाव-स्वरूप, अणुजीवी गुण कहलाता है ।
मोहादिक तीव्र कर्मोदय, यह प्रतीजीवी गुण पाता है ॥ २५ ॥
जैसे पर से पक्षी उड़ कर, इच्छित स्थान पै जाता है ।
सम्यक्ज्ञान क्रिया से ऐसे, मोक्ष में जीव सिधाता है ॥ २६ ॥
मोह शान्त सज्ञायुत् जो नर, चेतना में मर जाता है ।
वह नूतन तन धर के कोई नर, जाति-स्मरण को पाता है ॥ २७ ॥

अज्ञान ज्ञान का शत्रु है, दोनों विभिन्न दिखलाते हैं ।
आत्मा यथार्थत ज्ञान सरल, अज्ञान का आश्रय पाते हैं ॥ २८ ॥
अज्ञान का ज्ञान छूमन्तर है, कर्मों की निवृत्ति छूमन्तर है ।
ज्ञान चारित्र का छूमन्तर है सब विकार का छूमन्तर है ॥ २९ ॥
सम्यक्चारित्र,सम्यग्दर्शन,और सम्यग्ज्ञान निभाओ तुम ।
यह सब सुख के साधन हैं इनसे अच्छा सुख पाओ तुम ॥ ३० ॥
भव भ्रम विनाशक ज्ञान जीव, नहिं कभी सहज में पाता है ।
अत्यन्त परिश्रम करने से यह, ज्ञान सुलभ हो जाता है ॥ ३१ ॥
जो एक का ज्ञाता होता है वह अखिल विश्व का ज्ञाता है ।
जो सब का ज्ञाता है उससे, भी कुछ छिप नहिं पाता है ॥ ३२ ॥
अज्ञान से ज्ञान ढँका रहता, आत्मा मोहाच्छादित है ।
अस्पष्ट धूप में शुद्ध न बिम्ब, रवि-मण्डल मेघ आवारित है ॥ ३३ ॥
शरीर क्षेत्र का ज्ञाता ही आत्मा क्षेत्रज्ञ कहाता है ।
वपु अनित्य है आत्मा नित्य, यों नित्यानित्य कहाता है ॥ ३४ ॥
ब्रह्म-ज्ञान और विषय-वासना एक ठौर नहिं पाते हैं ।
चोर शाह वा तेग म्यान में हर्गिज नहीं समाते हैं ॥ ३५ ॥
ज्ञानी के आश्रय से जब जन, सभी हित ध्यान लगाते हैं ।
ज्ञानाभिमान में चूर हुवे तब ज्ञान ध्यान सब भगते हैं ॥ ३६ ॥
ज्ञान रूप गंगा के अन्दर जो जन कोई नहाता है ।
कर्म मैल से मुक्त होय तब विश्वनाथ बन जाता है ॥ ३७ ॥
अध्यात्म-ज्ञान जो आर्य में है, वह नहिं अनार्य में आया है ।
ऐ जीव नासमझ समझ इसे यह जन्म मनुष्य का पाया है ॥ ३८ ॥
अनन्त काल भटकी आत्मा फिर भी मुक्ति नहिं पाती है ।
ज्ञानी की आज्ञा को पाले तब, छिन में कर्म खपाती है ॥ ३९ ॥
भव-स्थिति जिसकी पकती, और क्षायिक श्रेणी भी करले ।

नहीं पचम काल उसे रोके, वह सिद्धालय निज घर करले ॥ ४० ॥
है नाभिकमल मे कस्तूरी, मृग मूर्ख भेद नहि पाता है।
त्यों ही घट में तेरा स्वामी, अज्ञान मे पड़ भटकाता है ॥ ४१ ॥
समकित पाकर नहिं तजे उसे, पन्द्रह भव में शिव पाता है।
उत्कृष्ट अराधन जो करले इस भव से मुक्ति मे जाता है ॥ ४२ ॥
काल भय मे ज्ञानी जन, परमार्थ मे एक मत रखते हैं।
देश काल साधन का भेद पर, मूरख शत मत रखते है ॥ ४३ ॥

❀ दोहा ❀

ज्ञानी अज्ञानी लड़ैं, दोनों रजक समान।
ज्ञानी जन समता धरैं, अज्ञ करैं अभिमान ॥१॥

॥ गुण-स्थान ॥

❀ दोहा ❀

निश्चय से जीव एक है, व्यवहार चतुर्दश जान।
स्वर्ण वास्तव एक है, भूषण भिन्न पहिचान ॥१॥

मिथ्यात्व सास्वादान मिश्र, अव्रत व्रत प्रमत्त अप्रमत्त है।
अपूर्वकर्ण अतिवृत्ति भाव, सूक्ष्म लोभ दशवे स्थित है ॥ १ ॥
उपशान्त मोह क्षय मोह संयोगी अयोगी ये चौदह जानो।
यह जीवों का स्थान कहा, अव लक्षण पै चित्त आनो ॥ २ ॥
एकान्तपक्षी और सत्यलोपी, और यथार्थ को विपरीत माने।
सशयवान् अजान कृष्णपक्षी, मिथ्यात्व पच यही जाने ॥ ३ ॥
जो समदृष्टि मिथ्यात ग्रहे वह सादी मिथ्याती कहाता है।

जो ग्रन्थी भेद ना कभी करे अनादि मिथ्यात्व कहाता है ॥४॥
ज्यों खीर पान कर वमन करे शेष स्वाद रह जाता है।
त्यों समकित से गिर एक, समय छः आवलि जो रह जाता है ॥५॥
मिश्र सत्यासत्य भाव रूप, श्रीखण्ड समान जो रहते हैं।
तृतीय गुण स्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कहते हैं ॥६॥
यथा अपूर्व अनिवृत्तिकरण जो कोई क्रमशः कर जाता है।
मिथ्याग्रन्थी को नाश करी समकित रत्न को पाता है ॥७॥
ज्ञान बिना सम्यक्त्व का मित्रों! भव जीव नहीं पाता है।
मत भेदाधिक के कारण ही सम्यग्ज्ञान समझ नहिं आता है ॥८॥
सम्यक्त्व प्राप्ति का योग मिला नहिं स्वरूप आत्मा में चीन्हा।
प्रत्यक्ष परोक्ष के जानने में कर्मों ने विघ्न अधिक कीन्हा ॥९॥
मोह देश में जीव पड़ा अज्ञान कपाट लगाया है।
राग द्वेष पहरे वाले समकित ने ज्ञान छुड़ाया है ॥१०॥
मन्द कषाय भाव की वाञ्छा, बन्ध रूप जग को जानो।
स्व और पर की दया करो श्री वीतराग वच सत्य मानो ॥११॥
सम्यक्त्व ज्ञान दोनों अभिन्न जैसे मणि ज्योति होती है।
उपशम अरु क्षयोपशम सम्यक्त्व वास्तविक क्षायक होती है ॥१२॥
सम्यक्त्व भावना जिस मानव को एक बार मिल जाती है।
उसमें तीज या पंद्र भव में अर्ध पुद्गल में मुक्ति ले जाती है ॥१३॥
सम्यक्त्व ज्ञान केवल से बढ़े मैं जीव मोक्ष पहुंचाता हूँ।
मुझ से तू क्या विरोध करता मैं तेरे पहले आता हूँ ॥१४॥
देह मोह तज आत्म भाव में जो नित्य स्थिर रहता है।
निर्लिप्त सदा व्यवहार करे जग समदृष्टि तब कहता है ॥१५॥
सम्यग्दर्शन ही शुद्ध चेतना, अशुद्ध चेतना कर्म जनित।
जब शुद्ध श्रद्धान हो जीवों को यहीं से जन्म की होय गणित ॥१६॥

सम्यगदृष्टि अन्तःकरण मे, ज्ञान-वैराग्य धारण करते ।
निज-स्वरूप मे स्थिर होकर, संसार समुद्र से तरते ॥ १७ ॥
जितना भाव-वन्ध कम हो, उतना ही समकित पाता है।
यदि तीव्र स्नेह पदार्थों मे, परमार्थ पृथक हो जाता है ॥ १८ ॥
अर्ध पुद्गल काल जीव कोई, समकित तज गोते खाते हैं।
कोई अन्तर्मुहूर्त में ग्रन्थि-भेद, पथ लाघ मोक्ष सुख पाते हैं ॥ १९॥
अन्तर्मुहूर्त अर्ध पुद्गल के, समय जितनी समकित जानों ।
काल व्यतीत ज्यों दोष हने, गुणवृद्धि हो तुम पहिचानों ॥ २० ॥
अनन्तानुवन्धी कपाय मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी कहिये।
ये सातों उपशम उपशम हैं, सातो क्षय हो क्षायक लहिये ॥ २१ ॥
चार क्षय उपशम त्रय पंच क्षय, उपशम दो प्रकृती जानों ।
क्षय पट् उपशम एक क्षयोपशम, समकित भेद तीनो मानों ॥२२॥
चार क्षय दो उपशम एक, वेदे क्षयोपशम वेदक मानो ।
पंच क्षय एकोपशम एक वेदे, क्षयोपशम वेदक मानो ॥ २३ ॥
क्षय षट् एक वेदे क्षयवेदक, क्षयवेदक यों वतलाई है ।
पट् उपशम एक वेदे वह उपशम उपशम वेदक नामी दर्शाई है ।२४।
यह अव्रती गुण स्थान, आतम की प्रकटे ज्योति है ।
एक अन्तर मुहूर्त स्थित, या तेतीस सागर की होति है ॥ २५ ॥
अप्रत्याख्यान कषाय तजे, जब देश व्रती मे आता है ।
द्वादशव्रत एकादश प्रतिमा, संयम का अंश जहा पाता है ॥ २६ ॥
अभक्ष दुर्व्यसन त्याग एक वीस, गुण उत्तम जिसमें पाते हैं।
देश न्यून पूर्व कोटिस्थित, कल्प लोक में जाते हैं ॥ २७ ॥
एक समय से एकावालि तक, कनिष्ट अन्तर्मुहूर्त जानों ।
नेक न्यून उत्कृष्ट घड़ी दो, का अन्तर्मुहूर्त पहिचानों ॥ २८ ॥
प्रत्याख्यानी हटते छट्ठे, गुण सत्ताईस प्रकटाते हैं ।

विषय कषाय धर्म राग विकथा निद्रा प्रमद आं पाते हैं ॥ २६ ॥
स्थविरकल्प जिनकल्प दोनों निर्ग्रन्थ यहां पर होते हैं।
स्थविर वसे वन या बस्ती, जिनकल्प विपिन को जाते हैं॥ ३० ॥
आहार हेतु बस्ती में आते, हो अचेल न शिष्य बनाते हैं।
न उपदेशे एकाकी रहवे दया न काम में लाते हैं ॥ ३१ ॥
न कंटक दूर करे कर से, न सिंह देख फिर जाते हैं।
अटल प्रतिज्ञा है उनकी न कहीं से घबड़ाते हैं ॥ ३२ ॥
वज्रऋषभ नाराच संघयन, और नव पूर्व का धारी हो।
जिन दीक्षित या दीक्षित का दीक्षित यही जिन कल्प विहारी हो ३३
स्थविर कल्पी के शिष्य शाखा, और धर्म देशना देते हैं।
परमात्मापेत वस्त्र रखत, और औषधि भी ले लेते हैं ॥ ३४ ॥
बिन कारण गृहस्थ के घर पर, आहारादिक नहीं पाते हैं।
वाके स्थान पै गुरु आज्ञा से ले विधियुक्त पा लेते हैं ॥ ३५ ॥
बाईस परिषह क्षमय सहे, द्वादश विध तप कमाते हैं।
दश न्यून कोटि पूर्व स्थिति या अन्तमुहूर्त रह पाते हैं ॥ ३६॥
अप्रमत्त गुणस्थान में यह जिस समय आत्मा जाती है।
धर्म-ध्यान में स्थिर होकर, प्रमाद को दूर नशाती है ॥ ३७ ॥
जहां आहार विहार का काम नहीं स्थिति अन्तमुहुर्त की पाता है।
या तो लौट के छट्ठे आता, या ऊपर को चढ़ जाता है ॥ ३८ ॥
अब आठवां गुणस्थान यह, जहां शुक्ल ध्यान भी आता है।
उपशम श्रेणी या क्षय श्रेणी दोनों में एक कर पाता है ॥ ३९ ॥
यहां ऋद्धि सिद्धि लब्धि आदि अद्भुत शक्ति प्रकटाती है।
क्षपक श्रेणी यहां करे आत्मा, तो घाती शीघ्र खपाती है ॥ ४० ॥
अनिवृत्ति बादर नौवां जहां, अधिक भाव स्थिर हो जाता।

सजल के क्रोध मान कपट, तीनो विकार पट् मिट पाता ॥ ४१ ॥
दशवा है सूक्ष्म सम्प्रदाय, यहा सूक्ष्म लोभ रह जाता है।
सिद्धि या शिवपुर की वाञ्छा, वस यही इसे अटकाता है॥ ४२ ॥
उपशान्त मोहिनी गुणस्थान, को मोह उपशात कर पाता है ।
पुन मोह प्रज्वलित होता है, गुणोत्तम से फिर गिर जाता है॥४३॥
द्वादशवे गुण स्थान जाके यह, मोह कर्म विनशाता है।
सम्यक्दर्शन चारित्र दोनो की, पूर्ति जहा कर पाता है ॥ ४४ ॥
क्षय मोह के चर्म समय मे, घाती त्रय कर्म खपाता है ।
सयोगी के प्रथम समय में, अनन्त चतुष्टय प्रकटाता है ॥ ४५ ॥
राग द्वेष काम मिथ्याव्रत, पट् हासादिक का नाश हुआ ।
अज्ञान निद्रा पाचो अन्तराय, मिट आत्मगुण का प्रकाश हुआ४६
मन वचन काय रुन्धन करके, शैलेश अवस्था पाते हैं ।
पच लघु अक्षर की स्थिति जहा, चौदहवा स्थान जव पाते हैं ॥४७॥
आश्रव वन्ध पैदा करता, सवर मोक्ष का दाता है ।
सवर से आश्रव रुन्धन कर, वह जगत् पूज्य बन जाता है ॥४८॥
शुक्ल-ध्यान की अग्नि से, अघाती कर्म जल जाता है ।
वन्ध छेदन गति धूम्र तीखत्, सिद्धालय को पाता है ॥ ४९ ॥
नहीं वन्ध मोक्ष नहीं जन्म जरा मृत्यु का लगता वान नहीं ।
नही राजा प्रजा स्वामी सेवक, जहा वस्ती और वीरान नहीं ।५०।
सयोग वियोग वोलना चलना, कर्म काया का काम नहीं ।
नहीं हर्ष शोक नहीं विषय भोग, गुरु शिष्य न्यूनाधिक नाम नहीं ५१
एक में अनेक, अनेक एक में, नहीं एक अनेक गिनाते हैं ।
पेठे प्रकाश मे प्रकाश ज्यों, सिद्धो मे सिद्ध समाते हैं ॥ ५२ ॥
समुद्र थाह लेने सैन्धव जाता, वापिस नहीं आता है ।
यो सिद्धों में पहुच आत्मा, स्वय सिद्ध वन जाता है ॥ ५३ ॥

मोक्ष पाना कहे भेद जगत पर जो मुक्ति पा जाता है।
अकथनीय वह आनन्द वेद भी नयती नयती गाता है॥ ४४॥

॥ जैन ॥

अज्ञानी जैन शास्त्र को निशि दिन, नास्तिक हय बतलाते हैं।
जैन धर्म तो आस्तिक है, वे अज्ञान भेद नहिं पाते हैं॥ १॥
जैन धर्म तो दया दान अरु, ईश्वर भक्ति सिखाता है।
जीव अजीव पुण्य और पाप जगत् अस्तित्व बताता है॥ २॥
सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की भी, जिसमें रक्षा बतलाई है।
एक परमाणु से लगा के जगत्, की वास्तविकता समझाई है॥ ३॥
जैन कहे आत्मा तारो, और अनन्त शक्ति प्रकटाओ।
अनन्त दुःखमय कर्म मुक्त हो आवागमन को विनसाओ॥ ४॥
जैनमुनि त्यागी होते हैं, अरु मत्य मार्ग बतलाते हैं।
गांजा भंग मांस मदिरादिक से, विमुक्त करवाते हैं॥ ५॥
एक दूजे को नास्तिक कहने से नास्तिक नहिं बन जाते हैं।
आस्तिक को जो नास्तिक माने नास्तिक वे ही कहलाते हैं॥ ६॥
समदृष्टि समदर्शी वीतरागी, समभावी शुद्धभावी कह दो।
आ महानी अन्तरात्मा चाहे उसे जैनी कह दो॥ ७॥
राग द्वेष पर विजय करे बस वही जैन-पद पाता है।
वही पवित्र आत्मा है, और वही मोक्ष में जाता है॥ ८॥
जैन धर्मी बिन बन जीव नहीं कभी मोक्ष में जाता है।
जैन-धर्म के शरण रहक जो, आता वही शिव पाता है॥ ९॥
अदन से आला तक देखा सब जन जैनी बन सकते हैं।
हर मत खुला फाटक इसका, चारों ही वर्ण आ सकते हैं॥ १०॥

मतभेद का कारण मोह-शिथिलता, राग द्वेष बतलाते हैं।
सत्य का गला घोटने वाले, वे घोर नरक में जाते हैं ॥ ११ ॥
विक्षेप डाल के सत्य धर्म में, इच्छित मत अधम चलाते हैं।
प्रतिष्ठा के इच्छुक मनुष्य, वह आवागमन बढ़ाते हैं ॥ १२ ॥
जैन-धर्म का उद्देश्य वास्तव, जगत दुखों का बाधक हैं।
जाति-देश, समाज आत्मा, की उन्नति का साधक हैं ॥ १३ ॥
रख भेद भाव को अज्ञानी, डूबे खुद और डुबोते हैं।
जैन-मुनि से ज्ञान श्रवण कर, अन्तर मल नहीं धोते हैं ॥ १४ ॥
आजीविका, स्त्री, प्रतिष्ठा हित, विधर्मी तक बन जाते हैं।
जाति-धर्म का गौरव तज, उत्तम कृत से गिर जाते हैं ॥ १५ ॥

॥ जैनियों का कर्त्तव्य ॥

वास्तविक सत्यता समता अरु, सच्ची स्वतन्त्रता चित्त देना।
हा हर जैनी को विश्व-प्रेम, धारण कर अमर सुयश लेना ॥ १ ॥

❀ दोहा ❀

षट् आवश्यक नित्य करे, भजे वीर भगवान्।
उस गृहस्थ का अवश्य ही, होता है कल्याण ॥२॥

सत्य देव आगम सत् गुरु का, कर दृढ़ मन से तू श्रद्धान।
निरतिचार अरु पाच अनुव्रत, चार तीन शिक्षा गुण मान ॥ ३ ॥
करके सल्लेखना अन्त समय, यह मानव जन्म सफल कीजे।
है गृहस्थ धर्म यही धार सदा, भगवान् वीर को भज लीजे ॥ ४ ॥
मिथ्या अन्याय अभक्ष्य तजी, जिन धर्म का पूर्ण प्रचार करो।
निशिवासर निज आत्म हितार्थ, सत् शास्त्रों की स्वाध्याय करो ॥५॥

❀ दोहा ❀

सब आरम्भ परिग्रह, महाव्रत लूँ स्वीकार ।
अन्त समय आलोचना लूँ संथारा धार ॥ ६ ॥

संकल्पी हिंसा श्रावक को बिलकुल ही हेय बताया है ।
यथा साध्य यत्नापूर्वक यह विधि विधान सिखलाया है ॥ ७ ॥

॥ जैन धर्म का परिचय ॥

चालीस कोटि संख्या जैनों की वीर समय में पाती है ।
अकबर के समय में, सवा क्रोड़, यह तवारीख बतलाती है ॥ १ ॥
डेढ़ अरब की जन संख्या, इस वक्त जगत में पाते हैं ।
जिसमें हैं बारह लाख जैन इतिहास हमें बतलाते हैं ॥ २ ॥
जैन-धर्म का जीवन ही, जीसंघ धर्म मित्रों जानो ।
बिन धर्मी के नहीं धर्म टिके, वास्तविक मम को पहिचानो ॥ ३ ॥
जैन सिद्धान्त का विशेषतायें, चार तरह से पहिचानो ।
तत्व, अहिंसा, अनेकान्त और कर्मवाद चौथी जानो ॥ ४ ॥
यदि जैन-धर्म सर्वोत्तम है तब सब क्यों नहीं अपनाते हैं ।
कर्मोदय मिथ्या अज्ञानतम, सत्संग नहीं कर पाते हैं ॥ ५ ॥
जैन-धर्म के उपदेशक सर्वज्ञ और सर्व दर्शी हैं ।
इस कारण यह सिद्धान्त पूर्ण, जीवों का यही हितैषी है ॥ ६ ॥
आधुनिक काल में जैना, अब वो चार किस्म के पाते हैं ।
जैना, जैनमती, समधर्मी जैनाभास कहाते हैं ॥ ७ ॥
है ईश्वरवाद जग सदा कर्मीश्वरवाद सिखाता है ।
आत्मा को ईश्वर होने की यह युक्ति साफ बताता है ॥ ८ ॥

जैन-धर्म स्वतन्त्र सदा, अरु सर्वांगी स्याद्वादी है ।
यह अन्य धर्म आधीन नहीं, अर्हन भाषित अनादी है ॥ ९ ॥
श्रद्धा ज्ञान क्रिया एक एक से, अन्य मोक्ष बतलावे हैं ।
तीनों का समन्वय होने से, यों जैन सिद्धान्त जिताते हैं ॥ १० ॥
निर्बल के कुल अपराधों को, क्षमा कर देना ये वीरता है ।
पर अत्याचारी शत्रुओं से, वापिस फिरना कायरता है ॥ ११ ॥

॥ मनुष्य जन्म की महत्ता ॥

मुक्ति द्वार मानव तन ही है, मानव ही पाप हटाता है ।
हो केवल-ज्ञान का अधिकारी, यह पूर्ण अमर पद पाता है ॥ १ ॥
मनुष्य भव चौपाटी पर, यह आवागमन मचाता है ।
जब तक पंचम गति न मिले, तब तक शान्ति नहीं पाता है ॥ २ ॥
नर जग का सर्व श्रेष्ठ प्राणी, सर्वाधिक पतित वह बनता है ।
पशु भी प्रकृति नियम मानें, यह इससे पीछे हटता है ॥ ३ ॥
जहां हूं मानें वहां तूं न मिले, जहां तू हूँ स्थान न पाता है ।
वह मनुज सर्व सम्मानित हो, जो विश्व को मित्र बनाता है ॥ ४ ॥
असत्य सेवन करने से, वायस या श्वान कहाते हैं ।
प्रिय वाक्य तथा सत्यवादिता, सच्चे मनुष्य अपनाते हैं ॥ ५ ॥
नर-तनु, आर्य भूमि, उत्तम कुल, सुर भी इच्छा करते हैं ।
अफसोस है उनपै योग पाय, फिर आत्म लक्ष्य नहीं धरते ॥ ६ ॥
अत्यन्त परिश्रम से जिनको, उत्तम साधन मिल जाते हैं ।
सत्य कार्य में उनको नियत करे, वे श्रेष्ठ पुरुष कहलाते हैं ॥ ७ ॥
करता जो आत्मा की रक्षा, जागृत वह ही कहलाता है ।
जो इसको उच्च बनाता है, वह जन्म सफल कर जाता है ॥ ८ ॥

प्रतिकूल परिस्थिति होते भी जो न्याय-मार्ग अपनाता है।
वह इष्ट पदारथ को पाकर क ष्ट पुरुष बन जाता है ॥९॥
इतने मीठे भी बनो न तुम शक्कर की भांति पिसे जाओ।
कडुवे भी इतने बनो न तुम, जो खाते ही थूंके जाओ ॥१०॥
मानव जीवन का चरम लक्ष्य, सत मोक्ष गति को पाना है।
इस कारण स ही मनुज जन्म सुर-मुनि ने श्रेष्ठ बखाना है ॥११॥
यह जगत मुसाफिरखाना है तन कुटिया न्यारी न्यारी है।
हिल-मिलकर धर्म कमाओ तुम जाना सबको अनिवारी है ॥१२॥
जो अवसर चूकी तजता है, वह निज-पद से गिर जाता है।
त्यों मनुज-कृत्य को तजे मनुज, वह मनुजाधम कहलाता है ॥१३॥
तन वसन तुल्य है आखिर यह एक दिन तो पल्टा जायेगा।
जैसी करनी कर आयगा वैसी वह योनि पायेगा ॥ १४॥
यौवन-तन धन और कुटुम्ब बीच, फँस करके खूब लुभाते हो।
यह सब अस्थिर तन भी नहीं स्थिर क्यों नाहक पाप कमाते हो ।१५।

❁ भक्ति ❁

प्रभु आज्ञा पर चलना दुर्लभ, सुलभ असि धार पे चलना है।
कहाना सहज किन्तु दुर्लभ भक्ति मिलना है ॥ १ ॥
भक्ति भव-ताप मिटाती है, भक्ति भव-सिन्धु तिराती है।
भगवान् भक्त में भेद नहीं भक्ति भगवान् बनाती है॥ २ ॥
सर्वोत्कृष्ट पथ भक्ति है यह मिथ्यामान मसाती है।
सत्पथ में गमन कराती है अनुचित अरु उचित बताती है ॥ ३ ॥
जल अग्नि न सुख दुख के दाता सेवन से ही इनको पाता है।
त्यों ही प्रभु भक्ति समापमान है, अशुभ तथा शुभ फल दाता है ॥ ४॥

जो ईश्वर का हुक्म उठाना है, वही इवादत्त कहलाती है।
नहीं माने हुक्म पर रटे नाम, यही वगुला वृत्ति दर्शाती है ॥ ५ ॥
तलवार गहे पर वीर वने, अरु नशा भंग से आता है।
ज्यों दीखे प्रतिविम्ब काच में, प्रभु सुमिरे सुख पाता है ॥ ६ ॥
विपयानन्द भजनानन्द वने, भजनानन्द विपयानन्द वने।
यो अन्योन्य चक्र काटे, पर विरला ब्रह्मानन्द बने ॥ ७ ॥
जो रूप ही रूप को भजता है, तो फेर रूप को पाता है।
जो रूपातीत का ध्यान करे, तो रूपातीत हो जाता है ॥ ८ ॥

॥ तीर्थ ॥

स्थावर तीरथ से मित्रो!, यह जगम तीरथ वेहतर है।
प्रत्यक्ष शीघ्र फलदायक जो, इससे नहीं कोई बढकर है ॥ १ ॥
हैं माता पिता तीर्थ उत्तम, और तीर्थ ज्येष्ठ जो भ्राता है।
सद्गुरु तीरथ है पदे पदे, बस यही तीर्थ सुखदाता है ॥ २ ॥

॥ सत्संग ॥

सत्संग परमहितकर औपध, और आत्मरोग का नाशक है।
समता शान्ति विवर्द्धक है, और आत्मज्ञान प्रकाशक है ॥ १ ॥
अपनी मर्जी माफिक चलता, वह घोर अनर्थ कमाता है।
विन ज्ञानी का सत्संग किये, यह जीव न सत्पथ पाता है ॥ २ ॥
जिस घट मे लाकर गन्ध धरो वह गन्धमयी हो जाता है।
सत्संग करे, नहीं लखे सत्य, मिट्टी से नीच कहाता है ॥ ३ ॥
सत्चित् तो तू खुद ही है, आनन्द की खोज लगाता है।
वह सत्सग लभ्य है पामर, क्यों कुसग में जाता है ॥ ४ ॥

निःस्वार्थ प्रीति करने के हित सत्संग एक ही साधन है।
अज्ञान आत्मा का तजना ही, सत्य ईश्वराधन है॥ ५॥

॥ पुरुषार्थ ॥

धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष, ये चार पदार्थ कहाते हैं।
इनमें दो साध्य दो साधन, इच्छा हो उन्हें कमाते हैं॥ १॥
अज्ञानी काम को साध्य बना साधन पा अर्थ कमाते हैं।
ज्ञानी तो मोक्ष को साध्य बना साधन व धर्म बताते हैं॥ २॥

॥ सद्गुरु ॥

हिंसा झूठ चोरी व्यभिचारी मूर्च्छा रात्रि भोजन जानो।
सब त्याग को करे करावे, सद्गुरु वही अपना मानो॥ १॥
प्रभु है हममें हम हैं प्रभु में, भटके जो पृथक् समझता है।
द्वन्द्व मिटे न बिना सद्गुरु के, क्यों संशय साथ अटकाता है॥ २॥
जिसके मन पर सुख दुख और लाभ हानि का नहीं प्रभाव पड़े।
सच्चा आत्मज्ञानी है वह, जो स्तुति निन्दा समभाव धरे॥ ३॥
यदि वेष साधु का धार लिया, तो इसमें क्या बलिहारी है।
पर सच्ची साधुता को करना, यह जग में कठिन करारी है॥ ४॥
बस ब्रह्म वेत्ता बनने को गुरु, आज्ञा पर चलना चाहिये।
उपलब्धि न हो जावे तब तक, इस सांचे में ढलना चाहिये॥ ५॥
उपादेय और हेय वस्तु के गुण को जो अपनाया है।
ईश्वर का शुद्ध स्वरूप, विज्ञपुरुषों को समझाया है॥ ६॥
निज आत्मा की रक्षा करना यह गुण कोई में पाता है।
जो इस मण्डल पर पहुँचा है, सब ज्ञानी उसे बताता है॥ ७॥

॥ श्रावकाष्टक ॥

* छप्पय-छंद *

जैनी श्रावक वही देव, अर्हत को माने ।
धारे गुरु निर्ग्रन्थ जीव पै करुणा आने ।
झूठ अदत्त को तजे, मात परनारी जाने ।
धन की हो मर्याद रात भोजन नहीं ठाने ।
करे सामायिक प्रतिक्रमण, बिन छाना जल पर हरे ।
"चौथमल" सुर पद लहे, जो ध्यान सदा नव पद धरे ॥१॥

दशोदिशि भोगोपभोग मर्याद धारे ।
दण्ड अनर्थ त्याग नियम नवमा स्वीकारे ।
दिशावगासी नियम करे श्रावक चित्तलाई ।
पौषादिक छः करे एक महीना के माई ।
द्वादश भावे भावना पौपध शाला जाय ।
"चौथमल" श्रावक वही, क्यों ना सुगती पाय ॥

इगाल कर्मना करे, नहीं जगल कटवाये ।
खाती कर्म खदान, पशु दे नहीं किराए ।
दात केस रस लाख जहर को कभी न वणजे ।
यन्त्र पील पशु छेद विपिन जलवाना वरजे ।
"चौथमल" स्वार्थवश हद सर को सोखे नहीं ।
श्रावक वह महावीर का असतजिन पौषे नहीं ॥

सचित्त वस्तु और द्रव्य करे नित की मर्यादा ।
विगप पन्नी ताबूल नेम से रखे न ज्यादा ।
वस्त्र गन्ध वाहन शयनो की गिनती कीजै ।

क्षेप मद्य मद्य दिशा स्नान अधिका नहीं कीजै।
आहारादिक सब वजन का करे वह परमाण।
नेम चतुर्दश "चौथमल" धारे श्रावक जाण ॥ ४ ॥
दीर्घ राग को तजै, वृथा हठ को नहीं ठाने।
भूत प्रेत भय त्याग धर्म में दृढ़ता आन।
हो तत्वों का ज्ञान क्रिया पच्चीसी जाने।
विनय विवकी होय जहां तहां धर्म बखाने।
सहधर्मी का साथ दे, निमग्न वचन हिय में धरे।
"चौथमल" हो स्फटिक हृदय श्रावक तो यह अंग वर ॥ ५ ॥
प्रातःकाल गुरुदेव दर्शकर आज्ञा देवे।
सुने सुनावे सूत्र नियम चौदे धर लेवे।
भोजन समय भावना रोज गुरु की भावे।
देवे सुपात्र को दान जन्म सफल कर मानें।
मिथ्या लेख भी ना लिखे, साक्षी झूठी नहीं भरे।
न्याय पक्ष से "चौथमल" लेन देन श्रावक करे ॥ ६ ॥
चून हलद और मिरच धनयादि वस्तु कहिये।
दश दिन से अधिक पिसी भई काम न लइये।
चूल्हा मांजन जल स्थान चन्दवा होवे।
ईंधन जल सब वस्तु भूमि यतना स जोवे।
बड़ गूलर के गुच्छ फल आदि कभी न खाय।
"चौथमल श्रावक वही व्यसन सभी छिटकाय ॥ ७ ॥
हिंसक मिथ्या योग सभी धन्धा छिटकाये।
खाना रुपया नशा चीज परदेश बसावे।
मिथ्यात्वी निर्दयी जार की संगत टाले।

दावारी साथ धर्म को भाग निकाले।
संस्कार धार्मिक तणा डाले बालक मांय ।
" चौथमल " श्रावक वही गुणग्राही कहलाय ॥ ८ ॥

※ दान ※

लेने ही लेने में खुश हो, देने मे जी घबड़ाता।
बिन दिये नहीं पावोगे तुम, जो देता है सो पाता है ॥१॥
सत्पात्र दान मुनिराजों का, श्रावक समदृष्ट पात्र जानो।
अपात्रदान है दुखियों का, वेश्या कुपात्र दान मानो ॥२॥
अन्न अभय विद्या औषध, यह चार दान कहलाते हैं।
स्वहित परहित चाहने वाले, देते हैं और दिलाते है ॥३॥
अमृत जल बिन्दु सर्प मुख में, पड़ते ही विष बन जाता है।
सीपी मे मुक्ता, गौ में दूध, यह पात्र-भेद दिखलाता है ॥४॥
शुभ दान से लक्ष्मी मिलती है, चारित्र से सम्पत्ति पाता है।
तप कर्म रोग का नाशक है, और भाव परमपद दाता है ॥५॥
है हाथ दान देने के हित, और मुख प्रभु का गुण गाने को।
कानों से प्रभु की कथा सुनो, हैं नयन सुपथ दर्शाने को ॥६॥

❀ शील ❀

सर्प पुष्प माला बनता, अरु विष अमृत हो जाता है।
अनल नीर केहरी कुरङ्ग, यह अचरज शील दिखाता है ॥१॥
शीलवन्त को नमे देव, अरु जग मे पूज्य बनाता है।
स्वर्गापवर्ग का दाता है, और आवागमन मिटाता है ॥२॥
रस निकल जाय जिस तरु का, वह शीघ्र सूख ही जाता है।

यों तन का सार निकलने पर जीवन नहीं टिकने पाता है ॥३॥
आतुर को मूरख करै भोग शीतल को क्रोध दिखाता है।
कायरता शूर को, लघुता गुरु को नृप को रंक बनाता है ॥४॥
ग्लानि क्षीणता अचेतना भ्रम कम्पन खेद स्वेद माना।
क्षय रोगादिक दैहिक विकार मैथुन के दोष है पहिचानो ॥५॥

❁ तप ❁

जो कर्म सौ वर्ष तक भोगे, उसको नवकार से मारा करे।
अरु सहस्र वर्ष के अशुभ कर्म को, पौरसी का तप नाश करे ॥१॥
साठ पौरसी दश हजार वर्षों का कर्म खपाता है।
लक्ष वर्ष के अशुभ कर्म को, तप दो पहर नशाता है ॥२॥
एकाशन दस लाख बरस के, अशुभ कर्म का नाश करे।
एकलठाणा तप क्रोड़ वर्षों का, कर्म विनाश करे ॥३॥
दश क्रोड़ वर्ष के अशुभ कर्म का तप नीवी क्षय करता है।
सौ कोटि वर्ष का अशुभ कर्म, आयम्बिल का तप हरता है ॥४॥
दस हजार वर्षों का अशुभ, सद्य उपवास हटाता है।
दस सहस्र क्रोड़ वर्षों का कर्म अभिमह लाता है ॥५॥
बाह्य तप से लब्धि प्रकट, आभ्यन्तर ज्ञान का दाता है।
अरु यही निर्जरा धर्म जगत में, मोक्ष गती ले जाता है ॥६॥
जैसे माखन घृत ही है पर, तप कर विशुद्ध बन जाता है।
यों तप से कर्म जला तब आत्मा परमात्मा बन जाता है ॥७॥

❁ भाव ❁

शुभ भाव से मनुष्य स्वर्ग, शुद्ध भाव मोक्ष का दाता है ॥ १ ॥
भावो से भव-भव बीच भर्मे, भव-सिन्धु भाव तिराता है।
ये ऊँच नीच भी भाव ही हैं, भाव ही बन्ध छुटाता है ॥ २ ॥
भावो से भगवद्भक्ति हो, और दान भाव से देता है।
भाव विशुद्ध जो हो जावे, तो छिन में केवल लेता है ॥ ३ ॥
हरिहर चक्री अरिहंतादिक को, काल पकड़ ले जाता है।
हम पामर जन की कथा है, कौन अमर रह पाता है ॥ ४ ॥
तेरे देखत ही जगत जाय, तू भी जग देखत ही जायेगा।
अवशिष्ट समय जितना तेरा, उतने ही दिन रह पायेगा ॥ ५ ॥
जैसे ऐक्टर रग मच को, कृत्रिम स्वय समझता है।
त्यों ब्रह्मवेत्ता जग का मिथ्या, रूप समझ नहिं फँसता है ॥ ६ ॥
मृत्यु के समय बन्धु बान्धव, जो रोते और चिल्लाते हैं।
सब हैं स्वार्थ के वशीभूत जो, सहानुभूति दिखाते हैं ॥ ७ ॥
ससार में कोई नहीं तेरा, स्वारथ से सब की प्रीति है।
जो ज्ञानी इसमें नहीं फंसा, बस उसने बाजी जीती है ॥ ८ ॥
दुर्गुण दुर्गुणी देखता है, सद्गुणी को गुण दिखलाता है।
जैसी जिसकी भावना है वह नर, वैसा ही बन जाता है ॥ ९ ॥
मति हो जैसी गति होती है, अरु अन्त गति-सी होय मति।
यों उच्च नीच भावों के साथ, होती जीवों की गतागति ॥ १० ॥
दोषी को देख घृणा करके, या बुरी भावना लावोगे।
तो क्रोध द्वेष अरु हिंसा से, तुम खुद द्वेषी बन जावोगे ॥ ११ ॥
काम क्रोध अरु मत्सरता, हिंसा अरु वैर यह तस्कर है।
मन मन्दिर मे न प्रवेश करै, रखना हुशियारी अफ़सर है ॥ १२ ॥

❀ मन ❀

जिमि सूर्य की किरणें शीशे पर, आगि बन कर सताती है।
त्यों मन एकाग्र बनाने से, अद्भुत शक्ति प्रकटाती है ॥ १ ॥
हार जीत भी मन से है, उन्नति अवनति भी मन पर है।
सुख दुख भी मन का ही मानो, बन्धन अरु मुक्ति मन पर है ॥२॥
मन रूप निरंकुश हाथी को, जो अपने वश में लाते हैं।
तीक्ष्ण ज्ञानांकुश से व नर, संसार में ख्याती पाते हैं ॥ ३ ॥
यह मन बगुले का रूप धरे, तब ममता मछली खाता है।
शास्त्र शास्त्र मोती चुगता जब मन हंसा बन जाता है ॥ ४ ॥
मन मन्दिर में प्रभु को बैठा रखने की कोशिश करना तुम।
चंचल मन वश और लगा, भव सिन्धु सहज में तरना तुम ॥५॥
जो इन्द्रिय भोग में सुख माने, वह शुद्ध नहीं मन होता है।
आत्मानन्दी इन भोगों में, आसक्त कदापि न होता है ॥ ६ ॥
मन पवित्र नहिं होने से, वैराग्य का रंग नहिं चढ़ता।
यह सफल कामना कर्मों का, मोड़े से भी नहिं मुड़ सकता ॥७॥
बस यही विजय सर्वोत्तम है सब विजयों का है सार यही।
अपने ही मन पर विजय करो, विजयी का है आधार यही ॥८॥
पहले तुम साफ जिगर कर लो, जो मालिक को अपनाना है।
नापाक हृदय से मालिक को अपना भी गुमाह कमाना है ॥९॥
मन के अपराध का दण्ड यही है, पश्चाताप को लाओ तुम।
मन जब कुपथ जाते देखो, तो ज्ञान लगाम लगाओ तुम ॥१०॥
मन की शुद्धि के बिन मित्रों ! यह ज्ञान शुष्क कहलाता है।
पुण्य पुण्यारम्भ के बल से ही पुण्य भला बन पाता है ॥ ११ ॥
चोरों को वश में करने को जो मेहनत बहुत उठाते हो।

इससे अच्छा तो निज मन को ही, क्यो नहीं वश मे लाते हो ॥१२॥
चंचलता मन की नष्ट होय, तव यह सुस्थिर हो पाता है।
आत्मिक आनन्द का अनुभव भी, फिर शीघ्र उसे हो जाता है ॥१३॥
इन्द्रियो पै मन की प्रभुता है, मस्तिष्क उसी का दफ्तर है।
इस मन को जो वश मे करले, कब्जा उसका सव तन पर है ॥१४॥
कल्पना तर्क अनुमान ज्ञान, निर्णय रुचि अरु धारणा ध्यान।
ऐसी अनेक शक्तियां जान, रहती हैं मन के दरम्यान ॥ १५ ॥
मन अगर कुपथ में जावे तो, तन को कावू मे रखना तुम।
मन सत्पथ मे आवेगा ही, अभ्यास एक यह रखना तुम ॥१६॥
यो गुरु जगत् में बहुत मिले, पर गुरु न मन का पाया है।
जव मन का गुरु मिलेगा तव तो, आप मे आप समाया है ॥१७॥
कल्पना से मन का भूत वने, जिससे रोता चिल्लाता है।
मन की कल्पना से नरक मिले, मन से ही स्वर्ग मे जाता है ॥१८॥
मन की कल्पना से स्वप्न उठे, मन ही से मगज फिर जाता है।
जिस समय कल्पना नष्ट होय, आनन्द अपूर्व प्रकटाता है ॥१९॥
मन निग्रह का यह चमत्कार, फौरन् दिखलाई देता है।
विज्ञान मिस्मेरेजम प्रयोग भी, दर्द रफा कर देता है ॥ २० ॥

॥ ध्यान ॥

अग्नि का छोटा-सा स्फुलिंग, सव ईंधन भस्म वनाता है।
शुद्धात्म ध्यान रूपाग्नि त्यों, दुष्कृत्मय कर्म जलाता है ॥ १ ॥
जितना ही अधिक ध्यान करके, आन्तरिक वात अपनाओगे।
उतने ही वाह्य जगत् से हट, तुम शांति-धाम में जाओगे ॥ २ ॥

॥ प्राणायाम ॥

नासिका का बाँया श्वास चन्द्र दांया स्वर सूर्य कहाता है ।
दोनों स्वर से वायु निकले, सुषुम्णा यही कहलाता है ॥ १ ॥
चन्द्र स्वर से श्वास खेंच आभ्यन्तर करना पूरक है ।
कुछ काल रोकना कुम्भक है, छोड़ना सूर्य से रेचक है ॥ २ ॥
सात ओ३म् का पूरक है, और बीस ओ३म् कुम्भक जानो ।
सात ही ओ३म् का रेचक है, यह सब गुरु से पहिचानो ॥ ३ ॥
यों ही अभ्यास बढ़ाने से चित्त की चंचलता जाती है ।
बलवान् हृदय बन जाता है, और शांति भी बढ़ जाती है ॥ ४ ॥
पूरक रवि से शशि से रेचक, यों लोम विलोमी हैं चारों ।
नियमित होकर अभ्यास करो, यह सदुपदेश मन में धारो ॥ ५ ॥
भाव विशुद्ध पुनीत नीति इन्द्रिय दम आदिक नियम धरो ।
आत्मानन्द में हो विलीन यह विशुद्ध प्राणायाम करो ॥ ६ ॥

॥ पाँच समवाय संयोग ॥

चित्रित मयूर के पर होना और कांटा तीक्ष्ण बन जाना ।
तिलों में तेल पुष्पों में गन्ध ये स्वाभाविक होना पहिचानो ॥१॥
खेती पकना पुत्र का होना अरु मौसम का पल्टा जाना ।
मिथ्यात्वी का समदृष्टि बनना ये काल धर्म का है बाना ॥२॥
पुरुषारथ बिन भूखे मरत अरु खेती भी नहीं होती है ।
विजय पढ़ाई राज्यपाट बिन पुरुषारथ के खोती है ॥ ३ ॥
निर्धन, धनी दुख, सुख आदि अरु रंक भूप हो जाता है ।
प्रारब्ध ही कर्ता है, पुरुषार्थ वृथा कहाता है ॥ ४ ॥
भावी के सम्मुख देखा जगत् में कौन खड़ा रह पाता है ।

एडवर्ड अष्टम् को भावी, शाही तख्त छुड़ाता है ॥ ५ ॥
स्वाभाव. काल पुरुषार्थ, अरु प्रारब्ध भावी जानो ।
ये पाचों ही सम्वाय संयोग, जगती तल मे पहिचानो ॥ ६ ॥

॥ नीति ॥

थाड़ जीने के लिए, जनता के अधिकार कुचलते हो ।
ईश्वर से विमुख हो देशद्रोही, क्यों परमार्थ से टलते हो ॥ १ ॥
सदा न्याय की बात कहो, चाहे जग रूठे रूठन दो ।
निज ध्येय पै अपने डटे रहो, पर सत्य को कभी न छूटन दो ॥२॥
क्रोध क्षमा नेकी से बदी, नीचता प्रेम द्वारा सहना ।
असत्य सत्य से विजय करो, जो है उन्नति पथ का गहना ॥ ३ ॥
हृदय से जो शासन होता, वह नहिं दिमाग से होता है ।
हृदय बीच है प्रेम भरा, मस्तिष्क में तामस होता है ॥ ४ ॥
कहने वाले बहुत मगर, करने वाले की पूजा है ।
हलवाई पकवान करे पर, खाने वाला दूजा है ॥ ५ ॥
तृष्णावान् भिखारी को, उपदेश असर नहिं करता है ।
पड़ता प्रभाव उस नृप पर जो, तज राज्य तपस्या करता है ॥ ६ ॥
धर्मी बनते-बनते तुम, धर्मान्ध कदापि नहीं बनना ।
धर्मान्ध प्राण पर का हरता, हर्गिज यह पाप नहीं करना ॥ ७ ॥
जहा सत्य वहा लिहाज नहीं, लिहाजू सत्य न कहाता है ।
तम उद्योत् के अनबनवत्, यह सत्य सत्य ही रहता है ॥ ८ ॥
प्रजा के दुख अन्याय शोध, नीति को तू अपने उर धर ।
राजा भी है मेहमान मौत का, सामा जाने का कर ॥ ९ ॥
यदि अधिकारी बने पुण्य से, प्रजा का हित करना चाहिये ।
[illegible] न जिसका खाता है, उस प्रजा के हित मरना चाहिये ॥१०॥

॥ उपदेश ॥

जो खुद आपदा सहन करके औरों की विपद् मिटाता है।
वह अपना हित करता है, जग में अनुपम सुयश कमाता है ॥१॥
भूतकाल से वर्तमान का, मेल कभी नहीं खाता है।
शक्ति शरीरायुष्यादिक में, फर्क बहुत हो जाता है ॥ २ ॥
भव-भ्रमण बन्द हो जल्दी ही, जिज्ञासा जिसकी ऐसी है।
उसका कल्याण जरूरी है और वह नर आत्म-हितैषी है ॥ ३ ॥
क्रोधादिक कषाय तज कर, कृत पापों पर पछताओ तुम।
और नये पाप से बच रहो, जीवों पर करुणा लाओ तुम ॥ ४ ॥
तू ही तेरा शत्रु है, और मित्र भी तेरा तू ही है।
सुखदाता तेरा तू ही है दुखदाता तेरा तू ही है ॥ ५ ॥
पापदृष्टि सर्वत्र सदा ही विकृत मार्ग अपनाता है।
आ मूरख ! मौत खड़ी सिर पर क्यों घोर नरक में जाता ॥ ६ ॥
विजयी हो तो अन्त समय नहीं चूके यही भावना है।
यदि अन्त समय में चूक गया तो दुख में दिवस बीतना है ॥ ७ ॥
ज्ञान सहित यदि क्रिया करे, तो आवागमन मिटाती है।
अज्ञान क्रिया करने से आत्मा सद्गति कभी न पाती है ॥ ८ ॥
स्वाच्छन्द्य और प्रतिबन्ध यही, प्राणी के भारी बन्धन हैं।
बिन कटे फन्द कब हो आनन्द गुरु तेरा बन्ध निकन्दन है ॥ ६ ॥
नीरोग महत्ता पवित्रता कर्तव्य-परायणता पाना।
करना नित्य प्रति महत् कार्य, यह श्रेष्ठ पुरुष का है बाना ॥ १० ॥
जीवन बहुमूल्य समझ अपना हर एक पल प्रभु स्मरण का है।
दृढ़ विश्वास भी व्यर्थ नहीं जावे यह कारण शुद्धि मनन का है ॥११॥
काम क्रोध मद लोभ मोह हैं तस्कर के सरदार बड़ी।

समझो और निकालो इनको, मन में भरे विकार यही ॥ १२ ॥
दीन हीन सबको देखै, पर दीन न देखा जाता है।
जो करै दीन पर दया-दृष्टि, वह दीन-बन्धु कहलाता है॥ १३ ॥
पढ़ लिया इल्म नहीं किया अमल, खर पर चन्दन को ढोया है।
नेकी के बदले बदी करे, वह समझो नरभव खोया है ॥ १४ ॥
जिस पुण्य से जाते स्वर्ग बीच, फिर जग में गोते खाते हैं।
उस पुण्य से तो है पाप भला, जो भोग मोक्ष में जाते हैं ॥ १५ ॥
जो गुस्से को पी जाते हैं, औरों को माफी देते हैं।
इस राह पै चलने वाले ही, ईश्वर वश में कर लेते हैं ॥ १६ ॥
ऊपर से तो सिद्धान्तों से, द्वेष नहीं बतलाते हैं।
पर अन्त करण में अभिमान् रख, नहीं उसे अपनाते हैं ॥ १७ ॥
नरक गती में पापो से, और पुण्य से स्वर्ग सिधाता है।
शुभ और अशुभ मनुजतन, और माया से पशू कहाता है॥ १८ ।
पत्नी कहती पति से यों, तुम गंगा के तट पर जाना।
मैं पतिव्रत धर्म सुनने जाऊँ, तुम साड़ी लॅहगा धो लाना॥ १९ ॥
तू कौन कहा से आया है, तूने क्या यहा कमाया है।
अन्तर दृष्टी को खोल देख, क्यों आवागमन मचाया है॥ २० ॥
लघुता गुरुता वियोग योग, और हर्ष शोक का जोडा है।
चढ़ना गिरना, उदय अस्त, सुख दुख का जग में जोड़ा है॥ २१ ॥
जन्मा वह मरता है आखिर, जो फूला वह कुम्हलाता है।
जिस जीव की प्रीति जहा पर हो, वह जन्म वहां पर पाता है॥२२॥
जिसके तुम मालिक बनते हो, उसके बन्धन में बॅधते हो।
सुख दुख सब मन का माना है, बिन नम्र भाव नहिं सधते हो॥२३॥
जीना जग-जीव चाहते हैं, मरना न किसी के मन भाता।
यह जान जीव पर दया करो, यों धर्म शास्त्र है बतलाता॥ २४ ॥

वह हिंसक ही दुख पाता है, नहिं देवी देव बचाता है ॥ ३७ ॥
बलिदान के द्वारा नहीं कभी, ईश्वर प्रसन्न हो सकता है ।
बलकर्ता ही भव सागर में, युग-युग इस हेत भटकता है ॥ ३८ ॥
कामादिक का बलिदान करो, ईश्वर प्रसन्न हो जायेगा ।
जग में निश्चय, बलिदान यही, फिर सर्वोत्तम कहलायेगा ॥ ३९॥
शान्त चित्त मोक्षाकाक्षी, वैराग्यवान् करुणा सागर ।
आत्म हितैषी वही पुरुष, और समझ उसी को गुण आगर ॥४०॥
सच्चा पुरुष वही है जग में, सत्य अहिंसा नहिं छोड़े ।
मरने से कभी नहीं डरता, प्रभु भक्ती से नहिं मुँह मोडे ॥ ४१ ॥
हिंसा चौर्य कुसंगादिक, अन्याय जैन नहिं करता है ।
विषय लालसायुक्त हार, विहारादिक सब हरता है ॥ ४२ ॥
जैन धर्म की नीति अहिंसा, सत्य और आरोग्यदान ।
उद्यम जप तप दुर्व्यसन त्याग, इन सब में सेवा भाव-प्रधान ॥४३॥
वीतराग का वचनामृत यह परम शान्ति का कारन है ।
सब रोगो की यह औषधि है, भय दन्ती दन्त विदारन है ॥ ४४ ॥
प्राणिमात्र का रक्षक है, हितकारी और सुखदाता है ।
भव-बन्धन में बंधे हुवे, सब दुखी जीव का त्राता है ॥ ४५ ॥
मारना कभी नहिं सीखा है, बस सीखा है जिसने मरना ।
बस वही पुरुष है जगद्वन्द्य, सीखा उसने ऊँचा चढ़ना ॥ ४६ ॥
जन्म से नहीं मनुष्य बने, मानुष्य करण एक शक्ती है ।
शिक्षा से शक्ति संस्कृत करता, सर्व मान्य वह व्यक्ती है ॥ ४७ ॥
जिस मनुष्य में पुरुषत्व नहीं, नर-रूप-पशू उसको जानो ।
आहार घास भूसा पशु का, अन्नोदक नर-पशु का मानो ॥ ४८ ॥
एक क्षण का भी आलस्य बुरा, वर्षों प्रमाद में जाता है ।
क्यों समय गँवाता इस प्रकार, मूरख कुछ ध्यान न लाता है ॥४९॥

आत्मा यह एक अपूर्व वस्तु, जब तक शरीर में रहती है ।
कितने ही वर्ष बीते पर यह तन को न बिगड़ने देती है ॥५०॥
जीव रूप पक्षी शरीर घर, में विश्रान्ती पाता है ।
यदि यह उसको अपना समझें तो मिथ्या प्रेम बढ़ाता है ॥ ५१ ॥
शुभाशुभ परिणाम जीव के बार बार पलटाते हैं ।
पुद्गलवत् परिमाणु खींच, कर कर्म रूप बन जाते हैं ॥ ५२ ॥
पुण्य पाप आयुष्य यह तीनों औरों को नहिं दे सकते ।
प्रत्येक इन्हें खुद ही भोगे ये टाले से नहिं टल सकते ॥ ५३ ॥
सम दर्शन मिथ्या रोग हरे, रोगों से ज्ञान बचाता है ।
नित्य पुष्टि करता चारित्र वीतराग वैद्य सिखाता है ॥ ५४ ॥
द्रव्यानुयोग में द्रव्य वर्णन चरणानुयोग चारित्र मनन ।
गणितानुयोग में द्रव्य गणत है धर्म कथा में धर्म कथन ॥५५॥
मनन करो प्रभु शिक्षा को और हृदयधराजू पर तोलो ।
चौथमल का कथन यही श्री जगद्गुरु की जय बोलो ॥५६॥

❀ दोहा ❀

ज्ञानी फल ज्ञान का, विरती धर्म बतलाय ।
जगत पूज्य है वह पुरुष वन्दनीय कहलाय ॥ ५७ ॥
परदारमक हों बहुत पर निन्दक एक न होय ।
वह मनुष्य संसार में, गफलत में रहे सोय ॥५८॥
नित्य निरंजन, ज्ञानमय को सुमिरो हर बार ।
तो मनुष्य जीवन बने और मिलसे कुछ सार ॥५९॥
कई बार ये मिल चुके, माया सुख परिवार ।
लिप्त हुआ अज्ञान में मूल न करे विचार ॥६०॥

गुलशन में गुल खिला देखकर, मन में मुदित अपार।
चटक मटक यह चन्द दिन, है आखिर निस्सार॥६१॥
सुमिरन कर भगवान का, नर-तन का यह सार।
सद्गुरु की सेवा करो, तजो कपट हकार ॥६२॥
गंगा तटनी के निकट, कानपूर शुभवास।
उन्नइस सौ चौरानवें, किया सुखद चौमास ॥६३॥

शुष्काध्यात्मसाशय विन समझे जो व्यवहार उठाते हैं।
वे खुद को और दूसरों को भी, अधोगति पहुचाते हैं ॥६४॥
निर्धन कहे धन हो धर्म करे धन गया कहे नहीं धर्म किया।
धन के मद मे धनवान पड़े, मर प्रेत योनि मे जन्म लिया ॥६५॥
प्राण तजा जग जाल कटा, तूं क्यो नहीं लाभ कमाता है।
कब किस का नाम रहा जग में, फिर व्यर्थ ममत्व बढ़ाता है॥६६॥

मद्य मास को मन्दिर में, नहिं कभी पुजारी लाने दे।
तो इसके भक्षक को परमेश्वर, कब वैकुण्ठ मे जाने दे ॥ ६७ ॥
दिया सुपात्र-दान ग्वाला भव, शालिभद्र शुभ ऋद्धि पाई।
गज भव अभय दान दीन्हा, तो मेघ कुमार देह पाई ॥ ६८ ॥
जैन धर्म का उद्देश्य वास्तव, जगत् दुखों का बाधक है।
जाति देश, समाज आत्मा, की उन्नति का साधक है॥ ६९ ॥

रख भेद भाव को अज्ञानी, डूबे खुद और डुबाते हैं।
जैन मुनि से ज्ञान श्रवण कर, अन्तर मल नहीं धोते हैं॥ ७० ॥
आजीविका, स्त्री, प्रतिष्ठा हित, विधर्मी तक बन जाते हैं।
जाति धर्म का गौरव तज, उत्तम कुल से गिर जाते हैं ॥ ७१ ॥
थोड़े जीने के लिये दीन, जनता के अधिकार कुचलते हो।
ईश्वर से विमुख हो देश द्रोही, क्यों परमार्थ से टलते हो ॥ ७२ ॥

सदा न्याय की बात कहो, चाहे जग रूठे रूठन दो ।
निज ध्येय पै अपने दृढ़ रहो, पर सत्य को कभी न छूटन दो ॥७३॥
क्रोध क्षमा नहीं न बही, नीचता मम द्वारा सहना ।
अमल सत्य से विजय करो आ है उन्नति-पथ का गहना ॥७४॥
जिसन सद्गुरु का वचनामृत आदर पूर्वक धारण कीन्हा ।
अन्त करणान्तर्मुखवृत्ता ममरूप आनन्द लीन्हा ॥७५॥
जूआ मांस मदिरा शिकार वेश्या चोरी अरु परनारी ।
ये सातों नर्क के रास्ता हैं, इनका तजना है अनिवारी ॥७६॥
शान्त सरल प्रिय कोमल वचन, अरु धाम बोलनेका कीजे ।
पर उपकार करो दुख में मत कदापि बाधा दीजे ॥७७॥
मत बैर करो किसी संग, समझ तुझे कब तक जीना ।
कितने दिन तो सुख भोगेगा, ज्ञानी के वचनामृत पीना ॥७८॥
साढ़ तीन हाथ भूमी बस, यह तन इक दिन माँगेगा ।
राजा हो या रंक एक दिन अवश्य यहां से भागेगा ॥७९॥
तू चाहे जितना अर्थी हो, जीविका हित अन्याय न कर ।
अन्याय द्रव्य नहिं टिकने दे इस शिक्षा को अपने उर धर ॥८०॥
अधम कृत्य करके क्यों पामर अशुभ मार्ग पर बढ़ते हो ।
धन के अभिमान में आकर क्यों तुम अधोगति में पड़ते हो ॥८१॥
क्रोध का छूमन्तर है क्षमता, मान का मन्त्र नम्रता है ।
लोभ का छूमन्तर संतोषता कपट का मन्त्र सरलता है ॥८२॥
चक्रव्यूह में फँसे हुए जन को सिद्धान्त सुनाता है ।
क्यों दुनिया के जंजाल बीच फँसकर यह जन्म गँवाता है ॥८३॥
अज्ञानी की हर सूरत में दुष्कर्मों से रक्षा कीजे ।
रात बालक के भी हाथों से जहर तुरन्त छीन लीजे ॥८४॥
तेरह चौदह की बात करो पहला गुण ध्यान नहीं छोड़ो ।

अनन्त बार बकवाद किया अब निश्चय से नाता जोडो ॥ ८५ ॥
निश्चय से युत् व्यौपार किया, उसने भव बन्धन तोड़ा है।
जो व्यर्थ विवाद बढ़ाता है, वह जाग से खाता जोड़ा है ॥ ८६ ॥
अशुद्ध भावों से अनन्त गुण, शुद्ध भाव सुख दाता है।
अशुभ भाव सचित कर्मों को क्षण में शुद्ध खपाता है ॥ ८७ ॥
अपने कल्याण की वास्तव में, वह कुञ्जी पास तुम्हारे है।
अन्तर्दृष्टी को खोल देख, क्यों बाह्य निमित्त निहारे है ॥ ८८ ॥
फर्स्ट क्लास के रिजर्व डिब्बे में, बैठ आनन्द मनाते हो।
स्टेशन आने पर क्या करना, आगे का न ख्याल लाते हो ॥ ८९ ॥
जो नारी हो तो पतिव्रता, तो पति भी पत्निव्रत होना।
नीति विपरीत दोनों चल के, अपनी प्रतिष्ठा नहीं खोना ॥ ९० ॥
कि समय सम दशा उत्तम, नरियल सम मध्यम बताया है।
अधम पुरुष बदरी फलसा महा अधम पुगीफल गाया है ॥ ९१ ॥
उत्तम भोग तजे अनर्थ लख, मध्यम जाने नही तजता ।
अधम भोग मे आनन्द माने, अधमाधम भोगो हित सुरता ॥ ९२ ॥
तानिक करणी अधिक फल चाहे, प्रत्यक्ष धर्म बचना है ।
स्वर्ग तो रहा दूर मगर, दुर्लभ तन नर का मिलना है ॥ ९३ ॥
जीवन पर्यन्त जो क्रोध रखे, वह अधोगति मे जाता है।
उर्ध्वगति में जाने वाला, क्रोध को शान्त बनाता है ॥ ९४ ॥
पूजक सच्चा ईश्वर का वह, जो परोपकार को करता है ।
उसे ईश्वर का द्रोही जानो, जो परोपकार परिहरता है ॥ ९५ ॥
अधिक प्रतिष्ठा चाहे वह, उपहास्य का पात्र कहाता है ।
जितनी योग्यता अपनी है, वह शेष प्रतिष्ठा चाहता है ॥ ९६ ॥
प्रतिष्ठा नहीं धन सग्रह में, जो त्याग बीच बतलाई है ।

बिगाड़ में नहीं महत्त्व परा, जो सुधार में दिखलाई है ॥ ९७ ॥
धर्मी के विपक्षी अपयश हो और उसकी यही कसौटी है।
ऐसे महत्त्वशाली पुरुषों की एक यही बात अनूठी है ॥ ९८ ॥
हिंसा प्रतिहिंसा इर्ष्या द्वेष, मात्सर्य अवात्सल्य आदि जान।
जिस समाज में यह दूषण हो उसका कब होता है कल्याण ॥ ९९ ॥
उपदेशक कहे कषाय तजो और खुद कषाय में जलते हैं।
लगी कालिमा वाले मुख पे पर से शीशा नहीं लखते हैं ॥ १०० ॥
मुकदमों में उम्र सारी गुजारी बदनामी खूब कमाई है।
तनिक द्रव्य द सस्था में लिया मेंबरों में नाम लिखाई है ॥ १०१ ॥
प्रिय वचन और विनय पत्र दे दान दुखी की पीर हरन।
पर गुण ग्राहीवर्ती जिसकी अमूल्य मंत्र यह वशीकरन ॥ १०२ ॥
इस भव में कर काज सिद्ध नहीं इच्छा तो जग में फिर ले।
बिना मोक्ष के सुख नहीं हो, शिक्षा हृदे बीच धरले ॥ १०३ ॥
प्रात हुई ग्रम्य नींद खुली अब भाग नींद से भा जागे।
गया प्रमाद में अनंत काल अब तो सत् पथ पे तुम लागो ॥ १०४ ॥
नर होवे चाहे नारी हो चाहे नग्न अनाम विरक्ती हो।
जैनी हो चाहे अजैनी हो होते कषाय नहीं मुक्ति हो ॥ १०५ ॥
सम्प्रदाय वाद के जोश में आ एक दूजे की बुराई करते हैं।
श्रावक साधुता दूर रही समदृष्टि भाव भी हरते हैं ॥ १०६ ॥
निन्दा करो तो पापों की पापी की निंदा मत करना।
गुणग्राही बनना है तुम को ना गैरों के दुर्गुण धरना ॥ १०७ ॥
जो जुदा करे बस कैंची को भूमि पर डाली जाती है।
जो एक करे बस सुई को पगड़ी में रक्खी जाती है ॥ १०८ ॥
काम क्रोध मद लोभ चार, ये नर्क द्वार हैं पहिचानों।
शीघ्र तजो नहिं देर करो है शिक्षा सतगुरु की मानों ॥ १०९ ॥

सतोष दया और शील क्षमा, ये मुक्ति द्वार चारों ।
"जो इसको अपनायेगा, वह कल्याण पायगा" सच मानो।११०।
जिस महा पुरुष के द्वारा, जग-आवागमन मिटाता है ।
एक जीव अशुभ कर्मोदय से, ससार अनन्त चढ़ाता है ॥१११॥
सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुन, देश काल का ज्ञाता हो ।
जो श्रोता का हृदय लखे वह, वक्ता उपदेश का दाता हो ॥११२॥
सरल नम्र आत्म-हितेच्छु, जिज्ञासु ऐसा होता है ।
वक्ता से ज्ञानामृत पीकर, वह पाप कालिमल धोता है ॥११३॥
सिद्धान्त पढ़ा और मनन किया, आतम प्रकाश जो पाया है ।
कुछ हिस्सा जिसका श्रोता को, लिख मैंने समझाया है ॥११४॥
मुक्ति-पथ पर मनन करो, और हृदय तराजू पर तोलो ।
चौथमल का कथन यही, श्री महावीर की जय बोलो ॥११५॥

❀ दोहा ❀

गगा तटनी के निकट, कानपुर शुभ वास ।
उनइस सौ चौरानवे, किया सुखद चौमास ॥११६॥

गैरों के सद्गुण देख-देख, नहीं तुम्हें तनिक कुढ़ना चाहिये ।
उनसे प्रसन्न हो अपनी भी, आदत वैसी करना चाहिये ॥११७॥
जो पढ़ो सुनो और देखो तुम, बस सार ही उसका ग्रहण करो ।
निस्सार छोड़ने की आदत, उस हंस से भी ग्रहण करो ॥११८॥
हंसवत् बुद्धि सुस्फटिक हृदय और मन को शान्त बनाओ तुम ।
मस्तक विशाल मध्यस्थ दृष्टि, अमृतमय वाक्य सुनाओ तुम।११९।
अन्याय दूसरों पर करके, खुद न्याय की आशा करते हो ।
हर्गिज यह ब[illegible] में पड़ते हो ॥१२०॥

जिस बात का औरों के ऊपर तुम दोष व्यर्थ ही मढ़ते हो।
तुम में भी तो हैं यह त्रुटियां,इस ओर तनिक नहिं बढ़ते हो॥१४

ऊंचा पद पाने के पहले यह तुम्हें जान लेना चाहिये।
इसका अन्त तक निभाना है, यह तुम्हें मान लेना चाहिये॥१५

चन्दन को कुल्हाड़ी काटे है, यह उसे सुगन्धित करता है।
सज्जन बनने वाला नर भी, यह उदाहरण मन धरता है॥१३॥

सच को साक्षी या सौगंध की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
निश्चल आत्माओं के दिल पर परसों की जड़ आजमती है॥१४

जो दुखियों पर नित्य दया करे यह हर्गिज दुख नहीं पाता है।
जो हाथे जुल्म बेकसों पर वह पाप में दिवस बिताता है॥१२

जो अपना अनहित आप, पूछ अपने हाथों से करते हैं।
दिन में वे मानों कुएं बीच निज आँख मूंद कर गिरते हैं॥१२

जो भिन्न भिन्न कारण निमित्त उनका कुछ दोष नहीं मानों।
तुम अपनी बढ़ती घटती का भी, उपादान खुद को जानों॥१२

स्वातन्त्र्य प्राप्त करते करते स्वच्छन्द नहीं बन जाना तुम।
और शुद्ध मग के पाते ही, कहीं मोह में मत फंस जाना तुम॥१८

छोटी सी गल्ती की भी जो, नादान उपेक्षा करता है।
तो उसी भूल से किसी वक्त उस नर का जीवन हरता है॥१२५

है पुत्र वही जो मात पिता की, आज्ञा पर डट जाता है।
हर सूरत से जीवन भर उनको पूरण सुख पहुंचाता है॥१२६

॥ ऐक्यता ।

एके पर जितनी बिंदी हों उतनी गिनती बढ़ जाती है।
बिन एके के जितनी बिंदी वे व्यर्थ समझी जाती हैं॥१

के पर एका हो तो, बल ग्यारा गुना बढाता है ।
र अलग २ एका कर दे, तो एक एक रह जाता है ॥२॥
जिस घरमें एका होता है, गुलजार वही घर देखा है ।
अरु रमा रमण भी वहां करे, यह आंखो देखा लेखा है ॥३॥
बादशाह पर विजय ताश का, एका प्रत्यक्ष पे करता है ।
मौके का एका ना टूटे शत्रु भी उससे डरता है ॥ ४ ॥
देखो बकरों की महोब्बत को, कितने कटते तो भी बढ़ते हैं ।
थोड़े नजर में आते कुत्ते, इतने आपस में कट मरते हैं ॥५॥
छोटी २ वस्तु समूह से, महत् कार्य हो सकता है ।
जैसे तृण का रस्सा, उस से गज मदोन्मत्त बंध सकता है ॥६॥

॥ क्रोध ॥

दया रूप अमृत को तजकर, क्रोध जहर को खाता है ।
फिर भी सुख की इच्छा रखता, तरस इसी पर आता है ॥ १ ॥
क्रोध आग के सदृश है, वह जलता और जलाता है ।
कटुक वचन ऐसा बोले, वर्षों की प्रीत नसाता है ॥ २ ॥
जहर से बढ़कर जहर यही, करके अनर्थ पछताता है ।
हित अनहित का नहि भान रहे, ज्ञानी अज्ञानी बनाता है ॥ ३ ॥
जीवन पर्यन्त जो क्रोध रखे, वह अधोगति में जाता है ।
ऊर्ध्वगति में जाने वाला, क्रोध को शान्त बनाता है ॥ ४ ॥
जो लोग शत्रुता करते हैं, वह खुद को नीच बनाते हैं ।
इसके समान नहीं अन्य पाप, यह बात ध्यान में लाते हैं ॥ ५ ॥

॥ वाक्य ॥

नहीं गाली दो न वृथा बोलो, नहीं चुगली करो असत् बोलो ।

परिमित बोलो प्रत्येक शब्द का, हृदय गोल माहिर खोला ॥ १ ॥
शस्त्र-घाव मिट जाता है पर वाक्य-घाव नहीं मिटता है।
जब समय समय पर याद आय, कांटे सा हृदय खटकता है ॥२॥
झूठ से सद्गुण लुप्त होय, झूठा प्रतीत उठाता है।
झूठे के मंत्र-विद्या न चले, झूठा ही माया गवाता है ॥ ३ ॥

✿ क्षमा ✿

सच्ची क्षमता तो सदा से मित्रों ! वीर-धर्म कहलाती है।
कमजोरों और कायर पुरुषों के पास फटक नहीं पाती है ॥ १ ॥
क्षमता है एक अनुपम साधन जो जन को शरण में लाती है।
और वैर भावना यहीं नहीं जन्मान्तर तक दुःख देती है ॥ २ ॥

॥ मान ॥

अभिमानी वश समुन्नति पर की क्यों चिंतित हो जाता है।
यह स्वकृत कर्म-फल है मूरख !, क्यों तू पाप कमाता है ॥ १ ॥
जहाँ मान वहाँ ज्ञान नहीं यह मान ही नीच बनाता है।
सब से छोटा खुद को समझे वह सर्वोपरि हो जाता है ॥ २ ॥
अपने से छोटों को लखके सन्तोष हृदय में लाओ तुम।
सम्पत्ती का अभिमान छोड़ मोटों पर निगाह लगाओ तुम ॥ ३ ॥
गैरों की बराबरी करने में हर्गिज मत कदम बढ़ाओ तुम।
अपना हित अनहित शक्ति देख फिर आगे कदम बढ़ाओ तुम ॥
जो मान चाहने वाला मर कर अपमान का खाता है।
अभिमान वजन के रखते मन, हल्का निर्भय हो जाता है। ४।

यस मान बड़ाई के कारण, तृष्णा को जीव बढ़ाता है ।
पै तृप्ति न इसमे होय कभी, नाहक क्यों पाप कमाता है ॥ ६ ॥
अपनेपन में है महा दुख, अरू चिन्ता का भी पार नहीं ।
जिसने अपने पन को त्याग दिया, तो सुख का रहता पार नहीं ॥७॥
खुद को पुण्यात्मा अन्य अधर्मी, समझी अभिमान नहीं करना ।
कैसा कब जीवन मे अवसर, हो जाय बात हृदय धरना ॥ ८ ॥

※ कपट ※

विचार अन्य बोले अन्य से, फिर चाल और ही चलता है ।
जितना जितना जो नमता है, उतना ही अन्य को छलता है ॥ १ ॥
मत जाल गूथ जाली हरगिज, कहीं उसमें खुद फंस जायेगा ।
तो काला मुह हो जायगा, आखिर में तू पछतायेगा ॥ २ ॥

॥ लोभ ॥

लोभी नर लालच से खुद, गैरों को दुखी बनाता है ।
भाग्य लिखा ही पावेगा, फिर क्यों नहीं क्षमता लाता है ॥ १ ॥
धन-लोलुप पर का प्राण हरे, अपना भी प्राण गवाता है ।
जैसे पतग दीपक बुझाय, खुद भी उसमे बुझ जाता है ॥ २ ॥
नित खाओ पीओ और मौज करो, तो भी तो शान्ति नहीं मिलती है ।
जिमि बर्फ का सेवन ठडा है, पर अन्त में गर्मी ही बढ़ती है ॥ ३ ॥
राहू से रविका तेज हटे, नर का यश लोभ हटाता है ।
सब पापो का मूल लोभ, सन्तोष किये सुख पाता है ॥ ४ ॥
धन प्राण ग्यारवा जग में, प्राणों से भी प्यारा है ।
धन तो नित्य रहे तिजोरी में, अरु प्राण बने रखवारा है ॥ ५ ॥
आवश्यकता से अधिक द्रव्य, ईर्ष्या, आलस्य बढ़ाता है ।

द्वेष प्रमाद पुरुषार्थ हीन, विषयासक्त हो जाता है ॥ ६ ॥
धन मान हानि, की चिन्ता तज और उम्र गई का ख्याल करो।
बीती बिसार सुध आगे की, लेकर के बेड़ा पार करो ॥ ७ ॥
इच्छित पदार्थ के मिलने से तृष्णा तो बढ़ती जाती है ।
ज्यों घृत से सींचे अग्नि को, त्यों त्यों बढ़ती ही जाती है ॥ ८ ॥

❁ सन्तोष ❁

सन्तोष है कोहनूर हीरा, अनगिनती जिसकी कीमत है।
यह सौदा खरा खरी का है वह लेवे जिसकी हिम्मत है ॥ १ ॥

❁ दोहा ❁

मङ्गलमय भगवान् को वन्दू शीश नमाय ।
सम्यक् ज्ञान चरित्र युत सत गुरु लागू पाय ॥
भक्त शरण दातार जो श्री सद्गुरु शुभ देव ।
धन प्रभु को इस दास का वन्दन होय सदैव ॥
ज्ञानी बन सतसंग किया तजा न मन हंकार ।
वो बनजारे बैलवत् गया जन्म बेकार ॥
सचिदानन्द परमात्मा सचित आतम ज्ञान ।
प्रकृति सत्व स्वरूप यह मिला गुरु से ज्ञान ॥
कूप खने मिट्टी मिले पुनि पानी वह पाय ।
धर्म करे अघनाश हो आतम सुख प्रगटाय ॥
माया युत जीवात्मा नाना योनी पाय ।
बिन माया वह आत्मा परमात्मा कहलाय ॥

पाचों तत्वों को जो लखै, बहिरात्मा कहलाय ।
अन्तरात्मा मोह तजे, तो परमात्मा बन जाय ॥
ज्ञानी अज्ञानी लड़ें, दोनों रजक समान ।
ज्ञानी जन समता धरे, अज्ञ करैं अभिमान ॥
निश्चयसे जीव एक है, व्यवहार चतुर्दश जान ।
स्वर्ण वास्तव एक है, भूषण भिन्न पहिचान ॥
ज्ञानी फल ज्ञान का, विरती धर्म बतलाय ।
जगत् पूज्य है वह पुरुष, वन्दनीय कहलाय ॥
पर शसक हो बहुत पर, निन्दक एक न होय ।
वह मनुष्य ससार मे, गफलत मे रहे सोय ॥
नित्य, निरजन ज्ञानमय, को सुमिरो हर वार ।
तो मनुष्य जीवन बने, और निकले कछु सार ॥
कई बार ये मिल चुके, माया सुत परिवार ।
लिप्त हुआ अज्ञान में, मूर्ख न करै विचार ॥
गुल्शन मे गुल खिला देखकर मनमें मुदित अपार ।
चटक मटक यह चन्द दिन, है आखिर निस्सार ॥
सुमिरन कर भगवान का, नर तन का यह सार ।
सद्गुरु की सेवा करो, तजो कपट हकार ॥
गङ्गा तटनी के निकट, कानपुर शुभवास ।
उनइस सौ चौरानवे, किया सुखद चौमास ॥

No - 1467

पुष्प ६

॥ वन्दे जिनवरम ॥

जैन धर्म प्रबोद्धक वाटिका

संग्रह कर्ता-

जगत वल्लभ जैन धर्म के सुप्रसिद्धवक्ता पण्डित रत्न मुनि श्री **चौथमलजी** महाराज के गुरु भ्राता श्री पडित **हजारीमलजी** महाराज के सुशिष्य श्री **नाथुलालजी** महाराज

प्रकाशक—

रतनचन्द मरूपचन्द मुणोत मु० वांबोरी
जि० अहमदनगर

स्वर्गीय सेठ हनोतमलजी कोठारी के स्मरणार्थ भेट

प्रथमावृत्ति १००० } अमूल्य भेट { वीराब्द २४५६ वि० सं० १९८७

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.

॥ वन्दे वीरम् ॥

जैन धर्म प्रबोद्धक वाटिका ।

संग्रह कर्ता—

प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के गुरु भ्राता श्री हजारीमलजी महाराज के सुशिष्य श्री नाथुलालजी महाराज

प्रकाशक—

रतनचंद सरूपचंद मुणोत मु० वांबोरी—
जील्हा अहमदनगर

स्वर्गीय सेठ हनोतमलजी कोठारी के स्मरणार्थ भेट।

प्रथमावृत्ति १००० } अमूल्य भेट { वीराब्द २४५६ वि० सं० १९८७

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.

प्रिय पाठको ! प्रात स्मरणीय पूज्य पाद १००८ श्री पूज्य हुकमीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के श्री शास्त्र विशारद पूज्य वर श्री १००८ श्री मुन्नालालजी महाराज की आज्ञानुयायी कविवर सरल स्वभावी १००८ श्री हीरालालजी महाराज के सुशिष्य ज्योतिष वेत्ता पंडित मुनि श्री १००८ श्री हजारीमलजी महाराज के शिष्य नाथुलालजी महाराज के संग्रह की हुई जैन धर्म प्रबोधक शिक्षाएँ मुझे उपलब्ध होन पर जैन धर्म प्रबोधक-वाटिका" नामक शीर्षक से पुस्तक रूप में लिखा कर पाठक महानुभावों के लिये प्रकट की । जिस को पढ़कर मुमुक्षु पुरुष अवश्य उल्लेखित शिक्षाओं का अनुकरण करेंगे ।

प्रकाशक—

प्रकाशक का निवेदन

प्रिय पाठको! लिखते हुवे अति हर्ष होता है कि हमारे बांबोरी क्षेत्र में करीब आज २५ साल से संतो का चातुर्मास नहीं है।

इस साल हमारे पुण्योदय से जगत् वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता पंडित रत्न श्री चौथमलजी महाराज साहेब की कृपा से आप श्री के सुशिष्य धैर्यवान मुनि बड़े नाथुलालजी महाराज व प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री छोटे नाथुलालजी महाराज, मनोहर मधुर व्याख्यानी मुनि श्री रामलालजी महाराज आदि ठाणा ३ का चातुर्मास हुवा है। अतः इसकी खुशी में, स्वर्गीय सेठ हनोतमलजी कोठारी "अहमदनगर" निवासी के स्मरणार्थ यह पुस्तक आप साहेबों के कर कमलों में भेट की जाती है।

आशा है कि आप इसे पढ़कर अवश्य आत्मिक लाभ उठावेंगे.

श्री संघका शुभचिंतक

रतनचंद मुणत

॥ श्री ॥

खुश खबर।

सर्व सज्जनों को विदित हो कि वैशाख सुदि ५ संवत् १९८९ को श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने "श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस" के नाम से एक प्रेस कायम किया है। इस प्रेस में हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी का काम बहुत अच्छा और स्वच्छ तथा सुन्दर छापकर ठीक समय पर दिया जाता है। छपाई के चार्जेस वगैरा भी किफायत से लिये जाते हैं।

अतएव धर्म प्रेमी सज्जन, छपाई का काम भेजकर धर्म परिचय देने की कृपा करेंगे, ऐसी आशा है।

निवेदक—

मैनेजर

श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,

रतलाम

ॐ

अथ नमस्कारमन्त्रः

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहुणं,

अथ चतुर्विंश-जिन नाम.

१ श्री ऋषभदेवजी, २ श्री अजितनाथजी,
३ श्री संभवनाथजी, ४ श्री अभिनन्दनजी,
५ श्रीसुमतीनाथजी, ६ श्री पद्मप्रभुजी,
७ श्री सुपार्श्वनाथजी, ८ श्री चन्द्राप्रभुजी,
९ श्री सुविधिनाथजी, १० श्री शीतेलनाथजी,
११ श्री श्रेयांशनाथजी, १२ श्री वासुपूज्यजी,
१३ श्री विमलनाथजी, १४ श्री अनंतनाथजी,
१५ श्री धर्मनाथजी, १६ श्री शांतिनाथजी,
१७ श्री कुंथुनाथजी, १८ श्री अरेनाथजी,
१९ श्री मल्लीनाथजी, २० श्री मुनिसुव्रतजी,
२१ श्री नमिनाथजी, २२ श्री अरिष्टनेमनाथजी
२३ श्री पार्श्वनाथजी, २४ श्रीमहावीर स्वामीजी,

श्री एकादश-गण-धरोंके शुभ नामः—

१ श्री इन्द्रभूतिजी, २ श्री अग्निभूतिजी,
३ श्री वायुभूतिजी, ४ श्री व्यक्तभूतिजी,
५ श्री सुधर्मस्वामीजी, ६ श्रीमण्डीपुत्रजी
७ श्री मौर्यपुत्रजी, ८ श्रीअकम्पितजी,

९ श्री अचल भ्राताजी,	१० श्री मेतारजजी,
११ श्री प्रभासस्वामीजी	

अथ बीस वेहर मान तीर्थंकरों के नाम

१ श्री सीमंधरजी,	२ श्रीयुगमन्धिरजी,
३ श्री बाहुजीस्वामी,	४ श्री सुबाहुजीस्वामी,
५ श्री सुजातजीस्वामी	६ श्री स्वयंप्रभुस्वामी
७ श्री ऋषभाननजी	८ श्री अनंत वीर्य्यजी,
९ श्री सुरप्रभुजी	१० श्री विशालधरजी,
११ श्री वज्रधरस्वामी	१२ श्री चन्द्राननजी
१३ श्री चन्द्रबाहुस्वामी	१४ श्री भुजंगजीस्वामी,
१५ श्री ईश्वरजीस्वामी	१६ श्री नेमप्रभुजी
१७ श्री वीरसेनजी	१८ श्री महाभद्रजी
१९ श्री देवयशस्वामी	२० श्री अजितवीर्य्यस्वामी

अथ सोलह सतियों के शुभ नाम

१ श्री ब्राह्मीजी	२ श्री सुन्दरीजी
३ श्री कौशल्याजी,	४ श्री सीताजी
५ श्री कुन्ताजी,	६ श्री द्रौपदीजी
७ श्री राजमतिजी,	८ श्री चन्दनबालाजी,
९ श्री सुभद्राजी,	१० श्री चेलणाजी
११ श्री शिवाजी	१२ श्रीपद्मावतीजी
१३ श्री मृगावतीजी,	१४ श्री सुलसाजी
१५ श्री दमयन्तीजी,	१६ श्री प्रभावतीजी

अथ बीस बोल तीर्थंकर गोत्र कर्मोपार्जन करने के—

(१) अर्हन्तप्रभु का गुणानुवाद करता हुआ जीव प्रशम कर्मों

का नाश करे और उत्कृष्ट रसायन प्राप्त होतो तीर्थंकर गोत्र कर्मोपार्जन करे।

(२) श्री सिद्ध परमात्मा का गुणानुवाद करता हुआ जीव।

(३) आठ प्रवचन दया माता के सम्यक् प्रकार आराधन करता हुआ जीव।

(४) गुणोपेत गुरु महाराज का गुणानुवाद करता हुआ जीव।

(५) स्थेवर भगवंतों के गुणानुवाद करता हुआ जीव।

(६) बहु सूत्रीजी महाराज का गुणानुवाद करता हुआ जीव।

(७) तपस्वी मुनियों के गुणानुवाद करत हुआ जीव।

(८) पढ़े हुए ज्ञान को वारम्वार फेरता हुआ जीव।

(९) सम्यक्त्व निर्मल पालन करता हुआ जीव।

(१०) दश तथा पिचपन प्रकार का, चतुर्विध जैन सघ का विनय करता हुआ जीव।

(११) कालोकाल शुद्ध भावों से प्रतिक्रमण करता हुआ जीव।

(१२) ग्रहण किये हुए प्रत्याख्यान निर्मल पालन करता हुआ जीव।

(१३) धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्याता हुआ जीव।

(१४) द्वादश प्रकार का तप करता हुआ जीव।

(१५) अभय दान सुपात्र दान देता हुआ जीव।

(१६) चतुर्विध जैन संघ का विनय वैयावृत्य करता हुआ जीव।

(१७) प्राणी मात्र को साता (आराम) देता हुआ जीव।

(१८) अपूर्व ज्ञान पठन पाठन करता हुआ जीव।

(१६) जिन प्रणीत सिद्धान्तों का विनय करता हुआ जीव।

(२०) ग्राम नगर, पुर-पाटन विचरता हुआ जिन प्रणीत निग्रन्थ प्रवचन रूप धर्म का प्रचार करता हुआ और मिथ्यात्व का क्षय करता हुआ जीव उत्कृष्ट रसायन को प्राप्त होतो तीर्थंकर गोत्र कर्मोपार्जन करे।।

❀ अथ मोक्ष प्राप्ति के २३ नियम ❀

(१) द्वादश प्रकार का कठिन तप धारण करे तो शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति हो।

(२) धर्म ध्यान में रमण करने से शीघ्रतया मोक्ष की प्राप्ति हो।

(३) सूत्र सिद्धान्त श्रवण करे तो जीव को शीघ्रतया मोक्ष की प्राप्ति हो।

(४) सूत्र सिद्धान्तों का पठन पाठन करे तो जीव को शीघ्र तथा मोक्ष की प्राप्ति हो।

(५) पंचेन्द्रियों का दमन करे तो जीव को शीघ्रतया मोक्ष की प्राप्ति हो।

(६) छः कायाओं के जीवों की रक्षा करे तो जीव को शीघ्र तथा मोक्ष की प्राप्ति हो।

(७) भोजन के समय साधु मुनिराज का अनिमित्तिक शुद्ध आहार पानी बेहराने की भावना भावे तो जीव को शिघ्रतया।

(८) सूत्र सिद्धान्त आप पढ़े अन्य को पढ़ावे तो।

(९) नव कोटी प्रत्याख्यान करे तो शीघ्र तया।

(१०) जिन प्रणीत दया धर्म पर विश्वास रखे तो शीघ्रतया।

(११) कषायों का क्षय करे तो शीघ्रतया।
(१२) क्षमा करे तो शीघ्रतया।
(१३) धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्याने वाला शीघ्रतया।
(१४) स्वकृत पापों की सुगुरुओं के समक्ष आलोचना कर प्रायश्चित ग्रहण करेतो शीघ्रतया।
(१५) शुद्ध भावों से शील का पालन करे तो शीघ्रतया।
(१६) निर्वद्य भाषा बोले तो शाघ्रतया।
(१७) सर्व जीवों को आराम पहुंचावे तो शीघ्रतया।
(१८) ग्रहण किया हुआ चारित्र भार को पार पहुंचावे तो शीघ्रतया।
(१६) सम्यक्त्व निर्मल पालन करे तो
(२०) मास में ६ पौषध करे तो शीघ्रतया।
(२१) उभय काल का शुद्ध भावों से सामायिक प्रतिक्रमण करे तो शीघ्रतया।
(२२) पीछली रात्रिकी की धर्म जाग्रणा करे तो शीघ्रतया।
(२३) सुगुरु की साक्षी पूर्वक आलोचनादि कर संथारा करे तो शीघ्रतया जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो।

❀ अथ शील की ३२ उपमा ❀

(१) ग्रह,नक्षत्र ताराओं में चन्द्रमा जी वडे ज्यों सर्व व्रतों में शील व्रत बड़ा और प्रधान।
(२) सर्व आकरों में रत्नों की आकर (खान) वडी ज्यों।
(३) सर्व रत्नों में वेडुर्य-रत्न बड़ा और प्रधान ज्यों।
(४) सर्व भूषणों में मस्तक का मुकुट बड़ा और प्रधान ज्यों।
(५) सर्व पुष्पों में अरविन्द कमल का पुष्प बड़ा ज्यों।
(६) सर्व वस्त्रों में क्षेम-युगल कपास का वस्त्र बडा ज्यों।

(७) सर्व वृक्षों में गोशीर्ष और बावना चन्दन बड़ा ज्यों।
(८) सर्व पर्वतों में चूलहेम पवत औषधियों कर के बड़ा ज्यों।
(९) सर्व नदियों में सीता और सितोदा नदी बड़ी ज्यों।
(१०) सर्व समुद्रों में स्वयम्-रमण समुद्र बड़ा ज्यों।
(११) सर्व पर्वतों में मण्डलाकार में रुचक पवत बड़ा ज्यों।
(१२) चतुष्पदों में केशरी-सिंह बड़ा ज्यों
(१३) सर्व गजों में प्रथम स्वर्ग के शक्रेन्द्र महाराज का एरावत गज बड़ा ज्यों।
(१४) नाग कुँमारों की जाति में धरणेन्द्रजी बड़ा ज्यों।
(१५) सुवर्ण कुँमारों की जाति में वेणु-इन्द्रजीबड़ा ज्यों।
(१६) सर्व देवलोक में पांचवां ब्रह्म देवलोक बड़ा ज्यों।
(१७) सर्व सभाओं में सुधर्म-सभा बड़ी ज्यों।
(१८) सर्व स्थितियों में सर्वार्थ सिद्ध निवासी देवताओं की स्थिति बड़ी ज्यों।
(१९) सर्व-रङ्गों में कर्मिचि-रेशम का रङ्ग बड़ा ज्यों।
(२०) सर्व-दानों में अभय दान और सुपात्र-दान बड़ा ज्यों
(२१) सर्व सिंघणों में वज्र ऋषभ नाराच सिंहन बड़ा ज्यों
(२२) सर्व सस्थानों में समचोरस संस्थान बड़ा ज्यों
(२३) सब-ज्ञानों में कैवल्य-ज्ञान बड़ा ज्यों
(२४) सब-ध्यानों में शुक्ल-ध्यान बड़ा ज्यों
(२५ सब लेश्याओं में शुक्ल लेश्या बड़ी ज्यों
(२६) सब-मुनियों में तीर्थंकर महाराज बड़ा ज्यों
(२७) सर्व-क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र बड़ा
(२८) सब -पर्वतों में ऊच पन में 'सुमेरु' पर्वत बड़ा ज्यों
(२९) सब -वनों में नन्दन-वन बड़ा ज्यों

(३०) सर्व-वृक्षों में जम्बू सुदर्शन वृक्ष वडा।
(३१) सर्व-सेनाओ में चक्रवर्त्त महाराज की सेना वडी।
(३२) सर्व-रथों में वासु-देव का संग्रामिक रथ वडा, ज्यों सर्व व्रतों मे शील व्रत वडा और प्रधान।

❀ अथ साधु के आठ सद्गुण ❀

१ अचाई, २ सचाई, ३ अमाई,४ वेपरवाई, ५ न्याई, ६ नर्माई, ७ प्रियवाई, ८ ञाई॥

अथ सुश्रावक के आठ सद्गुण.

१ थोडे वोले २ काम पडने पर वोले, ३ चातुर्यता के साथ वोले, ४ मिष्ट-भाषण करे, ५ अहंकार-रहित वोले, ६ मर्म,मोषा रहित वोले, ७ शास्त्रानुसार वोले, ८ सर्व जीवों को साता कारी वोले।

अथ आठ—गढों की पूर्ति नहीं होती

१ पेट के गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
२ राजा की गद्दी रूप गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
३ चिन्ता व तृष्णा रूप गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
४ स्मशान के गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
५ आग्नि के गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
६ मुक्ति के गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
७ नरक के गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।
८ निगोद के गढे की पूर्ति कदापि नहीं होती।

अथ प्राण घात में धर्म कदापि नहीं होता

१ पत्थर पर कमल कदापि ऊगे नहीं,यदि देव योग से ऊग भी जाय तो,हिंसा में धर्म होता नहीं।

२ अग्नि में कमल पैदा होता नहीं यदि दवयोग से पैदा भी हो जाय तो हिंसा में धर्म होता नहीं।

३ सन्निपातवाले को दूध मिश्री पिलानेसे बचे नहीं यदि देव योग से बच भी जाय तो हिंसा में धर्म होता नहीं।

४ केशरी- सिंह सवारी देता नहीं यदि दव योग से दे भी दतो।

५ मदोन्मत्त गज सवारी दता नहीं, यदि दव योगसे दे भी दे तो।

६ कालकूट जहर खाने पर बचे नहीं यदि कोई देव योग या औषधिप्रयोग से बच भी जाय तो।

७ सर्प के मुंह में से अमृत निकले नहीं, यदि देव योग से निकले भी तो।

८ चन्द्र मण्डल में से अग्नि के अङ्गार गिरे नहीं, यदि देवयोग से गिरे भी तो।

९ अकाल में सूर्य्य अस्त होवे नहीं यदि देवयोग से हो भी जाय तो।

१० समुद्र कार उल्लंघन करे नहीं यदि देवयोग से कर भी जाय तो हिंसा में धर्म कदापि होता नहीं।

अथ एका दश पालों से परम सुख की प्राप्ति होती है

(१) धर्म और जीवों का जानपना हो तो दया पाले।
(२) ज्ञानवान् हो तो कम बोले।
(३) बुद्धिमान् हो तो क्षमा जीते।
(४) सुसाधु की संगत करे तो संतोष की प्राप्ति हो।
(५) वैराग्य वन्त हो तो इन्द्रियों पर जय प्राप्त करे।
(६) सूत्र सिद्धान्तों का श्रोता हो तो धैर्यता धारण करे।

(७) छः काया के जीवों की रक्षा करे तो निर्भयता को प्राप्त करे

(८) मोह, मात्सर्यता को छोडे तो देव पद प्राप्त करे.

(६) साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविक रूप चतुर्विध जंगम तीर्थ को साता उपजाने से, आराम मिले

(१०) न्याय मार्ग से चले तो सुख सौभाग्य की प्राप्ति करे.

(११) शुद्ध संयम धर्म का पालन करे तो मोक्ष पद की प्राप्ति करे,

❀ अथ १४ फुटकर ज्ञान के बोल ❀

(१) ४५ नमोकारसी तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(२) २४ चोवीस पहरसी तप करे जब एक उपवास का फल होता है;

(३) सोला साढ पहरसी तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(४) १२ बारह पुरि मड्ढ तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(५) १० दश तीन पहरसी तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(६) ६ अवड्ढ तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(७) एकासणा सहित दो अवड्ढ तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(८) आठ वे आसणा तप करे जब एक उपवास का फल होता है,

(९) चार एकासणा तप करे जब एक उपवास का फल होता है।

(१०) तीस निविगाइ तप करे जब एक उपवास का फल होता है।

(११) दो आयम्बिल तप करे जब एक उपवास का फल होता है।

(१२) दो हजार गाथा की स्वाध्याय करे जब एक उपवास का फल होता है।

(१३) ढाई सौ नमोत्थुण की स्वाध्याय करने से एक उपवास का फल होता है।

(१४) बीस नमोकार मंत्र की माला फिरावे जब एक उपवास का फल होता है।

अथ बारह भावना और किसने किस प्रकार चिन्तवन की

(१) अनित्य भावना भरत महाराज ने चिन्तवन की मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(२) संसार भावना मृगापुत्रजी ने चिन्तवन की, मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(३) अशरण भावना अनाथीजी ने चिन्तवन की, मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(४) एकत्व भावना नेमि राज ऋषि ने चिन्तवन की, मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(५) अन्यत्व भावना जम्बू स्वामीजी ने चिन्तवन की,मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(६) अशुची भावना सनत कुँमार चक्रवर्ति ने चिन्तवन की मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(७) आश्रव भावना समुद्रपालजी ने चिन्तवन की,मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(८) संवर भावना परदेशी राजा ने चिंतवन की,देव लोक को प्राप्त हुए।

(९) निर्जरा भावना अर्जुन मालि ऋषी ने चिन्तवन की, मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(१०) लोक स्वरूप भावना सेलक राज ऋषि ने चिन्तवन की, मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(११) बोध बीज भावना आदिनाथजी के पुत्रों ने चिन्तवन की,मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

(१२) धर्म भावना धर्मरूचिजी ने चिन्तवन की, सर्वार्थ सिद्ध वेमान को प्राप्त हुए।

❀ अथ दश बाते मिलना दुर्लभ ❀

(१) मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ।
(२) आर्य्य क्षेत्र पाना दुर्लभ।
(३) उत्तम कुल पाना दुर्लभ।
(४) दीर्घायु पाना दुर्लभ।
(५) पूर्णेन्द्रियें पाना दुर्लभ।
(६) शारीरिक आरोग्यता पाना दुर्लभ।
(७) निर्ग्रन्थ गुरु पाना दुर्लभ।
(८) जिनवाणी का सुनना दुर्लभ।
(९) श्रद्धा का आना दुर्लभ।
(१०) धर्म में प्रवृत्ति करना दुर्लभ।

अथ नव बातों से पढने की इच्छा जागृत हो.

(१) पढ़ने वाले की संगत से पढ़ने की इच्छा उत्पन्न होती है

(२) सूत्र सिद्धान्त सुगम से पढ़न की इच्छा उत्पन्न होती है
(३) विद्याध्ययन के योग्य स्थान हो तो पढ़न की इच्छा उत्पन्न होती है
(४) विद्याध्ययन में मदद का पहुंचाने वाला हो तो पढ़ने की इच्छा होती ह
(५) आहार पानी की साता हो तो विद्या पढ़न की
(६) शरीर निरोगी हो तो विद्या पढ़न की
(७) बुद्धिवान हो तो विद्या पढ़ने की
(८) विनयवान को विद्या पढ़ने की
(९) धर्म के ऊपर स्नेह भाव हो तो विद्या पढ़ने की इच्छा उत्पन्न होती है

अथ एकादश बातों से ज्ञान की वृद्धि होती है

१ परिश्रम करे तो ज्ञान बढ़
२ निद्रा त्यागन करे तो ज्ञान बढ़े
३ ऊनोदरी रखे तो ज्ञान बढ़े
४ स्वल्प भाषी हो तो ज्ञान बढ़े
५ पंडित की संहत करे तो ज्ञान बढ़े
६ बड़ों का विनय करने से ज्ञान बढ़े
७ बार बार विनय करे तो ज्ञान बढ़े
८ मन भ्रमण की चिन्तवना करने से ज्ञान बढ़े
९ पर्यटन करने से ज्ञान बढ़े
१० दस इन्द्रिय मे वश करे तो ज्ञान बढ़े
११ ज्ञानवन्त से ज्ञान पढ़ तो ज्ञान बढ़े

अथ दयाके महत्व का दिग्दर्शन

१ परजीव की दया करे तो दीर्घायु मिल

२ दया पाले तो रूप की प्राप्त होती है
३ दया पाले तो निरोग्य शरीर मिले
४ दया पाले तो धनवन्त और धर्मवन्त बने
५ दया पाले तो भोग उपभोग सुख मिले.
६ दया पाले तो संतोषी और निर्लोभी बने
७ दया पाले तो राजा और चक्रवर्ति का पद मिले.
८ दया पाले तो देवता का पद मिले
९ दया पाल तो साधु पद मिले.
१० दया पाले तो अरिहंत का पद मिले.
११ दया पाले तो गणधर का पद मिले
१२ दया पाले तो मोक्ष सुख मिले

❀ अथ सम्यक्त्व शुद्धि के नियम. ❀

१ हमारे पूर्वज पुरुष अर्थात् वडावे जैसा करते आप वैसा ही हम करते रहेंगे, इस हठवाद को 'अभिग्रहिक मिथ्यात्व' कहते हैं, इसका परित्याग करना

२ अष्टादश दोष सहित चण्डी, मण्डी, भेरू, भवानी आदि कु-देवों को देव कर के मानना, और गांजा.भंग, तमाखू, कच्चा पानी आदि सेवन करने वाले और पचन पाचनादि आरंभ स्वयं करे और करवाने वाले, स्त्री, परिग्रह के धारी ऐसे सर्व दर्शिनिक कु गुरुओं को सुगुरु करके मानना, उसे 'अणाभिग्रहिक-मिथ्यात्व' कहते हैं,इसका परित्याग करना

३ अपनी महिमा तारीफ के लिये अपने अभीष्ट मत की स्थापना करने के लिये जिनाज्ञा विरुद्ध उत्सूत्र की प्ररूपणा कर ने को, 'अभिनिवेशिक--मिथ्यात्व' कहते हैं,इस का परित्याग करना

४ जिन प्रणीत धर्म में संशय लाना तथा जिन प्ररूपित वाणी पर अविश्वास करना, अथवा कौनसा धर्म सच्चा है ऐसा विचार रखने वाले का, सांशयिक-मिथ्यात्व लगता है इस का परित्याग करना

५ धर्म अधर्म सुगुरु कुगुरु की सच्ची परीक्षा बिना किये ही दुनिया के देखा देखी करना और मानना इसे अणाभोगिक-मिथ्यात्व कहते हैं अतः इसका भी परित्याग करना

६ भेरू, भवानी यक्ष, राक्षस, नाग पूर्वज और पीर आदि कुदेवों को देव कर मानने वाले को, लौकिक देवगत-मिथ्यात्व लगता है इस लिये इस का परित्याग करना

७ वीतराग प्रभु की मूर्ति बना के उस के आगे पूजा नृत्य स्तोत्र भजन, पढ़क नमस्कारादि कर पुत्र धन सम्पदादि की वाचना करने वाले को, लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व लगता है इस लिये इसका परित्याग करना

८ ब्राह्मण, योगी सन्यासी बाबा भोपा फकीर दरवेश यति आदि जो परिग्रह धारी कुगुरुओं को सुगुरु करके मानने वाले को लौकिक गुरुगत-मिथ्यात्व लगता है, अतएव इसका भी परित्याग करना

९ होली दीपावली दशहरा, रक्षाबंधन गोगानवमी, नागपंचमी कार्तिक-स्नान श्राद्ध पिण्ड यज्ञ होम पीपल वट, शीतला, आदि पूजने तथा उक्त पर्वोत्सवों में जाने आने और करने कराने में धर्म मानने वाले को लौकिक पर्वगतमिथ्यात्व लगता है अतएव इसका भी परित्याग करना

१० केवल उदर पूर्ति के निमित्त साधु का भेष धारण कर उत्सूत्र की प्ररूपणा करने वाले तथा जिनाज्ञा विरुद्ध पीत

(पीले) वस्त्र, स्त्री, परिग्रह आदि के धारण करने वाले कुगुरुओं को गुरु करके मानने में "लौकोत्तर गुरुगत-मिथ्यात्व" लगता है, इस लिये इसका भी परित्याग करना

११ आठम, चौदस, पचमी, एकादशी, बीज, अमावास्या और पूनम तथा पर्यूपण-पर्व आदि में पौषधोपवासादि कर इस लोक सम्बन्धी सुख और पुत्रादि की वांछा रखने वाले को "लोकोत्तर पर्व गत मिथ्यात्व" लगता है, इस लिये इस का भी परित्यग करना।

ऊपरोक्त मिथ्यात्व मुख्य कारणों को तथा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म आदि का परित्याग करना मुमक्षु पुरुषों का खास कर्त्तव्य है।

अथ भाव संग्राम का दिग्दर्शन कराते हैं।

१ आत्मा रूप राजा, २ सम्यक्त्व रूप प्रधान, ३ ज्ञान रूप भंडारी, ४ शील रूप रथ, ५ मन रूप घोडा, ६ धैर्य रूप गज, ७ सयम रूप पद चर, ८ तप रूप तलवार, ९ स्वाध्याय रूप वाजित्र, १० धर्म रूप ध्वजा, ११ श्रद्धा रूप नगर, १२ दया रूप दरवाजा, १३ क्षमा रूप दुर्ग (गढ़), १४ चर्चा रूप चक्र, १५ ध्यान रूप तोफ, १६ संतोष रूप बारूद, १७ ज्ञान रूप गोला, १८ काया रूप कवान १९ श्रुता रूप तीर २० आठ कर्मा रूप शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिये और छः काया रूप रैयत की रक्षार्थ, और मोक्ष रूप अक्षय पाटण पर अपना कवजा कर अनंत आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिये निर्ग्रन्थ मुनि ऐसा भाव संग्राम करते हैं?

अथ संसार सागर से तिरने के धर्म जहाज का स्वरूप लिखते हैं।

१ सम्यक्त्व रूप जहाज २ पंच महा व्रत रूप पटिये ३ स्वाध्याय तप रूप कीले ४ ज्ञान रूप बल्ली ५ धर्म रूप ध्वजा, ६ वैराग रूप वायु, ८ मुनि राज निर्यामक ऐसे जहाज में साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ बैठ कर संसार समुद्र तिरे और तिर रहे हैं और तिरेंगे।

❀ अथ धर्म का परिवार ❀

१ धर्म का पिता-ज्ञान धना, २ धर्म की माता-दया, ३ धर्म का भाई धैर्य, ४ धर्म की बहन सुमति, ५ धर्म की स्त्री सुक्रिया ६ धर्म की पुत्री यत्ना ७ धर्म का पुत्र संतोष ८ धर्म का मूल क्षमा।

❀ अथ पाप का परिवार ❀

१ पाप का बाप लोभ २ पाप की माता हिंसा ३ पाप का भाई झूंठ ४ पाप की बहन तृष्णा ५ पाप की स्त्री कुमति ६ पाप का पुत्र लालच ७ पाप की पुत्री माया, (कपटाई) ८ पाप का पुत्र क्रोध।

❀ अथ सात प्रकार से ज्ञान की अन्तराय पड़े ❀

१ आलस करे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े।
२ अधिक सोता रहे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े।
३ कलेश करे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े।
४ शोक करे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े।
५ मिथ्या मसित रहे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े।

६ व्याधि ग्रसित रहे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े ।

७ कुटुम्ब पर मोह ममता रखे तो ज्ञान की अन्तराय पड़े।

❀ अथ वैराग्य के तीन कारण ❀

१ ज्ञान गर्भित वैराग्य, जम्बू स्वामी को हुआ।

२ दुःख गर्भित वैराग्य, मैतारज मुनि के घातिक सुवर्ण-कार को हुआ।

३ स्नेह गर्भित वैराग्य भवदेवजी को हुआ।

अथ भगवती सूत्र की टीका में पंचमें आरे के ३० चिह्न प्रदर्शित हैं वे निम्न लिखित प्रकार से हैं !

१ शहर ग्राम जैसे होंगे।

२ ग्राम स्मशान जैसे होंगे।

३ बड़े कुल के उत्पन्न हुए दास जैसे होंगे।

४ प्रधान जन घूस खोरे होंगे।

५ राजा यमदेव जैसे विभत्स रूपी होंगे।

६ उत्तम कुल की स्त्रियें वेश्या जैसे पहनाव पहनेंगी। और सदाचार का उल्लंघन करेंगी।

७ पुत्र स्वेच्छाचारी बनेंगे।

८ शिष्य गुरु के प्रतनिक होंगे।

९ दुर्जन जन धनवान बनेंगे।

१० धर्मात्मा पुरुष दुःखी और निर्धन होंगे।

११ आर्य देश पर चाक्रि का गमन और दुष्काल पर दुष्काल पड़ेंगे।

१२ सर्प, वृच्छक आदि जहरीले जानवर बहुत होंगे।

१३ सुसाधु कम होंगे और कुगुरु बहुत होंगे।

१४ साधु पुरुष कम होंगे और मर्यादा भंग बहुत होंगे और लोभी लालची बनेंगे।

१५ दिनों दिन धर्म का प्रचार कम होगा और अधर्म का अधिक प्रचार होगा।

१६ कषाय कलेश अधिक बढ़ेगा।

१७ आत्यादि मववत देव मनुष्य बहुत होंगे आस क्लेश अधिक होगा।

१८ मिथ्यात्वी देव मनुष्यों का प्रचार बहुत होगा।

१९ मनुष्यों को उत्तम देव दर्शन कम होगा।

२० मन्त्रों का प्रभाव कम होगा।

२१ सु साधुओं के चातुर्मास करने के योग्य ग्राम कम होगा।

२२ गोरस दिनों दिन कम और स्निग्धता रहित होगा।

२३ बल ताकत धर्म और आयु कम होगा।

२४ श्रावक की ११ प्रतिमा विच्छेद होगा।

२५ शिष्य कलेशी होंगे।

२६ श्रमण सुसाधु कम होंगे और असाधु बहुत होंगे।

२७ गुरु, शिष्यों को ज्ञान कम पढ़ावेंगे,

२८ आचार्य अपने २ गच्छ की स्थापना करेंगे

२९ म्लेच्छों का राज होगा।

३० हिन्दू राजा कम होंगे।

अथ सोते समय सागारी संथारा करने की विधि

आहार शरीर उपाधी त्यागूं पाप अठार।
मरूं तो वोसरे वोसरे। जीऊं तो आगार॥

❀ अथ निरवद्य दान का महात्म्य ❀

देतो भावे भावना, लेतो करे संतोष ।
धिन कहे रे गोयमा ?, दोनों जासी मोक्ष ॥

अथ मुखपत्ति मुख पर बान्धने में तीन गुण !

मुख पति में तीन गुण, जैन लिंग जीव रक्ष ।
धूंक पड़े नहीं सूत्र पे, तीन गुण प्रत्यक्ष ॥

अथ दश बातों में जय प्राप्त करना दुर्लभ

१ आठ कर्मों पे जय प्राप्त करना दुर्लभ ।

२ रस इन्द्रिय का दमन करना दुर्लभ ।

३ तीन योगों में से मन का योग पे जय प्राप्त करना दुर्लभ ।

४ पंच महाव्रतों में से चोथे महाव्रत पे जय करना दुर्लभ।

५ दरिद्र ने दान देना दुर्लभ ।

६ सामर्थ्य वान ने क्षमा करना दुर्लभ।

७ भर यौवन में शील पालना दुर्लभ।

८ बाल्यावस्था में संयम पालना दुर्लभ ।

९ छः काया की दया पालना दुर्लभ।

१० उपलब्ध काम भोगों को त्यागन कर संयम धारण करना दुर्लभ।

अथ दश बातें करने में कोई भी समर्थ नहीं

१ जीव की आदि निकाल ने में कोई समर्थ नहीं ।

२ सिद्धों का निर्णय निकाल ने में कोई समर्थ नहीं ।

३ अभवी ने समझाने में कोई समर्थ नहीं।

४ भवी को अभवी करने में कोई समर्थ नहीं।

४ जीव को अजीव बनाने में कोई समर्थ नहीं।
६ एक समय में दो क्रिया करने में कोई समर्थ नहीं।
७ परमाणु पुद्गल का छेदन करने में कोई समर्थ नहीं।
८ पर के पापों का लेने में कोई समर्थ नहीं।
९ अलोक में कोई जाने समर्थ नहीं।
१० अलोक का भेद के मिलाने में कोई समर्थ नहीं।

अथ दश प्रकार से वैराग्य उत्पन्न होता है।

१ साधु दर्शन से वैराग प्राप्त होता है मृगापुत्र जी की तरह साक्षी उत्तराध्ययन सूत्र की।

२ सूत्र सुनने से वैराग प्राप्त होता है, पंच पाण्डवों की तरह, साक्षी सूत्र श्री ज्ञाताजी।

३ जातिस्मरण ज्ञान होने से वैराग उत्पन्न होता है मेघ कुमारजी की तरह साक्षी सूत्र ज्ञाता जी की।

४ उपदेश सुनने से वैराग उत्पन्न होता है संयति राजा की तरह साक्षी सूत्र उत्तराध्ययन की।

५ रोग उत्पन्न होने पर वैराग उत्पन्न होता है अनाथी मुनि की तरह साक्षी सूत्र श्री उत्तराध्ययन की।

६ उपसर्ग उत्पन्न होने से वैराग उत्पन्न होता है तेतली पुत्र की तरह साक्षी सूत्र श्री ज्ञाता जी की।

७ अभिष्ट वस्तु का समाग की अप्राप्ति से वैराग उत्पन्न होता है। शिवराज तपस्वी की तरह।

८ अभिष्ट वस्तु का वियोग होने से वैराग उत्पन्न होता है। सागर चक्रवर्ति की तरह साक्षी सूत्र श्री भगवती जी।

९ पिछली रात्रि की धर्म जागर्णा करने से वैराग उत्पन्न होता है उदायीराजा की तरह साक्षी सूत्र श्री भगवतीजी।

१० स्मशान जलता हुआ देख के वैराग उत्पन्न होता है। बलभद्रजी की तरह।

❀ अथ सच्चा जैनी किसे कहना ? ❀

१ यदि आप सच्चे जैनी हो तो, भेरु, भवानी, चंडी, मण्डी, शीतला, बोदरी आदि देवी देवताओं की पीतल, पाषाण मिट्टी आदि की मूर्त्तियों में परमात्मा की बुद्धि रखना तथा उनके ऊपर जल, फल, फूल, धूप, दीप आदि चढ़ाना, एवं नृत्य नमस्कारादि करना कराना छोड़ दो।

२ यदि आप सच्चे जैनी होना चहाते हो तो बावा, जोगी, भाट, चारण, दरवेश, यति, सन्यासी आदि कुगुरु जो कि भंग, तमाकू, गांजा, चर्स, चेराडू, शराब आदि के पीने वाले स्त्री, परिग्रह के धारी, कच्चा पानी पीने वाले, कच्चे हरे फल आदि के खाने वाले, रात्रि भोजन आदि करने वाले, नाविन से हजाम आदि बनाना तथा गृहस्थ से वयावृत्य आदि करवाना, जिनाज्ञा विरुद्ध पीले वस्त्र वगैरा धारण करने वाले जिनमें गुरु के गुण नहीं, उनको गुरु करके मानना छोड़ दो।

३ यदि आप जैनी हो तो जल, फल, फूल धूप, दीप, आदि हिंसा जनक द्रव्य पूजा में तथा भेरु, भवानी आदि जड़ मूर्त्तियों की मानता करना, और तावूतों के सामने पानी की पखाले आदि छोड़वाने में, एवं वड, पीपल आदि वृक्षों तथा होली शीतली, बोदरी वगैरा के ऊपर जल, फल, फूल चढ़ाने आदि हिंसा जनक कार्यों में धर्म मानना छोड़ दो।

४ यदि आप सच्चे जैनी होना चहाते हो तो रात्रि भोजन करना छोड़ दो।

५ बिना छाना पानी पीना छोड़ दो ।

६ होटलों में खाना छोड़ दो ।

७ बीड़ी सिगरेट, गांजा भंग तमाकू आदि पीना तथा नशा करना छोड़ दो ।

८ तास शतरंज आदि पर शर्त लगा के खेल खेलना छोड़ दो ।

९ यदि आप जैनी हैं तो जैन शास्त्रों का सदैव पठन पाठन करो ।

१० यदि आप जैनी हैं तो जैन शास्त्रानुसार धर्मानुष्ठानादि क्रिया सदा सर्वदा करो ।

११ यदि आप जैनी होने का दावा रखते हैं तो दिन की एक सामायिक तो अवश्य करना चाहिये ।

१२ यदि आप जैनी हैं तो गंगा, यमना आदि में मरे हुए मनुष्यों की हड्डियें भस्मी आदि जल में डालना छोड़ दो कारण कि जल में डालने से असंख्य जल जन्तुओं आदि का विनाश होता है और हड्डि भस्मी मिश्रित जल मनुष्य के व आप के भी पीने में आता है, जिससे बुद्धि भ्रष्ट होती है गति तो अपने २ शुभाशुभ कृत कर्मानुसार होती है, ऐसा करने से आप के सम्यक्त्व धर्म में धब्बा लगता है ।

१३ यदि आप जैनी हैं तो चोरी की वस्तु मत खरीदो ।

१४ यदि आप जैनी हैं तो झूठी गवाह मत दो ।

१५ यदि आप जैनी हैं तो खोटा खत मत लिखो ।

१६ यदि आप जैनी हैं तो किसी को कम मत दो अधिक मत लो किसी की अमानत मत दबाओ ।

१७ यदि आप जैनी हैं तो पर स्त्री के साथ अपनी निगाह से निगाह मिला के बात मत करो, इसमें तुम्हारी इज्जत बढ़ेगी, व वक्त मालिक की बिना मोजुदगी में किसी के मकान पर जाना छोड़ दो।

१८ यदि आप जैनी हैं तो बैलों को बदिया याने खसी अर्थात् उनके अरह को मत कुटवाओ।

१९ यदि तुम जैनी हैं तो राज्य विरुद्ध कार्य मत करो, अच्छी वस्तु बता के खोटी मत दो।

२० चांदी सोने में ताम्बा आदि अन्य धातु मत मिलाओ।

२१ यदि आप जैनी हैं तो चोरी मत करो, अपनी प्यारी पुत्री को मत बेचो, बुड्ढे के साथ शादी मत करो, बाल विवाह मत करो, मुर्दों का भोजन मत खाओ।

२२ यदि आप जैनी हैं तो स्थावर यात्रा करना छोड़ दो।

२३ यदि आप सच्चे वीर पुत्र हैं तो अपने बिछड़े हुए जैनी भाईयों को पुन अपने में अपनाओ।

२४ यदि आप सच्चे जैनी हैं तो एक साल में एक माह समाज की सेवा करने में अपना जीवन अर्पण करो।

२५ यदि आप जैनी हैं तो, अपनी आवक में से यथा शक्ति कुछ समाजोन्नति के लिये दान देकर अपने नर जन्म को कृतार्थ करें।

२६ यदि आप जैनी हैं तो एक महीने में पाक्षिक पौषध तो अवश्य करना चाहिये।

२७ यदि आप जैनी हैं तो गौ भैंस बैल आदि पशुओं को कसाई और ये पशुओं पालने मांसाहारी को मत बेचो।

२८ यदि आप जैनी हैं तो रात्रि में जाति की जिमनवार मत करो और जिमने को भी मत जाओ।

२९ यदि आप जैनी हैं तो सारे दिन में एक बार तो ईश्वर का जप, तथा अनुपूर्वी अवश्य फिरानी चाहिये।

३० यदि आप जैनी हैं तो प्रत्येक दिन एक सामायिक अवश्य करना चाहिये।

३१ यदि ग्राम के अन्दर अपने गुरु व गुरुणी हों तो अपने हाथों से सुपात्र दान किये बिना कदापि भोजन मत करो यदि न हो तो समाजोन्नति फण्ड की पेटी अथवा कुछ अपने मकान में एक तरफ धरी रहे उसमें सदैव कुछ न कुछ डाले बिना भोजन नहीं करना।

उपसंहार—यदि आप सच्चे जैनी हैं यदि आप सच्चे वीर महात्मा की सन्तान हैं तो घर घर में जैन धर्म का प्रचार करें प्रत्येक प्राणी के कानों तक वीर वाणी का सन्देश पहुँचाने का प्रयत्न करें, साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका रूप चतुर्विध संघ में सम्प की दुदुंभि बजा दें और सभी बंधु प्रेम के साथ मिल जुल के सारी मेदनी के दिग्दिगन्तों पर्यन्त जैन धर्म का प्रचार कर अपने को वीर पुत्र कहलाने का कर्तव्य का पालन करें।

ओ३म् शांति ! शांति !! शांति !!!

—— ——

श्री सम्यक्त्व छप्पनी
(सार्थ)
लेखक —
पंडित जीवनलालजी जैन
प्रकाशक—
मूलचन्द मोदी जैन,
ब्यावर (राजपूताना)
प्रथमावृत्ति
२०००
कीमत
२ पैसा

॥ प्रस्तावना ॥

यह सम्यक्त्व छप्पनी नामक छोटी सी पुस्तक उपयोग की दृष्टि से बहुत बड़ी है। इसलिए प्रत्येक धार्मिक पुरुष का कर्तव्य है कि वह इसको कण्ठस्थ कर लेवें फिर मनन करें जिससे सम्यक्त्व का शुद्धतया पालन होसके और केवल ज्ञान केवल रूप अमूल्य आत्मिक धन की प्राप्ति हो यही इसका मुख्य उद्देश्य है।

इस पुस्तक में सम्भव है कहीं अशुद्धियां रह गई होंगी इसलिये आशा करता हूं कि हमें उनकी सूचना मिले तो भविष्य में द्वितियावृत्ति बिल्कुल शुद्ध निकलेगी विशेष क्या !

आपका—
पंडित जीवनलाल जैन
ब्यावर (राजपूताना)

॥ सम्यक्त्व षट्पञ्चाशंका ॥

॥ ढाल ॥

इम समकित मन थिर करो, पालो निरतीचार ।
मनुष्य जन्म छे दोहिलो, भमतां जगत मझार ॥

अर्थः—हे भव्य प्राणियों ! इस तरह सम्यक्त्व में अपने मनको स्थिर करो, और शंका आकांक्षा विचिकित्सा, परपाषण्ड प्रशंसा, परपाषण्ड संस्तव इन पांचों अतिचारो से रहित शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करो क्योकि जगत में भ्रमण करते हुए जीवों को मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है ॥ १ ॥

नर-भव आर्य-कुल तिहां, सुणवी जिनवर वाणि ।
होय यथारथ सद्दहा, चउ अंग दुल्लह जाणि ॥

अर्थः—पहले ही पहल तो मनुष्य जन्म का मिलना दूसरे में आर्यकुल में आना, तीसरे में श्री जिनेन्द्र की वाणी का श्रवण और चौथे में सुने हुये प्रवचन पर श्रद्धा ये चार अंग मिलने एक एक से दुर्लभ है ॥ २ ॥

आरम्भ परिग्रह दोय ए, तेईस विषय कषाय ।
जब तक पतला ना पडे, नहिं समकित आय ॥

अर्थः—महा आरम्भ और महा परिग्रह में तीव्र भाव की प्रवृत्ति और तेइस विषय श्रोतेन्द्रिय के ३ चक्षुरिन्द्रिय के ५ घ्राणेन्द्रिय के २ रसेन्द्रिय के ५ स्पर्शेन्द्रिय के ८ इन पर रति अरति भाव और ४ कषाय ये जब तक पतले नहीं पड़ेंगे तब तक सम्यक्त्व मिलना मुश्किल है ।३।

आत्म१ लोक२ कर्म३ क्रिया४ शुद्ध वाद है चार।
चिंतवतां समकित लहे, जीव जगत मझार॥

अर्थः—आत्मवादी जैसे यह आत्मा चारों गति में वार २ चक्कर लगाता है, फिर भी शास्वत व अमूर्त है ऐसे जो माने। लोकवादी जैसे चौदह रज्जु का बड़ा लोक है उसमें धर्मास्तिकायादि छह पदार्थ हैं, इस तरह जो माने। कर्मवादी, ज्ञानावरणीयादि ८ कर्म है उनके प्रकृत्यादि बंध को माने यह। क्रियावादी क्रियाएं २५ प्रकार की होती हैं और वे ही कर्म-बंध का कारण हैं। इन वादों की चिन्तवना जीवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति कराती है॥ ४॥

जीव अमूर्त शाश्वतो, तीन रत्न स्वभाव।
पर सयोगे ऊपजे, तस विषय कषाय॥

अर्थ—जीव अमूर्त याने आकार रहित, शास्वत अर्थात् हरस मय में रहने वाला है ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये तीन स्वभावात्मक है, किन्तु कर्म के संयोग से जन्म लेता है और विषय कषायों की उत्पत्ति होती है॥ ५॥

आतम सम छहकाय है, दु ख निरभिलाप।
परलोके परवश जायवो, जिन आगम साख॥

अर्थ—छह कायों के जीवों को अपने जैसा समझने क्यों कि दुःख कोई भी प्राणी नहीं प्राप्त करना चाहता। आयुष्य घय होने पर इस जीव को विवश होकर परलोक में जाना पड़ता है ऐसा जिनागम में कहा है॥ ६॥

संपत्ति, विपत्ति, सुखी, दुखी, मूढ चतुर सुजान ।
नाटक कर्मों का जाणजो, जग नाना विधान ॥

अर्थ—कोई सम्पन्न है, कोई विपत्तिग्रस्त है। कोई सुखी है तो कोई दुखी है। कोई मूरख तो कोई चतुर एवं सुज्ञ है। जगत में इस प्रकार तरह तरह से कर्मों के नाटक देखेजाते हैं॥७॥

बिना कीधा लागे नहीं, कीधा कर्मज होय।
कर्म कमाया आपणा, तेथी सुख दुख होय ॥

अर्थ—बिना किए कुछ भी भला बुरा फल नहीं होता, और करने पर हुए सिवा नहीं रहता। अपनी आत्मा ने ही कर्म कमाए है अतएव तदनुसार सुख दुःख होता रहता है ॥ ८ ॥

जीव अजीव बेहु मिल्या, खीर नीर ने न्याय ।
आर्जव-गुण के कारणे, तेथी बन्धन थाय ॥

अर्थ—जीव अजीव याने कर्म दूध पानी के मिसाल मिले हुए हैं। जीव राग अर्थात स्नेह से स्निग्ध है और और कर्म पुद्गल रज के समान है इसलिए इन दोनों के बन्धन होता है ॥ ९ ॥

आश्रव हेतु है बन्धनो, शुभ अशुभ दोय भेद।
कर्म थी पुण्य ने पाप है, मोक्ष तेहनो छेद ॥

अर्थः—बन्ध का हेतु आश्रव है, उसके शुभ या अशुभ करके दो भेद हैं, ये दोनों ही कर्म है और इनके नाश होने से मोक्ष होता है ॥ १० ॥

सम्वर रोके आवतां, क्षीण तप ते होय।
तेहनो नाम छे निर्जरा, मोक्ष कारण दोंय॥

अर्थ—सम्वर से नवीन कर्म रुकते हैं तप (सम्यक्तप) से पुराणे कर्म क्षय होते हैं। उसी सम्यक्तप को निर्जरा कहते हैं, सम्वर और निर्जरा दोनों मोक्ष के कारण हैं।११।

पहली त्रिक मन धारिए, ज्ञेय बीजी हेय।
तीजी उपादेय जानिये, इम समकित सेय॥

अर्थ—पहली त्रिक जीव, अजीव, पुण्य, ये तीन ज्ञेय अर्थात् मानने योग्य हैं, दूसरी त्रिक-पाप, आश्रव, बन्ध ये तीन हेय यान छोड़ने योग्य हैं और तीसरी त्रिक-सवर निर्जरा, मोक्ष य तीन उपादेय अर्थात् आदरणीय हैं इन नव बातों को यथायोग्य समझे उसका सम्यक्त्व श्रेय अर्थात् कल्याणकारी है॥ १२॥

उपशम जेह कषाय नो, तेहनो शम अभिधान।
मोक्ष मार्ग नी चाहना, सो सम्वेग प्रधान॥

अर्थ—क्रोधादि कषायों के रोकने को शम और मोक्ष मार्ग की चाहना को सम्वेग कहते हैं॥ १३॥

होय उदास विषय में, जाणजो निरवेद।
पर-दुःख देख दुखी दया अो छे चौथो भेद॥

अर्थ—विषयों में अरुचि होने को निर्वेद, और परदुःख देखके दुखी होने को दया याने अनुकम्पा कहते हैं॥१४॥

इहपरलोक छता पणो, होवे आस्तिक भाव।
कृत-कर्मो ना फळ सहे, होवे पुण्य ने पाप॥

अर्थ–इह लोक परलोक है, कर्म है और उनके फल पुण्य व पाप भी हैं। इस मान्यता को आस्तिक भाव कहते हैं ॥ १५ ॥

तर्क अगोचर सरधवो, द्रव्य धर्म अधर्म ।
कोई प्रतीते युक्ति सू, पुण्य पाप स कर्म ॥

अर्थ–तर्क द्वारा अनिन्द्रिय गोचर वस्तुओं पर श्रद्धा करना, जैसे ६ द्रव्य धर्मादि, पुण्य एवं पाप युक्तियों से जानने की कोशिश करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तप चारित्र ने रोचवो, कीजे तस अभिलाष ।
श्रद्धा, प्रतीति, रूचि तिहुं, जिन आगम साख ॥

अर्थ–तपस्या और चरित्र को रुचि पूर्वक प्राप्त करने की इच्छा करो। श्रद्धा याने दृढता, प्रतीत्त अर्थात् भरोसा रुचि, अर्थात आन्तरिक इच्छा ये तीनों जिन शास्त्र में कही हुई है ॥ १७ ॥

पंथ१ धर्म२ जिय३ साधु४ है,सिद्ध५ क्षेत्र६ जान ।
एह यथार्थ जाणिए, संज्ञा दस विधि मान ॥

अर्थ–(इस गाथा का पूर्वार्द्ध गूढ आशय को रखता है कुछ निश्चित नहीं होता) संज्ञा दस तरह की होती है, जैसे क्रोध संज्ञा, मान संज्ञा, माया संज्ञा, लोभ संज्ञा, आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, ओघ संज्ञा और लोक संज्ञा इनको यथार्थ जान लेनी चाहिए ॥१८॥

जाति-स्मृति अवधि आदिसों, उपजे बोध निसर्ग१
छद्मस्थ जिन उपदेश२ सों पावे भविजन वर्ग ॥

अर्थ—जाति (जन्म) स्मृति (स्मरण) अवधि आदि से जो ज्ञान होता है उस निसर्गरुचि१ और छद्मस्थ साधु के उपदेश से भव्यों को बोध प्राप्त होने को उपदेशरुचि२ कहते हैं १-

आदेश गुरु-मुख सुन लहे, आणारुचि३ या छाइ।
पढ़तां सुत्तर थीं ऊपजे सुत्त रूची४ है सोई ॥

अर्थ—गुरुदेव की आज्ञा में रुचि होने को आज्ञारुचि ३ और शास्त्रों को पढते हुये उनमें रुचि पैदा हो उसे सूत्ररुचि ४ कहते हैं ॥ २० ॥

तेल सलिल के न्याय से, बोध बीज को लाइ।
ते तुम जाणो बीज रुचि५, भाखे जिन वर नाह ॥

अर्थ—पानी पर तेल की बून्द चारों तरफ फैल जाता है उसी तरह गुरु जिनेन्द्रदेव के एक ही वाक्य से बोध हो जाय उसे बोधरुची ५ कही है ॥२१॥

अर्थ विचारे सूत्र के, अभिगम रुचि६ सो जान।
सब गुण पर्यव भाव नय, इम विस्तारे७प्रमान ॥

अर्थ—शास्त्रों के अर्थ को विचारना वह अभिगमरुचि ६ और द्रव्य, गुण, पर्याय, भाव नय आदि को विस्तार पूर्वक समझने की इच्छा करने को विस्तार रुचि ७ कहते हैं ॥ २२ ॥

क्रिया रुचि८ क्रिया विषे, उद्यम करता होइ ।
चारित्त में उद्यम किया, धर्म रुचि९ है सोइ ॥

अर्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में पांच समिति तीन गुप्ति में क्रिया करने की इच्छा को क्रिया रुचि८ और धर्मादि द्रव्यों को सच्चे रूप से श्रद्धने को धर्मरुचि९ कहते हैं ॥ २३ ॥

जांने कुदर्शन ना ग्रह्यो, ना हंस सम प्रवीण ।
संक्षेप रुचि१० सो जानिये, भाखे बुद्धि अहीन ॥

अर्थ—मैंने मिथ्या मत को धारण न किया है और न मैं हस के समान खीरनीर वयोजक भी हैं अतएव समझ कर मिथ्यात्व का त्याग करना हंस के समान सत्यासत्य निर्णय करने की इच्छा रखने को सम्पूर्ण बुद्धि वालों ने संक्षेप रुचि१० वतलाई है ॥ २४ ॥

चार अनंतानु बंधिया, मिथ्या मोहनी मीस ।
ए सब समगति को हणे, भाख्यो श्री जगदीश ॥

अर्थ—अंतानुवंधी का चतुष्क व मिथ्यात्व मोहनी एवं मिश्र मोहनी ये सब सम्यक्त्त्य का नाश करती है। ऐसा भगवान ने फरमाया है ॥ २६ ॥

देसे हणे जे मोहने, उपमश समकित जान ।
क्षय उपशम इनको कह्यो मिश्र उदय प्रमाण ॥

अर्थ—इन उपर्युक्त प्रकृतियों की उपशम सम्यक्त्व

देशतः दबाया करता है और इन्हीं प्रकृतियों के कुछ नाश होजाने को कुछ दबाये रखने को क्षयोपशम कहते हैं और इससे प्रकृतियों के उदय होने को मिश्र कहते हैं ॥२६॥

उपशम क्षय छे सात नो क्षय उपशम भेद ।
चारअनतानु बधियां, निश्चय छे इह छेद ॥

अर्थ—इन सात प्रकृतियों के उपशम अर्थात् दब जाने को और क्षय याने नाश होजाने को क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं और इससे प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होजाता है उसको क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं ये दोनों सम्यक्त्व के भेद हैं। ॥२७॥

दर्शन एक दुहून को, क्षय उपशम शेष ।
समकित मोहनी उपशमे, नियमा तिहु लेख ॥

अर्थ—दर्शन मोहनी की ३ प्रकृतियों में से एक का अथवा दोय का क्षय करना या शेष रहना क्षयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है और तीनों ही दर्शन मोहनी के उपशान्त करने को उपशम सम्यक्त्व कहते हैं ॥ २८ ॥

वेदक में नियमा उदय, छोड समकित मोह ।
शेष छह प्रकृति उपशमे, अथवा पावे छोह ॥

अर्थ—वेदक सम्यक्त्व में सम्यक्त्व मोह का उदय निश्चय से होता है और शेष बची हुई ६ प्रकृतियों का उपशमन होजाता है अथवा सर्वथा नाश होजाता है। अतएव यह वेदक क्रमशः उपशम वेदक एवं क्षायिक वेदक कहलाता है। ॥२८॥

चार कषाय क्षय हुवे, दस दो उपशाम ।
अथवा मीसा उपशमे, पांच पावे विराम ॥

अर्थ—चार अन्तानुबंधी कषायों का क्षय हो । १२ प्रकृतियों का उपशम हो, ५ प्रमाद सप्तम गुण स्थानक में क्षय हो । इस तरह सम्यक्त्व व्यवस्थित है ॥ ३० ॥

ए नवविधि समकित कह्यो, जेह थी शिव सुख थाय
क्षय१ उपशम२ दो भेद छैं, ये ही चार भाय ॥

अर्थ—इस प्रकार नव तरह की सम्यक्त्व होती है । उसीसे मोक्ष सुख मिलता है, क्षय और उपशम करके उनके मूलतो दो ही भेद हैं ॥ ३१ ॥

शंका१ कंखा२ कर रहित. वितिगिच्छा३ तिहां नाय
दिट्ठि अमूढ४ थिरीकरण५ जिनमत के मांय ॥

अर्थ—जिनमत में सन्देह न करे१ परमत की इच्छा न करे२, फल प्रति शंसय न करे३, जिनमत में मुरझावे नहीं४, जिनमत से विचलित को स्थिर करे५ ॥ ३२ ॥

धर्म विषे उच्छाहना, तस उववूह६ नाम ।
वात्सल्य ७ प्रभावना आठ ये अचारना ठाम ॥

अर्थ–धर्म कार्यों को उत्साह पूर्वक करे६, स्वधर्मियों में वात्सल्य रखे७, बड़े आडम्बरों से धर्म क्रिया करे८, ये आठ सम्यक्त्व धारकों के आचार हैं जो शास्त्रों में कहे गये हैं ॥ ३३ ॥

शंका संशय ऊपजे, सब दर्शी होई ।
सर्वथी अनाचार, देश थी अतिचार है सोइ ॥

अर्थ—शंका याने संशय होना यदि ये सर्वथा हो तो अनाचार और देशथा हो तो अतिचार कहलाता है ।२४

धर्म करतां मन धरे, देवादिक नी भीति ।
अथवा लज्जा लोक नी, ये छे शंका रीति ॥

अर्थ—धर्म करते हुए देवादियों से डरना अथवा लौकिक लज्जा रखना ये शंका जानना ॥ २५ ॥

कंखा परमत वांछना, सब देशे होइ ।
सर्व थी अनाचार, देश थी अतिचार छे सोइ ॥

अर्थ—दूसरे मजहब की इच्छा को आकांक्षा कहते हैं । यदि वह सर्वथा इच्छा की गई हो तो अनाचार और देशथा हो तो अतिचार है ॥ २६ ॥

सहाय वांछे धर्म में, नर सुर थीं कोय ।
लब्ध्यादिक वांछा करे, ए पण कंखा जोय ॥

अर्थ—देवता आदि के सहाय से धर्म करने की इच्छा करे और लब्ध्यादि प्राप्त करने की अभिलाषा से धर्म करे उसको भी आकांक्षा कहते हैं ॥ २७ ॥

तप चारित्र ना फल विषे, वित्ति गिच्छा संदेह ।
साधु उपाधि मलिन लखि, दुगछा छे एह ॥

अर्थ—तप एवं चरित्र के फल में सन्देह लाने को विचिकित्सा और आत्मार्थी साधुओं के मलिन वस्त्रों से घृणा करने को जुगुप्सा कहते है ॥ ३८ ॥

संसार कारज साधवा, परजुंजे धर्म ।
सभी अतिचार ऊपजे, सम मोहनी कर्म ॥

अर्थ—सांसारिक कामों को करने के लिये धार्मिक क्रियाओं का प्रयोग करे तो सभी अतिचार उत्पन्न होते हैं क्योंकि इसमें सम्यक्त्व मोहनीय कर्म की प्रबलता रहती है ॥ ३९ ॥

पास त्थादि, कुदर्शनी, जेह शिथिलाचार ।
निह्नव, जेय असाधु छै, एहनो परिहार ॥

अर्थ—राग द्वेष की पाश में जो बंधे हुए हैं १ मिथ्यात्वी है२, ढीले आचार का पालन करते हैं३ जिनागम के सच्चे अर्थों को छिपाते हैं४ और जो असाधु है इन पांचों की संगति किसी मुमुक्षु प्राणी को न करना चाहिए ॥ ४० ॥

इह प्रशंसे संथवे, अतिचार छे पंच ।
समदृष्टि तुम जाणजो, मत सेवजो रंच ॥

अर्थ—इन उपर्युक्त पांचों की प्रशंसा न करना और विशेष परिचय भी जान पहचान न करना ये शंकादि५ अतिचार सम्यक्त्व में वर्जनीय है किन्तु इनका ज्ञान तो प्रत्येक सम्यक्त्व धारी को कर ही लेना चाहिए ॥ ४१ ॥

क्षण क्षण क्रोध करे, धरे अति दीरघ रोष।
इह पर जगत सम्बन्धना कारण तप पोष॥

अर्थ—जो क्षण क्षण क्रोध करे बड़ी देर तक गुस्सा रखे इह लोक परलोक के लिये तप करे॥ ४२॥

निमित्त करी अजीविका, एह थी असुरज थाय।
चार पदे समोह छे ते थी समकित जाय॥

अर्थ—निमित्तियापन करके अपनी उदरपूरणा कर तो सम्यक्त्व का विराधक होता है मर के असुर जाति के देवों में उत्पन्न होता है। शास्त्रों में चार समोह कहे हैं। उनसे सम्यक्त्व चली जाती है॥ ४३॥

उन्मार्ग नी देशना पथ विघ्न सुजान।
गृद्धि भाव विषय तणा काम भोग निदान॥

अर्थ—पाप का उपदेश देने से, सच्चे मार्ग में बाधक होने से विषयों में मशगूल रहने से, काम भोग के लिए निदान (नियाणा) करने से॥ ४४॥

अरिहन्त धर्म तथा गुरु सघ अवर्णवाद।
एह थी किल्बिषता लहे मिथ्या मत उत्पाद॥

अर्थ—जिनप्र रुवो की, उनके प्ररूपित धर्म की गुरु महाराज की, चतुर्विध संघ की, निंदा करने से मिथ्यात्व ग्रस्त हो मरके किल्बिषिक जाति का देव होता है॥ ४५॥

अपना गुण पर अवगुण भूति कौतुकाकार ।
अभियोगी सुरजे हुवे, ते चार प्रकार ॥

अर्थ—अपने गुणानुवाद करने से, दूसरों की निन्दा करने से, इन्द्रजाल दिखाने से, दूसरे बड़े देवों का आज्ञाकारी अभियोगी देव होता है ॥ ४६ ॥

कंदर्प की विकथा करे, भगड चेष्टा जान ।
चपलाई परिहास छै तेथी कंदर्पी थान ॥

अर्थ—काम कथा करने से, भांडों के जैसी चेष्टा करने से, विशेष चंचलता रखने से, और विदूषक की भांति होकर दूसरों को हसाते रहने से, कंदर्पिक देव होता है ॥ ४७ ॥

आरम्भ परिग्रह मोट को पंचेन्द्रियनी घात ।
निन्द्य आहार नरक तणा हेतु चारे बात ॥

अर्थ—महारम्भ, महापरिग्रह; पन्चेन्द्रिय प्राणी के नाश करने से, मद्य मांस भोजन से नरक में जाता है ।४८।

माया करे तस गोपवे कूडा देवे आल ।
कूडा मापा तौलता तिर्यंच बंधे काल ॥

अर्थ—माया (कपट) करने से, गुप्त कपट करने से, झूठा कलंक देने से, कूडा तोला मापा करने से यह जीव तिर्यंच आयु बांधता है ॥ ४९ ॥

चारित्र दर्शन ज्ञान का, कीजिये अभ्यास ।
संगत कीजे साधुनी जे थे जगथी उदास ॥

अर्थ—ज्ञान दर्शन चारित्र का अभ्यास करना चाहिए इसलिए जगत से उदास रहने वाले साधुओं की सेवा करें ॥ ५० ॥

भ्रष्ट कुदर्शन की तजो, सगत यह व्यवहार ।
समकितना तुम जाणजो इम चार प्रकार ॥

अथ—अर्थ—सम्यक्त्व से पतित की, व मिथ्यात्वी की सगति न करना, ये चार व्यवहार सम्यक्त्व के भेद हैं

अन्य मती तस देवता चैत्य वदे नांहि ।
राजा गण सुरगुरु वृत्ती सवल छडी मांहि ॥

अर्थ—किसी मिथ्यात्वी को व उनके देवों को और चैत्य जो चिता की जगह चौतरा आदि बनाते हैं जिनको भाषा में छतरी, थड़ा आदि कहते हैं जिसमें पगल्या, देवली आदि स्थापना करते हैं एसे चैत्यों को वन्दनादि न करें, और राजा, न्यात, देव, गुरु, बलवान वृत्ति अर्थात् आजीविका इन ६ कारणों से धर्म विरुद्ध करना पड़े तो आगार हैं इन्हे ६ छडी आगार कहते हैं ॥ ५२ ॥

न्याय करे न्याय आप ही, न्याय की पक्षपात ।
न्याय विचारे मन धरे, लज्जा नीति की बात ॥

अर्थ—न्याय करना, न्याय बोलना, न्याय ही का पक्ष समर्थन करना, न्याय विचार करना लज्जा एवं नीति की बातों को धारण करना ॥ ५३ ॥

जाको वल्लभ न्याय है न्याय ही को आचार।
न्याय ही सो सबही करे वृति अथवा व्यवहार॥

अर्थ—न्याय ही जिसे प्रिय है न्यायाचार का पालन करता है। और न्याय ही से अपनी आजीविका व व्यवहार करता है वह आठ स्वभाव का धारक शुद्ध सम्यक्त्वी है॥ ५४॥

नो तत्व जान १ सहाय न वांछे २,
डिगे नहीं देव अदेव डिगाये ३।
दोष विना धरे दर्शन ४ को जिन,
सर्व अर्थ कर समझाये ५॥
धर्म के राग रंग्यो हिरदे ६ अति
धर्म कहे आपस में मिलाये ७।
निर्मल चित्त ८ अभंग दुवार ९
अंते उर नाहि परगृह जाये १०॥
पौषध छहुतिथि को करे ११ प्रतिला भेशुद्ध साध १२
ऐसे समदृष्टि तथा श्रावक है आराध॥

अर्थ—९ तत्त्वों के जानकार हो १ धर्म कार्यों में सहायता न वांछे २, नरवसुरों से डिगाये डिगे नहीं ३ शुद्ध सम्यक्त्व धारण करें ४, भगवद्वचनों को अच्छी तरह समझाने वाला हो ५ धर्म रंग से रंगा हो ६ आपस

में मिलके धर्म कथा करने वाला हो ७ निर्मल चित्त वाला होय ८ घर का दरवाजा दान देने के लिए हमेशा खुला रखे ९, राजा के रानीवास में या घरघर जाने से जिनका वहम नहीं हो १०, एक महीने में अष्टपौषधव्रत करता हो ११, साधु मुनि को शुद्ध आहार पानी बहराने वाला हो १२ ये बारह श्रावक के बिरुद हैं इनका पालन वही करता है जो भगवद्वचनों का आराधक हो।

रामनिवास शर्मा के प्रबन्ध से
फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस ब्यावर में मुद्रित।

हमारे यहां निम्न लिखित

पुस्तकें

तैयार मिलती हैं

१ बारा भावना— १६ प्रति का १) रु०
२ शबदुमालोपमा २७ प्रति का १) रु०
३ विनयचन्द चौबीसी ४० प्रति का १) रु०
४ अनुपूर्वी नित्यानियम १०० प्रति का १॥) रु०
५ सम्यक्त्व छप्पनी ४० प्रति का १) रु०

और भी पुस्तकें कम कीमत में हमारे यहां से मिल सकेगी।

पता—

गोकुलचन्द मोदी जैन
हमारे पूरब पटनी तेल अतर आदि की दुकान
कि० डिप्सान कचरी के पास
ब्यावर (राजपूताना)

प्रकाशक का वक्तव्य
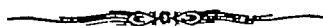
मेरी कई दिनों से यह हार्दिक लगन लगी हुई थी, कि मैं मुनिराज से इन अष्टादश पापोपचारों को मांगू और उन्हें जनता के हित के लिये प्रकाशित करवा दूँ। मेरी यह लगन, उस समय और भी अत्यधिक रूप में मेरे हृदय के अन्तर्पदेश में खलमली मचा उटती थी, जब कि मैं मुनिराज के दर्शनार्थ समय समय पर जाता, और उन के प्रवचनों के बीच बीच में इन पापोपचारों के हित-चिन्तन हवालों को, हमारी दैनिक जीवनी के हरम (अन्तःपुर) में हट्टे-कट्टे और नमक हलाल हवालदारों के रूप में स्थान स्थान पर अड़े पाता। दिनों दिन मेरी यह इच्छा अधिकाधिक बढ़ती ही गई, एक दिन इस इच्छा ने सत्साहस का सेहरा अपने सिर बांध, विनीत भाव से मुनिराज के चरणों में अपना अभिप्राय कह सुनाया। पाठको! सन्त तो हृदय से कोमल होते ही हैं, या यूँ कहो, कि उनका जीवन ही परार्थ होता है। जैसे कहा भी है कि-

"पर उपकार वचन मन काया।
सन्त सहज सुभाव खगराया॥"

और-"निज परिताप द्रवई नवनीता।
पर दुख द्रवहि सो सन्त पुनीता॥"

बस, मुनिराज ने मेरी इच्छा के अन्तर्नाद को सुनते

ही उसे अपना सदाभय दे दिया। फिर मैं तो चटपटी में पहले से था ही! अपनी इच्छा और आशा को फलवती होती देख, मैं फूले अंग न समाया; और उसी समय, मुनिराज के भी मुख से, इस पुस्तक के अष्टादश पापोपचारों को उद्धृत करता चला। इतना ही नहीं; तत्काल ही में प्रेसवाले के पास भी गया; और उस प्रेस की सफाई, छपाई, शुद्धता आदि का कुछ भी खयाल न करता हुआ, उसे उसी समय छपवाने के लिए भी दे दी। पाठको! और तो और, किन्तु मैं उस खुशी के आवेग में; अपने उदासना और अति कृपालु इस के रचयिता मुनिराज तक को, धन्यवाद देना भूल गया, जिस की एक मात्र महती कृपा ही से,ये अष्टादश पापोपचार मुझे तथा पाठकों को सम्प्राप्त हो सके। किन्तु, "मेरे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न सन्त विदूषहिं काऊ॥" के नाते; मुझे सन्त-हृदय का पूर्ण विश्वास था, कि मेरी इस दिशा की चपलती हुई लौ के समय में, जोभी कुछ मुझ से अपराध बन पड़ेंगे, मुनिराज उन्हें क्षमा और दया की दृष्टि से देखेंगे। हुआ भी ठीक वैसा ही। पुस्तक छप कर पाठकों के हाथों पहुँची। वहाँ उस का अनादर या समादर हुआ,यह मैं कह नहीं सकता। किन्तु, हाँ, अनुमान और अनुभव के आधार पर, यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है, कि बहु-संख्यक पाठकों ने

इसे किसी भी पर-हित या स्व-हित के नाते से अभी तक लगातार मंगाना जोरों से जारी रख छोड़ा है।

इसी मांग-क्रम के नाते, हमारे कृपालु पाठकों का इसकी ओर दिली प्रेम देख कर, हम इस वार पहले से इसे, एक विशेष रूप में उन के हाथों रख रहे हैं। इस वार, हमने प्रयत्न किया है, कि इस के पापोपचार रामवाण नुसखे सरलातिसरल रूप में, सुन्दर से भी सुन्दर जायके के साथ, और शुद्ध से भी शुद्ध रूप की वनावट में संसार के हाथों दिये जाय; जिस से एक अनपढ़ भी इन के द्वारा ठीक उसी रूप में अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति कर सके, जिस तरह एक विद्वान् उसे अपना कर, अपने जीवन और जन्म को जगती तल में श्रेष्ठ बनाता है। इस प्रयत्न के घाट सफलता-पूर्वक उतरनेमें हमने अपने जैन जगत् के परम साहित्यानुरागी, और कई ग्रन्थों के लेखक तथा सङ्ग्रहकार, पण्डित मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज से प्रार्थना की थी। तदनुसार, उन्होंने इस का सरलातिसरल अनुवाद हमें कर दिया, और इसे हर प्रकार से शोध कर इस के साथ अन्तर्कथाओं को जोड दिया। अस्तु। हम उन के हृदय से कृतज्ञ हैं। आशा है, कृपालु पाठक इस पुस्तक की काया-पलटाने की हमारी इस धृष्ट किन्तु जन हितकारी कल्पना को क्षमा और सन्तोष की दृष्टी से देखेंगे।

प्रकाशक

॥ श्री ॥

खुश खबर ।

सर्व सज्जनों को विदित हो कि वैशाख सुदि ५ संवत् १९८९ को श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने "श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस" के नाम से एक प्रेस कायम किया है । इस प्रेस में हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी का काम बहुत अच्छा और स्वच्छ तथा सुन्दर छापकर ठीक समय पर दिया जाता है । छपाई के चारजेस वगैरा भी किफायत से लिये जाते हैं ।

अतःएव धर्म प्रेमी सज्जन, छपाई का काम भेजकर धर्म परिचय देने की कृपा करेंगे, ऐसी आशा है ।

निवेदकः-

मैनेजर

श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,

रतलाम

॥ ॐ ॥

वन्दे वीरम् ।

अ-ष्टा-द-श-पाप-निषेध ।

शेर

(पाप से बचने की गज़लें इस के अन्दर श्रेष्ठ हैं)

❀ वीर-स्तुति ❀

(तर्ज- मेरे स्वामी बुलालो मुगत में मुझे ।)

महावीर से ध्यान लगाया करो; सुख सम्पत इच्छित पाया करो ॥ टेक ॥ क्यों भटकता जगत में; महावीर सा दूजा नहीं । त्रशला के नंदन जगत-वन्दनं; अनन्त ज्ञानी है वही । उनके चरणों में शीश नॅवया करो ॥ महा० ॥१॥ जगत-भूषण विगत-दूषण; अधम—उधारण वीर है । सूर्य से भी तेज है; सागर सम गम्भीर है । ऐसे प्रभु को नित उठ ध्याया करो ॥ महा० ॥ २ ॥ महावीर के परताप से; होती विजय मेरी सदा । मेरे वसीला है उन्हीं का ! जाप से टले आपदा । ज़रा तन मन से लौव लगाया

करो ॥ महा० ॥ खसानी ग्यारह ठाणा; आया चौरासी साल है । कहे चौथमल गुरु कृपासे; मेर वरते मङ्गल माल है । सदा आनंद हर्ष मनाया करो ॥ महा० ॥ ४ ॥

भावार्थः—महावीर भगवान् से अपनी लौ लगाया करो (और) मनचाही सुख सम्पत्ति पाया करो । (महावीर को छोड़ कर) ससार में क्यों भटकते फिरते हो; महावीर के समान कोई दूसरा (यहाँ) नहीं है । त्रिशला के नन्दन जगत् म त्र के पूजनीय हैं और वे अपार ज्ञानी हैं। उन के चरणों में वन्दना किया करो ॥१॥ (वे) जगत् के भूषण, दोषों से रहित, और पापियों का उद्धार करने वाले वीर हैं । उन का तेज सूर्य से भी अधिक है; व समुद्र क समान गम्भीर है । ऐसे प्रभु का, सदा उठकर ध्यान कियाकरो ॥ २ ॥ (यह) महावीर (ही) का प्रताप है, जिससे मेरी विजय होती है (अर्थात् मुझ प्रत्येक काम में सफलता मिलती है ।) मेरे तो (एक मात्र) उन्हीं का वसीला है । उन का स्मरण करते रहन से (सारी) आपदाएं दूर हो जाती है । अपना शरीर और मन को एकाग्र कर के उन का ध्यान किया करो ॥ ३ ॥ संवत् १९८४ वि० के साल में 'खसानी' का ग्यारह ठाणा आये । गुरु की कृपा से चौथमल कहते हैं, कि मेरे कहन के अनुसार चलने से चारों ओर मङ्गल ही मङ्गल है ।

(यों भगवान् के जप-जाप और ध्यान से) सदा आनन्द और हर्ष मनाया करो ॥ ४ ॥

(१)

[हिंसा-निषेध.]

(तर्ज-उठो बादर कस कमर तुम धर्म की रक्षा करो।)

दिल सतना नहि रवॉ; मालिक का फरमान है। ख़ास इबादत के लिये पैदा हुआ इन्सान है ॥ टेक ॥ दिल बड़ी है चीज़ जहां में; खोल के देखो चशम। दिल गया तो क्या रहा; मुर्दा तो वह समशान है (" इनसान " है-पाठान्तर है) ॥ १ ॥ जुल्म यहां करता उसे; हाकिम भी देता है सजा। माफी नहीं हरगिज कहीं, * कानून के दरम्यान है ॥ २ ॥ आराम अपनी जान को; जिस भांति है प्यारा लगे। आन को तूं समझ वैसे; क्यों बना नादन है ॥ ३ ॥ नेकी का बदला नेक है; कूरान भी यह कह रही। मत बदी पर कस कमर तूं; क्यों हुआ बेइमान है ॥ ४ ॥ बे-गुतफ्गू दोजख में गीरफ़्,-तार तो होगा सही।

---

*(अ)-किसी को गाली देना, किसी का अपमान करना या दिल दुखाना, आदि के लिये दो साल की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ३५२

(ब)-खून करने वाले को मृत्यु की शिक्षा (फासी) कानून धारा ३०२।

(स)-जबर्दस्ती से बेगार करने वाले को, व शक्ति से ज्यादा काम लेनेवाले को एक साल की कैद की सजा। कानून धारा ३७८

गिनती यहां होती नहीं; फिर भूप या दीवान है ॥ ५ ॥ बैठ कर तू तख्त पर; दुखियों की बैने नहीं सुनी। ई फरिश्ते पीटते यहां; होता बड़ा हैरान है ॥ ६ ॥ गले काविल के यहां; फेरायगे लेके छुरा। इनसान होके ना गिने; यह भी तो कोई जान है ॥ ७ ॥ रहम को लाके बरा तू; सख्त दिल को छोड़ दे। चौथमल कहे हो भला जो; इस तरफ कुछ ध्यान दे ॥ ८ ॥

भावार्थ—भगवान् का यह हुक्म है, कि-"किसी का दिल सताना अच्छा नहीं है"। इन्सान इस संसार में खास करके भगवान के जप-जाप ही के लिए पैदा हुआ है। आंखों को खोल कर देखो; दुनिया में दिल बड़ी भारी चीज है। यदि दिल ही चला गया तो फिर क्या रह गया? अर्थात् वह आदमी जो बे-दिल (निर्दयी) है, श्मशान के मुर्दे के समान है ॥ १ ॥ दुनियाँ का भी यही नियम है, कि जो आदमी यहां जुल्म करता है, हाकिम भी उस को सजा देता है। कयामत के अन्दर उस के लिए कभी कोई माफी नहीं है ॥ २ ॥ जिस तरह अपनी जान को आराम अच्छा लगता है, ठीक वैसे ही तू दूसरे को भी समझ। क्यों नादान बना हुआ है ॥ ३ ॥ कुरान शरीफ में भी लिखा हुआ है, कि भलाई का फल भला (और बुराई का बदला बुरा होता है)। इसलिए तू

बदी करने पर मत उतर, मत तैयार हो । क्यों बेईमान बना हुआ है ॥ ४ ॥ चाहे फिर कोई राजा हो, या दीवान नरक में उन को अपनी करणी का फल अवश्य भोगना पड़ेगा; वहां किसी का बड़ापन या छोटापन कभी नहीं देखा जाता ॥ ५ ॥ राजा बन कर भी, तू ने कभी दुखियों की फर्याद को न सुना । इस के कारण देव-दूत वहां तुझे पीटेंगे और तू वहां बड़ा हैरान होगा ॥ ६ ॥ निर्दयी पुरुषों के गले पर वहां छुरे फिराये जावेंगे। भला; आदमी हो कर के भी तू नहीं समझता ? अरे देख ! ये संसारी प्राणी भी तो बेचारे कोई प्राणी हैं ॥ ७ ॥

(२)

(झूठ—निषेध)

(तर्ज-पूर्ववत्)

सोच नर इस झूठ से, आराम तू नहीं पायगा। हर जगह दुनियाँ में नर, परतीत भी उठ जायगा ॥ टेक ॥ सांच भी गर तू कहे, ईश की खाकर कसम । लोग गपी जानकर, ईमान कोई नाहिं लायगा ॥ १ ॥ क्रोध भय, अरु हास्य, चौथा,—लोभ में हो अन्ध नर। बोलते हैं झूठ उनके—हाथ में क्या आयगा ॥ २ ॥ झूठ पोशीदा रहे कब-लग जरा तुम सोचलो । सत्यता के सामने, शर-मिन्दगी तू खायगा ॥ ३ ॥ झूठे बोले शख्श की दोज़ख

में है पसारे जावें । मालकर जावे पदल उसका फल वहां पायगा ॥ ४ ॥ बालता है झूठ जो तू, जिस लिए ऐ बेहया वह सदा रहता नहीं देखत बिरलायगा ॥ ५ ॥ सब धर्म शास्त्र दखलो, है झूठ का सौदा मना । इसलिये तज झूठ को, इज्जत तेरी बढ़ जायगा ॥६॥ गुरु पाद के परसाद से, कह चौथमल सुन ला जरा । धार ले तू सत्य को, आवागमन मिट जायगा ॥ ७ ॥

भावार्थ—ए मनुष्य ! तू विचार कर के देख; इस झूठ से तू कभी आराम नहीं पावेगा । इसी झूठ के कारण से दुनियाँ में प्रत्यक्ष जगह से तेरा विश्वास भी उठ जायगा । फिर तू यदि भगवान की सौगन्द खा कर भी सत्य कहेगा, तब भी लोग तुझे गपी ही समझते रहेंगे; और तेरी सचाई का किसी को एतबार ही न होगा ॥१॥ फिर, जो लोग क्रोध, भय, हंसी और लोभ के वश अन्धे हो कर झूठ बोलते हैं, उनके हाथ आनेवाला ही क्या पड़ा है ! ॥२॥ झूठ कब तक छिपाने से छिपेगा ! जरा तुम सोचो तो सही । एक न एक दिन सत्य के सामने इस की पोल खुल जायगा; और तू बड़ा ही शरमायगा ॥ ३ ॥ जो शख्स झूठ बोलने वाला होता है, उस की नरक में जबान कतरी जाती है । और जो कोई पाप करकर के बदल जाता है, उसका भी फल वह वहां अवश्य पाता ही है ॥ ४ ॥ ऐ बेशरम जिसके

लिए तूं झूठ बोलता है वह सदा नहीं रहता, देखते ही देखते वह तो मटियामेट हो जाता है ॥ ५ ॥ जितने भी धर्म—शास्त्र हैं सभी एक स्वर से झूठ को बुरा बतलाते हैं इसलिए, झूठ मे तूं भी परहेज कर, तू झूठ बोलना छोड़दे यों करने से तेरी इज्जत बढ़ जावेगी ॥ ६ ॥ गुरु-चरणों की कृपा का भरोसा मन में रख कर चौथमल जो कहता है, उसे भी जरा सुनलो कि यदि तूं सत्य को धारण करले यदि तू सत्य बोलना सीख जाय तो बार बार के जीवन और मरण ही की झञ्झट ही से छूट जायगा ॥ ७ ॥

(३)

[चोरी—निषेध ।]

(तर्ज -पूर्ववत्)

इज्जत तेरी बढ जायगी, तू चोरी करना छोड दे ।
मान ले मेरी नसीहत, तू चोरी करना छोड दे ॥ टेक ॥
माल लख कर गैर का दिल चोर का आशिक हुआ ।
साफ नीयत ना रहे, तूं चोरी का करना छोड़ दे ॥ १ ॥
दृष्टि उस की चौ तरफ, रहती है मांनिद चीलके । परतीत कोई ना करे, तूं चोरी करना छोड़दे ॥ २ ॥ पोलीस से छिपता फिरे, इक दिन तो पकड़ा जायगा । बेंत से मारे तुझे, तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ३ ॥ नापने अरु जोखने में, चोरी तू कर की करे । रिश्वत भी खाना है यही । तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ४ ॥ अन्याय के धन से

कमी, आराम तो मिलता नहीं। दीन, दुनियाँ में मना, तू चोरी का करना छोड़दे ॥५॥ नुकसान पर किस के कर, आह लगती है सपर। खाक में मिल जायगा, तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ६ ॥ सबर कर पर-माल से, हक बात पर कायम रहे। चौथमल कहता तुझे, तू चोरी का करना छोड़दे ॥७॥

भावार्थ—तू चोरी का करना छोड़दे; तेरी आबरू बढ़ जायगी। मेरी नसीहत को मानले; तू चोरी का करना छोड़दे। दूसरे का माल देखकर चोर का दिल ललचाने लगता है। इससे नीयत साफ नहीं रहती; तू चोरी का करना छोड़दे ॥ १ ॥ जो × चोरी करने वाला है, उसको

× (क)—चोरी तीन या गय रखने वाले को एक साल की सख्त कैद की भी सजा कानून धारा २६४।

(ख) —पहली बार महसूल न चुकाने वाले का माल जब्त कर लिया जाता है। पीछा नहीं मिलता। दूसरी दफा महसूल न चुकाने वाले का माल जप्त करके उस पर दस्त और जुल्म किया जाता है। तीसरी दफा ऐसा अपराध करने पर माल तो जप्त कर ही लिया जाता है पर सख्त कैद की सजा भी दी जाती है।

(ग)—रिश्वत लेनेवाले भार देने व ले दोनों गुनहगार हैं जिनको १ साल की सख्त कैद की सजा। कानून धारा १६१।

(घ) चोरी का माल लेनेवाले को ३ साल की सख्त कैद की सजा और १ [illegible]) तक दण्ड। कानून धारा १५८

(ङ) सेठ की चोरी कर जाने नौकर को ७ साल तक की सख्त कैद की सजा कानून धारा ३ [illegible]।

(च) चोरी का माल छिपाने वाले को तीन साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ४१५।

निगाह चील के मांनिद चौतरफा रहती है। उस का कोई भी भरोसा नहीं करता। इसलिए तू चोरी का करना छोड़ दे॥ २॥ चोर चाहे कितना ही छिपता फिरे एक न एक दिन उसके पाप की पोल अवश्य खुलती है; और तब पुलिस के द्वारा पकड़ा जाता है। फिर बेतों आदि की मार भी उसे खानी पड़ती है। इसलिए, तू चोरी का करना छोड़दे॥ ३॥ फिर नापने जोखने में भी तू चोरी करता है; इसी प्रकार महसूल को चुराने की चेष्टा तू किया करता है। यों चोरी करना एक प्रकार का रिश्वत ही खाना है। इसलिए तू चोरी का करना छोड़दे॥४॥ ए भाई! अन्याय और अधर्म पूर्वक कमाये हुए धन से कभी आराम तो नसीब होता नहीं! फिर यों चोरी आदि के द्वारा धन कमाना, दीन और दुनियां सभी की निगाहों से गिरना है। इसलिए तू चोरी का करना छोड़दे॥ ५॥ अगर तू किस के घर नुक्शान करता है तो उस की आत्मा तुझे सदा कोसती रहेगी। जिससे तू खाक में मिल जायगा। इसलिए तू चोरी का करना छोड़दे॥ ६॥ ए भाई! पराये धन से सब्र कर; अर्थात् तू उसकी इच्छा मत कर। जो हक की बात हो या जो न्याय और धर्म से तुझे मिले उसी पर सन्तोष कर! चौथमल तुझे (बार बार) कहता है, कि चोरी करना छोड़दे॥ ७॥

कमी, आराम तो मिलता नहीं। दीन, दुनियाँ में मना, तू चोरी का करना छोड़दे ॥५॥ नुकसान पर किस के कर, आह लगती है सघर। खाक में मिल जायगा, तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ६ ॥ सबर कर पर-माल से, हक बात पर कायम रहे। चौथमल कहता तुझे, तू चोरी का करना छोड़दे ॥७॥

भावार्थ—तू चोरी का करना छोड़दे; तेरी आबरू घट जायगी। मेरी नसीहत को मानले; तू चोरी का करना छोड़दे। दूसरे का माल देखकर चोर का दिल ललचाने लगता है। इससे नीयत साफ नहीं रहती; तू चोरी का करना छोड़दे ॥ १ ॥ जो × चोरी करने वाला है, उसकी

× (क)—खोटे तौल या गज रखने वाले को एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा २६४।

(ख)—पहली बार महसूल न चुकाने वाले का माल जब्त करलिया जाता है। पीछा नहीं मिलता। दूसरी दफा महसूल न चुकाने वाले का माल जब्त करके उस पर दण्ड और जुर्माना किया जाता है। तीसरी दफा ऐसा अपराध करने पर माल तो जब्त कर ही लिया जाता है, पर सख्त कैद की सजा भी साथ ही अर्थ है।

(ग)—रिश्वत लेनेवाले और देनेवाले दोनों गुनहगार हैं जिनको १ साल की सख्त कैद की सजा। कानून धारा १६१।

(घ) चोरी का माल लेनेवाले को [illegible] साल की सख्त कैद की सजा और १) तक दण्ड। कानून धारा १८८

(ङ) सेठ की चोरी करने वाले नौकर को ७ साल तक की सख्त कैद की सजा कानून धारा ३८१

(च) गिरा हुआ माल छिपाने वाले को तीन साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ४०३।

निगाह चील के मानिंद चौतरफा रहती है। उस का कोई भी भरोसा नहीं करता। इसलिए तू चोरी का करना छोड़ दे ॥ २ ॥ चोर चाहे कितना ही छिपता फिरे एक न एक दिन उसके पाप की पोल अवश्य खुलती है; और तब पुलिस के द्वारा पकड़ा जाता है। फिर बेतों आदि की मार भी उसे खानी पड़ती है। इसलिए, तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ३ ॥ फिर नापने जांखने में भी तू चोरी करता है; इसी प्रकार महसूल को चुराने की चेष्टा तू किया करता है। यों चोरी करना एक प्रकार का रिश्वत ही खाना है। इसलिए तू चोरी का करना छोड़दे ॥४॥ ए भाई! अन्याय और अधर्म पूर्वक कमाये हुए धन से कभी आराम तो नसीब होता नहीं! फिर यों चोरी आदि के द्वारा धन कमाना, दीन और दुनियां सभी की निगाहों से गिरना है। इसलिए तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ५ ॥ अगर तू किस के घर नुकशान करता है तो उस की आत्मा तुझे सदा कोसती रहेगी। जिससे तू खाक में मिल जायगा। इसलिए तू चोरी का करना छोड़दे ॥ ६ ॥ ए भाई! पराये धन से सब्र कर; अर्थात् तू उसकी इच्छा मत कर। जो हक की बात हो या जो न्याय और धर्म से तुझे मिले उसी पर सन्तोष कर! चौथमल तुझे (बार बार) कहता है, कि चोरी करना छोड़दे ॥ ७ ॥

[४]
[पर-स्त्री-निषेध]
(तर्ज-पूर्ववत्)

लाखों कामी मिट चुके, पर-नार के परसङ्ग से। मुनिराज कहते तुम बचो, परनार के परसङ्ग से॥ टेक॥ दीप-लौ पर पड़ पतङ्ग, ये मौत मरता है जिमी। त्योंहि कामी कट मरे, परनार के परसङ्ग से॥ १॥ पर-नार का जो हुस्न है, वह अग्नि के इक कुण्ड सम। तन धन, सब को हामत, परनार के परसङ्ग से॥ २॥ मूठ निशान पर घुमाना, इन जान का लाजिम नहीं। सताक गाली से सड़, पर-नार के परसङ्ग से॥ ३॥ चार सौ सत्त सुनें, कानून में है इक दफा। * दण्ड हाकिम से मिले, पर-नार के परसङ्ग से॥ ४॥ जैन—शास्त्रों में मना, औ मनुस्मृति भी

* (अ) स्त्री की लज्जा के लूटनेवाले को दो साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ३५४।
(ब) स्त्री की इच्छा के बिना भोग भोगनेवाले को दस साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ३७६।
(स) चौदह उमर की कम स्त्री के साथ भी भोग भोगनेवाले को दस साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ३७६।
(द) पुरुष पुरुष के साथ स्त्री स्त्री के साथ या पशु साथ भोग भोगनेवाले पुरुष को दस साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ३७७।
(इ) गर्भ-पात करने व करानेवाले को तीन व सात साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ३१२।

देख लो। कूरान, बाइबल में लिखा, परनार के परसङ्ग से ॥ ५ ॥ कीचक रावण चल बसे परनार को ताक में। मणोरथ भी मर मिटा, पर नार के परसङ्ग से ॥ ६ ॥ विष बुझी तलवार से, यजर मुल्जिम बदकार के। बौछार की हजरत अली पर, परनार के परसङ्ग से ॥ ७ ॥ कुत्ते को कुत्ता काटता, कत्ल नर नर को करे। पल में मुहब्बत टूटती, परनार के परसङ्ग से ॥ ८ ॥ किसलिए पैदा हुआ ऐ बेहया कुछ सोच तू। कहे चौथमल अब सब्र कर, पर नार के परसङ्ग से ॥ ९ ॥

भावार्थ—लाखों कामी पुरुष, पराई स्त्री के प्रसङ्ग से तहस-नहस हो चुके। अतः सन्तजन तुम्हें कहते हैं, कि तुम पराई-स्त्री के प्रसङ्ग से बचे रहो। जिस तरह दीये की लौ पर पड़कर पतङ्ग बिना मौत के मर मिटता है, ठीक उसी तरह, कामी पुरुष भी पराई स्त्री के प्रसङ्ग से कट मरते है ॥ १ ॥ पराई-स्त्री का सौन्दर्य-दर्शन अग्नि के एक कुण्ड के समान है। और जिस भांति अग्नि-कुण्ड में गिर कर कोई भी चीज खाक हो जाती है, उसीतरह, कामी पुरुष पराई-स्त्री के प्रसङ्ग मे अपने तन धन और सर्वस्व को होम देते हैं ॥ २ ॥ झूठे निवाले पर, किसी पुरुष को लुभाना योग्य नहीं है। क्यों कि, झूठे कौर पर तो बारी, वायस श्वान लुभाया करते हैं। जैसे, कहा है कि—

"झूठी पत्थर मकत है, वारी वायस श्वान"
प्रयागदास
(जोधपुरा के महाराज की वैश्या)

फिर, पराई-स्त्री के प्रसङ्ग से लोग सूजाक आदि तरह तरह के भयङ्कर और शरमिन्दगी पैदा करने वाले रोगों में भी तो फँस जाते हैं॥ ३ ॥ कविता-कामिनी-कान्त महा कवि 'शङ्कर' ने पतुरियों के फन्दे में किसी पुरुष को फँसा हुआ देखकर उसे उसी की स्त्री के द्वारा कितना अच्छा समझाया है! प्रसङ्ग वश उसे हम यहाँ उद्धृत किये देते हैं-

सैयाँ न पसी नचाओ पतुरियाँ।
गाने पै रीझो बजाने पै रीझो
पत्नी की छातीमें छेदो न छुरियाँ
पापों की पूँजी पचेगी न प्यारे
खाते फिरोगे हकीमों की पुरियाँ॥
डोलेगे खासी कुलाते कराहते
हाथों में पूरी न होंगी अँगुरियाँ।
जो हाय 'शङ्कर' दशा होगी ऐसी
तो मेरी कैसे बचाय लोगी चुरियाँ॥
— अनुराग रत्न।

अर्थात् ऐ स्वामी! पतुरियों को इस तरह आप न नचाओ उनके फन्दे में यों न फँस जाओ। चाहे, आप उनके गाने और बजाने पर रीझा करो, परन्तु मुझ दासी की छाती में यों छुरियाँ न छेदो; मुझ अपमान और

वियोग की आगी में यों न जलाओ । ऐ प्यारे ! यह पापों की पूंजी, जो तुम पराई-स्त्रियों के प्रसङ्ग से कमा रहेहो, किसी हालत में पच न सकेगी ! इस का नतीजा यों होगा, कि तुम हकीमों डाक्टरों, वैद्यों आदि के यहां भटकते फिरोगे; और उन की पुड़िया खाते फिरोगे । इतना ही नहीं, वन में, वृक्षों की डाली डाली पर, तरह तरह की जड़ी- बूंटियाँ और पत्तों आदि के लेने के लिए डुलाते फिरोगे; और उस समय कोढ़ आदि असाध्य और महान् भयङ्कर रोगों के कारण तुम्हारे हाथों में पूरी अंगुलिया भी न होंगी । हाय ! यदि आप की ऐसी दशा हो गई ! तो फिर आप मेरी सुहाग की चूड़ियों की रक्षा कैसे करोगे ! आप असमय में ही यहां से ˙ ˙– ।"

हमारे आज के कानून से भी पराई—स्त्री को बद-नीयत से देखना मना है । उस के लिए कानून में ४६७ नम्बर की धारा निर्धारित है। पराई-स्त्री के प्रसङ्ग से हाकिम से दण्ड मिलता है ॥ ४ ॥ फिर क्या जैन-सूत्र, और क्या मनुस्मृति, क्या कुरान और क्या बाइबल सभी में पराई-स्त्री का प्रसङ्ग करना मना है ॥ ५ ॥ जैसे, कहा है—

"तप्ताङ्गार समा नारी घृत-कुम्भ समः पुमान् ।
तस्मात् वह्निं घृतं चैव नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥"

अर्थात् स्त्री जलते हुए अङ्गार की तरह है; और पुरुष घी के घड़े के समान है। इस लिए आग और घी दोनों को बुद्धिमान् लोग एक जगह न रक्खें।

और—

"पश्यति परस्य युवतीं सकाममपि तन्मनोरथं कुरुते।
ज्ञात्वैव नहि प्राप्तिं व्यर्थं मनुजो हि पाप भागी भवति॥"

अर्थात् मनुष्य दूसरे की युवती स्त्री को देखता है; और यह जानते हुए भी कि वह मुझ को मिलेगी नहीं, कामातुर होकर उस के पाने की इच्छा करता है। अपने इस (निन्दनीय) व्यवहार से वह व्यर्थ ही पाप का भागी बनता है।

और भी कहा है

The women are the flames of passion burning with the fuel of beauty. Lustful men throw into that fire their wealth and health.

अर्थात् पर-नारियाँ सुन्दरता रूपी ईंधन से जलती हुई भयंकर कामाग्नि है। कामी पुरुष इस अग्नि में अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं।

और भी कहा है, कि—

Beauty of the woman is a witch against whose charms faith melteth into blood." * —Much Ado II. 1

अर्थात् परनारियों की खूबसूरती वह जादूगरनी है, जिस के जादू से ईमान का खून हो जाता है।

फौन्टेनेली महोदय कहते है--

"A beautiful woman is the "HELL" of the soul the "PURGATORY" of the purse and the "PARADISE" of the eyes."

अर्थात् सुन्दरी कामिनी आत्मा का नरक, सम्पति का नाश और आंखों का स्वर्ग है। आदि।

कीचक और रावण पराई स्त्रियों की ताक में लगे और इसी लिए उन का नाश हुआ। मणीरथ भी पर-नारि के प्रसंग ही से मर मिटा ॥ ६॥ पराई-स्त्री के प्रसग वश ही एक दुष्ट यवन मूल्जिम ने हजरत अली पर विष--बुझी तलवार से वार किया था ॥ ७ ॥ इसी पर-स्त्री के प्रसङ्ग--वश एक कुत्ता दूसरे कुत्ते को काटता है; और एक मनुष्य दूसरे का खून पिता हुआ नजर आता है; और इसी निन्दनीय काम के आधीन हो जाने पर वर्षों की प्रीति पल-भर में टूट जाती है ॥ ८ ॥ इस लिए, चौथमल कहता है, कि ऐ बेशर्म ! तू संसार में किस लिए पैदा हुआ है, जरा सोच ! और पराई-स्त्री के प्रसङ्ग से अब तो सब्र कर!! ॥ ९ ॥

[४]

(धन का दुरुपयोग निषेध ।)

(तर्ज-पूर्ववत्)

क्यों पाप का भागी बने, ए सनम धन के लिए । जुल्म करता गैर पर ऐ सनम धन के लिए ॥ टेक ॥ तमन्ना तेरी बढ़ी यों, एक हलाल गिनता नहीं । छोड़ के अज़ीज़ को, परदेश जा धन के लिए ॥ १ ॥ स्वप्न अन्दर भी न देखा, ना नाम भी कानो सुना । गुलामी करता उस की और, देख लो धन के लिए ॥ २ ॥ फकीर साधू पास था, खिदमत करे कर जोड़ के । बूँटी को फिरता ढूंढता तू, ऐ सनम् धन के लिए ॥ ३ ॥ इस के लिए भाई— बन्धुओं से, मुकदमा बाजी करे । कोरटों के बीच में तू, घूमता धन के लिए ॥ ४ ॥ इस के लिए कर खून चोरी, फिर आवे जेल * में । झूठी गवा देता बिगानी, ऐ सनम धन

* (क)—झूठी सौगन्ध खानेवाले को छः मास तक की सख्त कैद की सजा । कानून धारा १५८ ।

(ख)—दूसरे का भूला हुआ माल खर्च करनेवाले को दो साल तक की सख्त कैदकी सजा । कानून धारा ४ २ ।

(ग) मिली हुई वस्तु उस के मूल मालिक को न देने से व उसके मालिक को न ढूंढने से दो साल तक की सजा । कानून धारा ४ १ ।

(घ) रुपये उधार लेकर वापस न देने से दो साल तक की सख्त कैद की सजा । कानून धारा ४१५ ।

के लिए ॥ ५ ॥ तकलीफ क्या कमती उठाई, जिनरक्ख औ जिन-पाल ने। सेठ सागर प्राण खोया, नीरधि में धन के लिए ॥ ६ ॥ फिसाद की तो जड़ बताई; माल और औलाद को। कुरान के अन्दर लिखा है, देखलो धन के लिए ॥ ७ ॥ भगवान श्री महावीर ने भी, मूल अनरथ का कहा। पुराण में भी है लिखा, नाश इस धन के लिए ॥ ८ ॥ गुरु-पाद के परसाद से; चौथमल यों कह रहा। धार ले सन्तोष को तू, मत मरे धन के लिए ॥ ९ ॥

भावार्थः-ऐ प्यारे! [तू] धन के लिए क्यों पाप का भागी बनता है! ऐ प्यारे! [तू] इसी धन के लिए दूसरों पर जुल्म करता है (यह ठीक नहीं)! इस धन के लिए तेरी इच्छा ऐसी बढ़ी हुई है, कि तू हलाल और हराम जरा भी कुछ नहीं गिनता; और इस धन ही के लिए तू अपने स्नेहियों को छोड़ कर परदेश में जाता है ॥ १ ॥ जिस पुरुष को कभी स्वप्न में भी न देखा हो; जिस का कभी नाम तक जाना, सुना न हो; कहो तो, धन के लिए मनुष्य उस की भी गुलामी करने को उतारू हो जाता है ॥ २ ॥ ऐ प्यारे तू! इसी धन के लिए (गली गली के) फकीरों और साधुओं के पास जाता है; हाथ जोड़ कर उन की टहल-चाकरी करता है और (वन वन की) जडी बूंटियों को ढूंढ़ता फिरता है ॥ ३ ॥

तू इसी धन के लिए भाई बन्धुओं से मुकदमाबाजी करता है। और पैसे पैसे के लिए कोर्टों के बीच घूमता फिरता है ॥ ४ ॥ इसी धन के लिए तू चोरी और बटमारी करता है, खूनखच्चर मचाता है और फिर जेल में आ कर सड़ता है। तथा, ऐ प्यारे इसी धन— शुर धन के लिए, तू गीता और गङ्गा तथा कुरान को हाथों में ले कर दूसरों के लिए झूठी गवाहें कोर्टों में देता फिरता है ॥ ५ कमा जिनरक्ख और जिन पाल ने इसी धन के लिए कम तकलीफें उठाई हैं ? सेठ सागर ने भी तो इसी धन के लिए समुद्र में अपने प्राणों को गंवाया था ॥ ६ ॥ देखो, कुरान शरीफ भी तो कह रही है, कि माल और औलाद यही दो चीजें ससार में सारी फिसाद की जड़ हैं ॥ ७ ॥ श्री भगवान महावीर ने भी तो इस धन को अनर्थ का मूल कह कर पुकारा है और पुराण भी इस बात का जगह जगह प्रमाण दे रहे हैं, कि यही धन संसार के सर्व—नाश का कारण है ॥ ८ ॥ इस लिए, चौथमल गुरु-चरणों की शरण ले कर तुझे बार बार चिताता है, कि तू सतोष को धार ले और धन के लिए हाय हाय मत कर ॥ ९ ॥

(६)

[गजल क्रोध (गुस्सा) निषेध पर]

(तर्ज-पूर्ववत्)

आदत तेरी गई बिगड़, इस क्रोध के परताप से । अजीज भी बद मानते, इस क्रोध के परताप से ॥ टेर ॥ दुशमन से बढ़ कर यही, मोहब्बत तुड़ावे मिनिट में । सर्प मॉनिंद डरे तुझ से, इस क्रोध के परताप से ॥ १ ॥ सलवट पड़े मुँह पर तुरत, कँपे मॉनिंद जिन्द के । चश्म भी कैसे बने, इस क्रोध के परताप से ॥ २ ॥ जहर फाँसी को खा, पानी में पड कर मर गये । वतन कर गये तर्क कई, इस क्रोध के परताप से ॥ ३ ॥ बाल बच्चों को भी माता, क्रोध के वश फेंकदे । कुछ सूझता उस को नहीं, इस क्रोध के परताप से ॥ ४ ॥ चण्ड-रुद्र आचार्य की, नजीर पर करिये निगाह । सर्प-चँडकोसा हुआ, इस क्रोध के परताप से ॥ ५ ॥ दिल भी काबू ना रहे, नुकसान कर रोता वही । धरम करम भी ना गिने, इस क्रोध के परताप से ॥ ६ ॥ खुद भी जले पर को जलावे, ज्ञान की हानी करे । सूख जावे खून उस का, इस क्रोध के परताप से ॥ ७ ॥ उन के लिये हँसना बुरा, बीराग को जैसे हवा । नाश इन्शाँ हक में समझो, इस क्रोध के परताप से ॥ ८ ॥ शैतान का फरजन्द यह, और जाहिलों का दोस्त है । बदकार

का पाथा लगे, इस क्रोध के परताप से ॥ ६ ॥ इवादत फाकाकशी, सब खाक में देवे मिला। दोजख का पंथ है देखता, इस क्रोध के परताप से ॥ १० ॥ पयदास से बदतर नहीं, गुस्सा बड़ा बेइमान है। कह चौथमल कब हो भला, इस क्रोध के परताप से ॥ ११ ॥

भावार्थ—ए भाई! इस क्रोध के परताप से तेरी आदत बिगड़ गई। इसी क्रोध के प्रताप से तेरे सनेही लोग भी तुझे बुरा मानते हैं। यह क्रोध, तेरा दुश्मन से भी बढ़ कर दुश्मन है; पल भर में यह वर्षों की मुहब्बत तुड़ा बैठता है। इसी क्रोध के प्रताप से लोग तुमसे सर्प की भाँति डरते हैं ॥ १ ॥ इस क्रोध के कारण तेरे मुँह पर सल पड़ जाते हैं; और जिन्द की भाँति काँप उठता है। आँखेंभी इस क्रोध के कारण बड़ी ही विचित्र बन जाती हैं ॥ २ ॥ इसी क्रोध के कारण कई लोग जहर खा कर मर गये! कई पानी में पड़ कर इस ससार से चल बसे; कई फाँसी को चले गये; और कई लोगों को देश से निर्वासित कर दिया गया ॥ ३ ॥ माता कभी कमाता नहीं होती, किन्तु इसी क्रोध के आवश में वह भी अपने बाल बच्चों को गोदी से फेंक देती है; और उस समय उसे अपना पराया कुछ भी नहीं सूझता ॥ ४ ॥ इसी क्रोध के प्रताप से बेचारा चण्ड—रुद्र आचार्य, चण्डकोसा सर्प की योनि को प्राप्त

हुआ; जरा इस के उदाहरण पर भी ध्यान दीजिये ॥ ५ ॥ लोग इसी क्रोध के आवेश में आकर धर्म-कर्म को भी कुछ नहीं गिनते ; नुकसान कर बैठने पर फिर रोते हैं; और उनका अपने दिल पर भी काबू नहीं रहता ॥ ६ ॥ यही क्रोध एक ऐसी आगी है जिस के कारण क्रोधी मनुष्य खुद भी जलता है; दूसरों को भी जलाता है; उस को सदासद् विवेक का भी ज्ञान नहीं रहता; और वह सूख कर काँटा सा बन जाता है ॥ ७ ॥ जैसे हँसी मनुष्य के हक में बुरी है; दीपक को हवा बुझा देती है ; उसी तरह क्रोध से मनुष्य का सत्यानाश मिल जाता है ॥ ८ ॥ इसी क्रोध के कारण मनुष्य शैतान की सन्तान कहलाता है; मूर्खों का दोस्त और बदमाशों का चाचा भी वह बनता रहता है ॥ ९ ॥ मनुष्य इसी क्रोध के कारण भगवान् की बन्दगी और व्रत-उपवासों तक को भुला देता है। सचमुच यह क्रोध नरक का रास्ता है ॥ १० ॥ यह क्रोध बड़ा बेईमान है ; चाण्डाल से भी गया गुजरा है। इस-लिये चौथमल कहता है कि इस क्रोध के कारण कब किस का भला हुआ और हो सकता है ? अर्थात् कभी नहीं ॥ ११ ॥

(७)
[गजल गरूर (मान) निषेध]
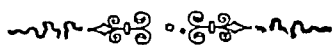
॥ तर्जः-पूर्ववत् ॥

सदा यहां रहना नहीं, तू मान करना छोड़दे। शाहंशाह भी ना रहे, तू मान करना छोड़दे ॥ टेक ॥ जैस खिला है फूल गुलशन, अजीजों यों देखले। आखिर सो यह कुँमलायगा, तू मान करना छोड़ दे ॥ १ ॥ नूर मे वे पूर थे, लाखों उठाते हुक्म को। पर खाक में वे मिल गये, तू मान करना छोड़ दे ॥ २ ॥ परशु ने क्षत्री हन शम्भूम ने मारा उसे। शम्भूम भी यों ना रहा, तू मान करना छोड़ दे ॥ ३ ॥ जरासन्ध औ कंस को, श्रीकृष्ण ने मारा सही। फिर जर्द ने उन को हना, तू मान करना छोड़दे ॥ ४ ॥ रावण से इन्द्र दबा, राम ने रावण हना। न वह रहा ना वे रहे, तू मान करना छोड़दे ॥ ५ ॥ रब का हुकुम माना नहीं, काफिर अजाजिल बन गया। शैतान सब उस को कहें, तू मान करना छोड़दे ॥ ६ ॥ गुरु-पाद के परसाद से, चौथमल विनती करे। आजिजी सब में बड़ी तू मान करना छोड़दे ॥ ७ ॥

भावार्थ-ऐ संसारी! एक न एक दिन यहां से अवश्य ही चलना पड़ेगा, ऐसा जान कर तू अभिमान करना, शेखी मारना छोड़दे। बड़े बड़े शाहंशाह भी इस पृथ्वी पर न

रहे; वे भी यहां से धर्मशाला के मुसाफिर की भाँति चल बसे । इसलिये तू मान करना छोड़दे । ऐ प्यारे! फूल जिस तरह बगीचे में दो दिन के लिये खिलता है; अन्त में तो कुम्हलाता ही है; इसी तरह हमारी जिन्दगी भी यहां सदा की रहने वाली नहीं है । इसलिये तू मान करना छोड़दे ॥ १ ॥ वे बडे बड़े लोग, जिन के यश और प्रताप की चारों तरफ धाक थी; और लाखों लोग जिन के हुक्म को उठाते थे ; वे भी खाक में मिल गये; वे भी यहां न रहे । इसलिये तू गरूर करना छोड़दे ॥ २ ॥ देख, परशुराम ने क्षत्रियों को तहस-नहस किया; फिर शम्भूम ने उन्हें मार गिराया । पर ऐसा बली शम्भूम भी यहां न रहा । अतः तू अभिमान करना छोड़दे ॥ ३ ॥ फिर, जरासन्ध और कंस को श्रीकृष्णचन्द्रजी ने मारा । और उन्हें भी एक व्याधने मार गिराया । इसलिये तू अभिमान को कभी पास भी न फटकने दे ॥ ४ ॥ इन्द्र को रावण ने दबाया ; तो राम ने रावण को मार गिराया । फिर न तो वह रावण ही रहा, और न वे राम ही रहे । इसलिये तू मान करना छोड़ दे ॥ ५ ॥ इसी मान के कारण से अजाजिल ने पैगम्बर साहब का हुक्म नहीं माना;और वह काफिर बन गया, तथा उसे लोग शैतान कह कर पुकारने लगे ॥ ६ ॥ गुरुचरणों

का भरोसा रख कर के चौथमल सब से विनय करता है कि प्रेम हीका सब जगह सन्मान होता है। इसलिये द मान करना छोड़दे ॥ ७ ॥

(८)

[गजल दगाबाजी (कपट) निषेध]

(तर्ज़-पूर्ववत्)

जीना तुझे दिन चार का, तू दगा करना छोड़दे। पाक रख दिल को सदा, तू दगा करना छोड़दे ॥ टेक ॥ दगा कहो या कपट, जाल; फरेब या तिरपट कहो। चीता, चोर, कमान-वत्, तू दगा करना छोड़दे ॥ १ ॥ चलते उठते देखते औ, बोलते हँसते दगा। तौलने औ नापने में दगा करना छोड़दे ॥ २ ॥ माता कही, बहनें कही, परनार को ललचा फिरे। क्यों जाल कर जाहिल बने, तू दगा करना छोड़दे ॥ ३ ॥ मर्द का आरत बने औ, नारि का ना पुरुष हो। लख चौरासी योनि भुगते, तू दगा करना छोड़दे ॥ ४ ॥ दगा से आ पूतना ने, गोद में लिया कृष्ण का। नतीजा उसको मिला, तू दगा करना छोड़दे ॥ ५ ॥ कौरवों न पाण्डवों से, दगा कर जूआ रमी। कौरवों की हार हुई, तू दगा करना छोड़दे ॥ ६ ॥ कुरान, पुरान में

है सना, * कानून में भी है सजा । महावीर का फरमान है, तू दगा करना छोड़दे ॥ ७ ॥ शिकारी कर के दगा, जीवों की हिंसा वह करे । मांजार बग की समां तू दगा करना छोड़दे ॥ ८ ॥ इज्जत में आता है फरक, एतबार कोईना गिने । मित्रता भी टूट जाती, दगा करना छोड़दे ॥९॥ क्या लाया लेजायगा क्या, गौर कर इस पर जरा । चौथमल कहे नम्र हो, तू दगा करना छोड़ दे ॥१०॥

भावार्थ--ऐ भाई ! देख, यह जिन्दगानी केवल चार दिन की है, हां कहते मे मिट जानेवाली है; तू दगा

---

* (अ)-भोजन में विष देनेवाले को फांसी तक की सजा । कानून धारा ३०२

(ब)--बनावटी अँगूठा या सही करनेवाले को सात साल तक की सख्त कैद की सजा । कानून धारा ५४७

(स)-झूठे खत, दस्तावेज, रजिस्ट्री, आदि के लिखनेवाले को सात साल तक की सजा । कानून धारा १६५ ।

(द)--विश्वासघात करनवाले को दस साल की सख्त कैद की सजा । कानून धारा ४०६ ।

(इ) नमूने के मुआफिक माल न देने से, असली कीमत में नकली माल देनेवाले को और नकली माल का दाम असली माल के बराबर लेने मे एक साल तक की सख्त कैद की सजा । कानून धारा ४१५ ।

(फ) अच्छा माल बता करके बुरा माल देनेवाले को सात साल तक की सख्त कैद की सजा । कानून धारा ४२० ।

(ह) ताजा दाल, आटा, आदि में पुराना माल मिलानेवाले को छः मास की सख़्त कैद की सजा और १०) रुपये तक दण्ड । कानून धारा १८८

करना छोड़दे । तू अपन दिल को सदा अच्छे विचारों मे साफ रख । तू दगा करना छोड़ दे । इसे तुम दगा कहो, या कपट; या जाल या, फरेब, या विश्वास घात भी कहा करो । परन्तु जिस भांति चीता चार, और, कमान अधिक नंमने पर बुरी तरह घाव करते हैं इसी तरह दगाबाज पुरुष पहले तो बहुत ही अधिक नम्र बन जाते हैं, और मौका लगते ही घात कर लेते हैं ॥ १ ॥ तू चलते, उठते, देखते भालते, हसते, हर समय दगा करता है; तोलन और नापने तक में दगा करता है । यह ठीक नहीं । तू दगा करना छोड़ दे ॥ २ ऐ दगा बाज ! तू किसी को माता कह कर और किसी को अपनी बहनें बना कर, पर नारियों को छलता फिरता है । अरे क्यों जाल कर के मूछें बना आता है ! तू दगा करना छोड़ दे ॥ ३ ॥ जो पुरुष हो कर यहां दगा करता है, वह मरने के पश्चात् स्त्री की योनि पाता है; और स्त्री के दगा करने पर, वह पुरुषत्वहीन पुरुष (नामर्द पुरुष) होकर ससार में जन्म लेता है । इतनाही नहीं; यह चौरासी लाख योनियों को भोगता फिरता है । इसलिए तू दगा करना छोड़ दे । ४ ॥ दगा से पूतना नामक राक्षसी ने आकर कृष्ण को गोदी में लिया, दख, उस का तत्काल ही उस को नतीजा मिल गया । इस लिए, तू दगा करना छोड़ दे ॥ ५ ॥ कौरवों ने पाण्डवों से दगा

कर के जूआ खेली। पर अन्त में हुआ क्या; कौरवों ही की हार हुई! इस लिए, तू दगा करना छोड़ दे ॥ ६ ॥ कुरान शरीफ, हमारी, पुराणों और हमारे भगवान् महावीर, सभी का फर्माना है, कि तू दगा मतकर। दगा करनेवाले के लिए कानून में भी सजा लिखी है। इस लिए, तू दगा करना छोड़ दे ॥ ७ ॥ देख, इसी दगा के कारण शिकारी जीवों की हिंसा कर के अपने सिर पापों की पोटली लादता है। इसलिए बिल्ली और बगुले के समान तू भी दगा करना छोड़ दे ॥ ८ ॥ इसी के कारण, इज्जत में फर्क आजाता है। कोई विश्वास भी नहीं करता; मित्रता भी टूट जाती है। इसलिए, तू दगा करना छोड़ दे ॥ ९ ॥

(९)

[गजल सब्र (सन्तोष) की।]

(तर्ज -पूर्ववत्)

सब्र नर को आती नहीं, इस लोभ के परताप से। लाखों मनुज मारे गये' इस लोभ के परताप से ॥ टेक ॥ पाप का वालिद बड़ा औ, जुल्म का सरताज है। वकील दोजख का बने नर, इस लोभ के परताप से ॥ १ ॥ अगर शाहंशाह के सब, मुल्क ताबे में रहे। तो भी ख्वाहिश ना मिटे, इस लोभ के परताप से ॥ २ ॥ जाल में

पक्षी पड़े, मच्छी भी मांजा से मरे । चोर जाव जेल * में, इस लोभ के परताप से ॥ ३ ॥ ख्वाब में देखा न उस को, रोगी चाहे नीच हो । गुलामी करो उस की फरे, इस लोभ के परताप से ॥ ४ ॥ काका–भतीजा, बन्धु–बन्धु, बाखिद औ बेटा सगा । बीच कोरट के लड़, इस लोभ के परताप से ॥ ५ ॥ शम्भूम राजा चक्रवर्ती, सेठ सागर की सुनो । दरियाव में दोनों मरे, इस लोभ के परताप से ॥ ६ ॥ जहां के कुल माल का, मालिक बने तो कुछ नहीं । प्यारी को तज परदेश आवे, इस लोभ के परताप से ॥ ७ ॥ माल बच बेच दे, दुख दुर्गुणों की खान है । सम्यक्त्व भी रहता नहीं, इस लोभ के परताप से ॥ ८ ॥ कहे चौथमल सद्गुरु वचन, सन्तोष इस की है दवा । दुखी नसीहत ना लगे, इस लोभ क परताप से ॥ ९ ॥

भावार्थ—यह लोभ एक ऐसी बला है, कि इस से मनुष्य को कभी भी शम नहीं आती । इसी लोभ के वश

* (अ)—जमानती बीठ चलानेवाले को दस साल की सख्त कैदतक की सजा । कानून धारा ४८६ ।
(ब)—चोरी ख्याल कमानेवाले को दस साल तककी सख्त कैदकी सजा । कानून धारा ३८५
(स)—जुआरी को मकान किराये से देनेवालों को १ रुपये तक दण्ड । कानून धारा २६ ।

हो लाखों मनुष्य समय समय पर मारे गये । यह लोभ पाप का बड़ा बाप, और जुल्मों में सब से बड़ा जुल्म है। इसी लोभ के कारण मनुष्य नरक में ब्रहस करनेवाला बनता है ॥ १ ॥ अगर किसी बादशाह के सारा मुल्क भी तावे में हो; पर तब भी इस लोभ के कारण, उस की इच्छा नहीं मिटती ॥ २ ॥ यह लोभ ही है, जिस के कारण पक्षी जाल में जाकर पड़ते हैं; मछली को मांजा व्यापता है; और चोर लोग जेलों में सड़ कर नाना भांति के दुख उठाते है ॥ ३ ॥ इसी लोभ के कारण मनुष्य, कहो तो उस की भी गुलामी करने पर उतारू हो जाता है, जिसे उसने कभी स्वप्न में भी देखा सुना न हो । और फिर चाहे वह कभी रोगी या नीच ही क्यों न हो ॥ ४ ॥ काका को भतीजा से, भाई को भाई से और बाप को सज्जन बेटे से, कोर्टों के बीच लड़ानेवाला यही लोभ है ॥ ५ ॥ इसी लोभ के कारण, चक्रवर्ती राजा शम्भूम और सेठ सागर दोनों बेचारे समुद्र ही में अपने प्राणों को खो बैठे ॥ ६ ॥ दुनियां की सारी दौलत का भी अगर तू मालिक बन जावे, तोभी कुछ नहीं तेरे लिए वह बेकार है । क्योंकि,—

"अर्ब खर्ब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज ।
जो 'तुलसी' निज़ मरन है, तो आवै केहि काज ॥"

अर्थात्—उदय से अस्त तक अथवा सारी पृथ्वी का

राज भी तुम्हारे पास हो; और अर्बों-खर्बों के द्रव्य के तुम धनी हो; तो भी तुलसीदास कहते हैं, कि यदि तुम्हारा मरण निश्चय है, तो वह सब तुम्हारे किसी भी काम का नहीं। फिर, इसी लोभ के वश, अपनी प्रेमसी प्राण-प्यारी पत्नी तक को छोड़ कर परदेश में अनेकों बार जाना पड़ता है ॥ ७ ॥ यह वह लोभ ही है जिस के कारण, मनुष्य अपने बाल बच्चों तक को बेच देता है; दुखों और दुर्गुणों की ओर मनुष्य बवश हो कर भागता है। और उस का सम्यक् ज्ञान भी सफाचट्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ सद्गुरु के वचन को चौथमल कहता है, कि एक मात्र सताप या सम, यही इस लाभ की अचूक दवा है। इस के सिवाय, जिस को लोभ न अपने पञ्जे में फंसा रक्खा हो, उस के उद्धार की दूसरी कोई दवा नहीं है; और न कोई नसीहत ही उस के लिए कारगर हो सकती है ॥९॥

---

(१०)

[राग-निषेध]

(तर्ज-पूर्ववत्)

मान मन मेरा कहा, तू राग करना छोड़ दे। आवा गमन का मूल है, तू राग करना छोड़ दे ॥ टेक ॥ प्रेम प्रीति, सनेह, मोहब्बत, आशकी भी नाम हैं। कुछ इश्कों

इस में नहीं, तू राग करना छोड़ दे ॥ १ ॥ लोह की जंजीर का, वन्धन नहीं कोई चीज है। ऐसा वन्धन प्रेम का, राग करना छोड़ दे ॥ २ ॥ सुर असुर औ नर पशु वन, राग के वश में पड़े । फिर फिर वे वे-भान होते, तू राग करना छोड़ दे ॥ ३ ॥ धन, घराना, जिस्न, जोवन प्रीति निशि दिन कर रहा। ख्वाब के मानिंद समझ के, तू राग करना छोड़ दे ॥ ४ ॥ जीते जी के नाते सब ये, प्राण-प्यारी औ अजीज। आखिर किनारा वे करें, तू राग करना छोड़ दे ॥ ५ ॥ गज, मीन, मधुकर, मृग, पतंग, इक इक इन्द्रियाधीन वन। प्राण खोते वश वन, तू राग करना छोड़ दे ॥ ६ ॥ हिरण वने हैं जड भरत जी, भागवत का लेख है। कोई सेठ इक कीड़ा वना, तू राग करना छोड़ दे ॥ ७ ॥ पृथ्वीराज मशगूल भी, संयोगिनी के प्रेम में । गई बादशाही हाथ से, तू राग करना छोड़ दे ॥८॥ वीर भाषे वत्स! गौतम, परमाद दिल से परिहरो। आन प्रकटे ज्ञान-केवल, तू राग करना छोड़ दे ॥९॥ गुरू-पाद के परसाद से, कहे चौथमल तज राज को। कर्म दल हट जायना, तू राग करना छोड़ दे ॥ १० ॥

भावार्थ-ए मन ! तू मेरा कहना मान; तू राग करना छोड़ दे। इसी राग के कारण मनुष्य वार वार इस संसार में जन्मता और मरता है। प्रेम, प्रीति, स्नेह,

मोहमद, आशकी आदि आदि इस के कई नाम हैं। मनुष्य राग के वश हो जाता है, तब उसे कुछ नहीं समझता इस लिए तू राग करना छोड़ दे ॥ १ ॥ मनुष्य के लिए यह राग का बन्धन एक ऐसा बंधन है, कि लोह का बन्धन भी इस के लिए कोई चीज नहीं है। इसलिए तू राग करना छोड़ दे ॥ २ ॥ इस राग के आधीन हो जाने से देवताओं की प्रवृत्तियां भी आसुरी-राक्षसी बन जाती हैं; और मनुष्य पशु के समान आचरण करनेहारा बन जाता है। इतना ही नहीं; इसी राग के कारण, वे अपने वास्तविक रूप और ज्ञान का भूलकर इधर उधर मारे फिरते हैं इसलिए तू राग करना छोड़ दे ॥ ३ ॥ ए मानवी ! तू जिस धन, घराना, शरीर और यौवन से रात-दिन राग करता है, वे हमेशा ही के रहनेवाले नहीं हैं, पानी के बुलबुले के समान हैं; तू इन्हें स्वप्न के मानिन्द समझ और राग करना छोड़ दे ॥ ४ ॥ ऐ मानवी ! जिसे तू प्राण-प्यारी कहकर बुलाता है और जिसे तू अपना प्यारा समझता है, वे सब के सब जीते जी तुझसे प्रेम करनेवाले हैं; अन्तिम समय में, सब के सब किनारा काटके वेरे से दूर भाग जानेवाले हैं। इसलिये तू राग करना छोड़दे ॥ ५ ॥ हाथी (शिश्नेन्द्रिय और उस के विषय के आधीन हो) मीन-मछली (रसना और उस के विषय स्वाद के वश

हो) भौराँ (गन्धेन्द्रिय और उस के विषय सुवास के आधीन बन), मृग (कर्णेन्द्रिय और उस के विषय शब्द, वीणा की मधुर आवाज के वश बन), और पतङ्ग रूपेन्द्रिय अर्थात् आँख और उस के विषय के आधीन हो), ये पांचों प्राणी एक एक इन्द्रियों के बश बन कर, इसी मोह के कारण अपने प्राणों को गँवा बैठते हैं। इसलिये तू राग करना छोड़दे ॥ ६ ॥ महा मुनि भरतजी को इसी मोह के आधीन हो कर, जड़ मृग की योनि में जन्म धारण करना पड़ा। भागवत पुराण इस बात की साक्षी दे रही है। फिर, एक कोई दूसरा सेठ इसी के कारण कीड़ा बना। इसलिये तू राग करना छोड़दे ॥ ७ ॥ हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान इसी राग के कारण देवी संयोगिता के पीछे पड़ा। जिस से आज तक के लिए हिन्दू बादशाही का अन्त हो गया। इसलिये तू राग करना छोड़दे ॥८॥ वीर भगवान् गौतम से कहते हैं कि ऐ प्यारे, तू दिल से प्रमाद को दूर कर। जिस से केवल-ज्ञान का वहां उदय होवे। इसलिये तू राग करना छोड़दे ॥ ६ ॥ गुरु-चरणों की कृपा का भरोसा कर के चौथमल कहते हैं, कि ऐ मानवी! यदि तुझे राज भी मिला हो, तो उस में भी तू आसक्ति या राग मत कर और केवल कर्म-संयोग का फल उसे समझ कर, विना किसी प्रकार के हर्ष-विषाद के आसक्ति रहित हो कर उस

का भोग कर। ऐसा करने से तू कर्म के फल का भागी न बनेगा। जिस से तेरा अन्त:करण शुद्ध होगा। अन्त:करण की शुद्धि से केवल-ज्ञान तुझे मिलेगा। और अन्त में एक न एक दिन इस पथ का पथिक होने से जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक को प्राप्त कर सकेगा। इसलिये तू राग करना छोड़दे ॥ १० ॥

(११)

[द्वेष—निषेध]

(तर्ज़-पूर्ववत्)
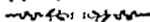
चाहे अगर आराम तो, तू द्वेष करना छोड़दे। कुछ फायदा इस में नहीं, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ टेर ॥ द्वेषी मनुज की देख सूरत, खून बरसे आँखस। नसीहत असर करती नहीं, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ १ ॥ बहुत बरसों बीत जावे, पर दिल पाक होता है नहीं। बना रहे बद ख्याल हर दम, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ २ ॥ पूछो हमें, हम है बड़े, मत बात करना गैर की। दुश्मन बने बश और का सुन, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ३ ॥ देख के सरदार को तू, या सखी धनवान को। क्यों जले है बे हवा, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ४ ॥ हाकमी या अफसरी, गर नौकरी किसकी लगे। सुन के बने नाराज क्यों तू, द्वेष

करना छोड़दे ॥५॥ देख गज सुख माल को, जब द्वेष सोमल ने किया। दुरगती उस की हुई, तू द्वेष करना छोड़ दे ॥ ६ ॥ पांडवाँ से कोरवों ने, कृष्ण से फिर कंस ने। वेर कर के क्या लिया, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ७ ॥ माता पिता भाई-भतीजा, दास ओ पक्षी पशू। तकलीफ क्यों देता उन्हें, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ८ ॥ गुरु पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा। ग्यारवाँ यह पाप है, तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ९ ॥

भावार्थः—यदि इस जगत, में सचमुच तू आराम चाहता है, तो द्वेष करना छोड़दे। देख! इस में कहीं कोई फायदा नहीं है। इसलिये, ऐसा समझ कर ही तू द्वेष करना छोड़ दे। तू द्वेष करनेवाले मनुष्य की सूरत को देख; और देख, किस तरह उसकी आँखों से खून बरसता है! कोई भी कितनाही और किसी रूप से उसे क्यों न समझाये; पर उस पर कोई नसीहत जरा भी कारण नहीं हो पाती। इसलिये तू द्वेष करना छोड़दे ॥ १ ॥ द्वेषी आदमी का दिल कभी साफ नहीं होता, चाहे कितनाही समय क्यों न बीत जावे। द्वेषी और जिसके साथ द्वेष किया जाता है, दोनों के दिल में हर समय एक दूसरे के प्रति बुरा ख्याल बना रहता है। तभी तो भगवान् बुद्ध का कथन था, कि "द्वेपानल द्वेष के ईंधनको पाकर उसी प्रकार प्रज्वलित हो

उठती है, जिस प्रकार घी की आहुति को पाकर धधकती हुई अग्नि और भी अधिक जारों से भड़क उठती है। किन्तु कितनी ही भयङ्कर द्वेषाग्नि क्यों न हो; वह सत्प्रेम के सहारे द्वारा, बिना किसी प्रयास के, अति शीघ्रही बुझाई जा सकती है। इसलिये तू द्वेष करना छोड़दे ॥ २ ॥ ऐ मानवी ! तू द्वेष के वश हो, बड़बड़ाने लगता है और कहता है, कि हम बड़े हैं; हमें औरों की बात क्यों पूछते हो; इत्यादि। यों तू द्वेषी बन कर और दूसरों का यश सुन कर क्यों दुर्बल बना जाता है ॥३॥ ऐ बेहया ! ऐ बेशर्म ! तू किसी धनवान को व किसी दातार को देख कर, दिल ही दिल में डाह क्यों करता है ! क्योंकि, इस से उसका तो कोई नुकसान होता नहीं है; उल्टा, तू ही अन्दर ही अन्दर जलता भुनता है। इसलिये तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ४ ॥ अगर किसी को हाकमी मिले या ऑफिसरी; या किसी की नौकरी लगे; तो तू यों दूसरों की बढ़ती देख कर क्यों द्वेष करता है ॥ ५ ॥ देख, जब तो भरतन दूसरों के हाथी-घोड़ों और सम्पत्ति तथा सुख को देख कर द्वेष किया, तो उसकी दुर्गति हुई। इसलिय तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ६ ॥ फिर देख, पाँडवों से कौरवों ने द्वेष किया; और छल से फसने। पर नतीजा दोनों का क्या हुआ ! दोनों ओर द्वेष करनेवाले ही का सत्यानाश

मिला ! इसलिये तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ७ ॥ ऐ संसारी ! तू अपने माता-पिता, भाई-भतीजे, दास-दासी और पत्नी तथा पशुओं को क्यों तकलीफ देता है ! तू इन से तो द्वेष करना छोडदे ॥ ८ ॥ गुरु-चरणों का भरोसा कर के चौथमल तुझे कहते हैं; तू जरा उन का कहना भी सुन ! यह द्वेष ग्यारवां पाप है । तू द्वेष करना छोड़दे ॥ ९ ॥
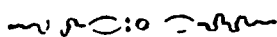
(१२)

[कलह—निषेध]

(तर्ज--पूर्ववत्)

आकिबत से डर जरा तू, कलह करना छोड़दे । भगवान का फरमान है, तू कलह करना छोड़दे ॥ टेर ॥ जहां लडाई वहां खुदाई, हो जुदाई ईश से । इत्तफाक गौहर क्यों तजे , तू कलह करना छोड़दे ॥ १ ॥ ना बटे लड्डू लड़ाई,-बीच कहनी जगत में । बेजा कहे बेजा सुने, तू कलह करना छोड़दे ॥ २ ॥ पूजा करे ले जूतियां से, बलके ले हथियार को । सजा*-याफता भी बने, तू कलह करना छोड़दे ॥ ३ ॥ सेन्ट्रल जेल का भी तू, कभी मिहमान बनता है । ऐब सब जाहिर करे, तू कलह करना छोड़दे ॥ ४ ॥ रावण

---

* किसी पर हमला करनेवाले तथा इच्छा करनेवाले को एक साल तक की सख़्त क़ैद की सज़ा । कानून धारा ३२३ ।

विभीषण से लड़ा, पहुँचा विभीषण राम पाँ। देखा नतीजा क्या हुआ, तू कलह करना छोड़दे ॥ ५ ॥ हार हाथी के लिए, कोणिक चेड़ा से भिड़ा। हाथ कुछ आया नहीं, तू कलह करना छोड़दे ॥ ६ ॥ कैकई ने बीज बोया, फूट का निज हाथ से। भरत जी नाखुश हुए, तू कलह करना छोड़ दे ॥ ७ ॥ हसन और हुसेन से बेजा किया याजीद ने। हक में उस के क्या हुआ तू कलह करना छोड़दे ॥८॥ गुरु पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा। पाप बारहवाँ है कलह, तू कलह करना छोड़ दे ॥ ९ ॥

भावार्थ– ऐ मानवी ! तू कलह करना छोड़ कर जरा उस दिन का भी डर दिल में ला, जिस दिन तुझे अपनी करनी का फल भोगना होगा। भगवान महावीर का भी फर्मान है, कि तू कलह करना कतई छोड़ दे॥ जहाँ लड़ाई भिड़ाई होती है, वहाँ कुदरती रुप से भगवान से जुदाई हो जाती है। क्योंकि, " जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना और "फूट उपज जौन कुल, सो कुल बेग नशाय। जुग बाँसन की रगड़ से, सिगरो बन जल जाय॥" अर्थात् फूट पैदा होती है, उस कुल का शीघ्र ही नाश हो जाता है। जैसे, वन में दो बाँसों की रगड़ से सारा वन शीघ्र ही भस्मीभूत हो जाता है, जल बल कर खाक हो जाता है। ऐ भाई ! इत्तिफाक से, दैवयोग से, यह जीवन रुपी

मोती तुझे मिला है; इस का यों क्यों तू कलह कर कर के कतर ब्यौंत करता है ! तू कलह छोड़ दे ॥ १ ॥ जगत में यह कहानी प्रसिद्ध है, कि " लडाई के बीच, लड्डू कहीं नहीं बटते; " सो बिलकुल ठीक ही घटती है। क्योंकि, जो बेजा (अश्लील) कहता है, वही बेजा सुनता भी है फिर किसी महात्माने क्या ही ठीक कहा है, कि—

" यह जगत एक निर्मल कांच के समान है इस में हम जिन जिन भावों के द्वारा जैसी जैसी आकृति जगत की देखते है; उस में ठीक वैसी वैसी आकृति हमें जगत की दिख पड़ती है। या यूं कहो कि इस जगत में हमारे, प्रत्येक भावों की प्रतिध्वनि होती है । जैसा हम कहेंगे, जैसे हमारे भले या बुरे शब्द होंगे, ठीक वैसे ही शब्द होंगे, ठीक वैसे ही शब्द बदले में जगत रुपी पर्वत से टकरा कर मिलेंगे। इसलिए तू कलह करना छोड़दे ॥ २ ॥ यदि तुझे अपने बल का घमण्ड है, और उस बल, तू कलह के आधीन बन, किसी पर जूतियों की बौछार कर देता है, तो तू सजायाफ्ता भी बनजाता है। इसलिए तू कलह करना छोड़ दे ॥ ३ ॥ ऐ मनुष्य ! इसी कलह की कृपा ही के कारण, कभी तू सेन्ट्रल (केन्द्रीय) ज़ेल का भी पाहुना बनता है। और भी जितने प्रकार के दोष तेरे अन्दर होते हैं, वे सब के सब इसी कलह के कारण

जन आहिर होजाते हैं। इसलिये तू कलह करना छोड़दे ॥ ४ ॥ देख, इसी कलह ने, इसी फुट—फजीते ने रावण को विभीषण से लड़ाया; और फिर विभीषण को राम के पास पहुँचाया। फिर, इस का नतीजा भी जो कुछ हुआ; उस को भी सारा संसार जानता ही है। इस लिये तू कलह करना छोड़दे ॥ ५ ॥ हाथी के लिये हार कर कोणिक चेड़ा से आ भिड़ा। परन्तु कलह के वश उसके हाथ भी कुछ न आया। इसलिये तू कलह करना छोड़दे ॥ ६ ॥ कैकयी ने अपने हाथ से फुट का बीज बोया। जिस का परिणाम यह हुआ, कि स्वयं भरतजी, जो उसी के पुत्र थे, व भी उस से नाखुश हुए, और वह भी स्वयं विधवा बन गई इसलिये तू कलह करना छोड़दे ॥ ७ ॥ हसन और हुसेन से माबीदखां ने बैर विरोध ठाना; परन्तु अन्त में माजीदखां ही का बुरा हुआ। इसलिये तू कलह करना छोड़दे ॥ ८ ॥ चौथमल कहते हैं, कि यह कलह बारवां पाप है। इसलिये तू कलह करना छोड़दे ॥ ९ ॥

—○—

(१३)

[कलङ्क—निषेध]

(तर्ज़ा पूर्ववत्

इस तरफ तू कर निगाह, तू तोहमत लगाना छोड़दे।

तुफेल है यह तेखां, तू तोहमत लगाना छोड़दे ॥टेक॥ अफसोस है इस बात का, ना सुनी देखी कभी। फौरन कहे तेने किया, तू फेल करना छोड़दे ॥ १ ॥ तङ्ग हालत देख किस की, तू बताता चोर है। बाज आ इस जुल्म से, तू फेल करना छोड़दे ॥ २ ॥ मर्द औरत युवान देखी, तू बताता बद-चलन। बुढ़िया को कहे यह डाकण है, तू तोहमत लगाना छोड़दे ॥ ३ ॥ सच्चे को झूठा है कहे तू, ब्रह्मचारी को लम्पटी। कानून * में इस की सजा है,तू तोहमत लगाना छोड़ दे ॥४॥ अपने पर खुद जुल्म दुनियां, देखलो यह कर रही। मालिक की मरजी है कहीं, तू तौहमत लगाना छोड़ दे ॥ ५ ॥ गीता, पुरान, कुराण, इंजील, देखले सब में मना इसलिए तू बाज आ, तू तोहमत लगाना छोड़ दे ॥ ६ ॥ गुरुपाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा। मान ले मेरी नसीहत, तू तोहमत लगाना छोड़दे दे ॥ ७ ॥

भावार्थ-ऐ मानवी ! किसी पर इल्जाम लगाना,यह बुरा है। तू इस को जरा विचार कर, और तू किसी पर इल्जाम लगाना छोड़ दें। अफसोस तो इस बात का है, कि जिस

---

*(अ) व्यभिचार का आरोप रखनेवाले को सात साल तक की सख़्त कैद की सजा। कानून धारा ५०६।

(ब) झूठा कलङ्क लगाने वाले को छ मास तक की सादी सजा और १०००) तक का जुर्माना। कानून धारा १८१।

को कभी देखा या सुना तक नहीं उसके लिये तू फौरन कह उठता है, कि मैंने किया है । इस प्रकार तू फेल फितुर करना छोड़ दे ॥ १ ॥ किसी बेचारे की तङ्ग हालत देख कर तू उसे चोर बताता है। अरे! इस जुल्म से तू जरा तो बाज आ, तू फेल फितुर करना छोड़दे ॥ २ ॥ किसी युवक और युवती को एक साथ देख कर ही, तू उन्हें बद चलन, चरित्र हीन कह उठता है। फिर किसी बुढ़िया औरत को देख कर तू उसे डाकिन कहता रहता है । ये व्यर्थ के, किसी के कलङ्क लगाना तू छोड़ दे ॥ ३ ॥ एक ओर तू सचे को झूठा करता है, तो दूसरी ओर ब्रह्मचारी को व्यभिचारी बनने का इल्जाम लगाता है । परन्तु देख, कानून में इस के लिये सजा है । इसलिए तू किस को झूठा कलङ्क लगाना छोड़ दे ॥४॥ देखो, लोग एक दूसरे को यों झूठा लाञ्छन लगा लगा कर भगवान की इच्छा के विपरीत खुद अपने ही ऊपर जुल्म कर रहे हैं । इसलिए तू इल्जाम लगाना छोड़ दे ॥ ५ ॥ ऐ मानवी! देख गीता, पुराण कुरान और बाइबिल सभी के धर्म-ग्रन्थों में तोहमत लगाना मना है इसलिए तू इस बद चाल से बाज आ ॥६॥ गुरु चरणों की कृपा से चौथमल कहते हैं, कि मेरी नसीहत जरा सुनलो; किसी के सिर तोहमत लगाना छोड़ दो ॥ ७ ॥

(१४)

[चुग़ली-निषेध]

(तर्ज पूर्ववत्)

हर दिन हम कहते तुझे तू, चुगली का खाना छोड़ दे। चौदवां यह पाप है तू, चुगली का खाना छोड़ दे ॥ टेक ॥ चुगलखोर खिताब तुझको, नशीब भी होगा सही। बद समझ कर बाज़ आ तू, चुगली का खाना छोड़ दे ॥ १ ॥ इसकी उसके सामने, औ उसकी इसके सामने। क्यों भिड़ाता है किसे तू, चुगली का खाना छोड़ दे ॥२॥ जिस की चुगली खाता है, इनसान गर वह जान ले। बन जाय जानी शत्रु तेरा, चुगली का खाना छोड़ दे ॥ ३ ॥ इसके जरिये हो लड़ाई, क़ैद में भी जा फँसे। जहर खा मर मिटे, तू, चुगली का खाना छोड़ दे ॥ ४ ॥ सौका भिडाई राम ने, बनवास सीता को दिया। आखिर सत प्रगट हुआ, तू चुगली का खाना छोड़ दे ॥ ५ ॥ गुरु पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा। आकिबत का खौफ ला तू, चुगली का खाना छोड़ दे ॥ ६ ॥

भावार्थ—भाई! हम तुझे हर दिन समझाते हैं कि तू चुगली का खाना छोड़ दे। चुगली खाना यह चौदवां पाप है, तू इसे छोड़ दे। इसी के कारण से तुझे चुगलखोर की पदवी भी मिलती है। जिसे तू बुरा समझ कर तू

चुगली का खाना छोड़ दे ॥ १ ॥ तू इसकी उसके सामने और उसकी इसके सामने क्यों भिड़ाता है; यह बहुत ही बुरा है। तू चुगली का खाना छोड़ दे ॥ २ ॥ ऐ भाई! जिस पुरुष की तू चुगली खाता है अगर वह इस बात को जान ले तो वह तेरा जानी का दुश्मन बन जायगा। इस लिए भी तू चुगली खाना छोड़ दे ॥ ३ ॥ इस के जरिये लड़ाई भिड़ाई हो बैठती है; और मनुष्य कभी कैद में भी जा फँसता है तथा, इसी चुगलखोरी के कारण स कई लोग जहर खा कर इस ससार से असमय में ही चल बसे। इसलिए तू चुगली का खाना छोड़ द ॥४॥ लोगों न सीता के विषय में राम के पास चुगली खाई; और उन्हों ने उस पर से सीता को वनवास दे दिया। आखिर में जब सत्य प्रगट हुआ और सीता अपने सत्य की कसौटी पर खरी उतरी, तब तो राम को बड़ाही पश्चाताप हुआ। इसलिए तू चुगली खाना छोड़ दे ॥५॥ चौथमल तुम कहते हैं, कि भाई! जरा अपनी करणी के भोग के दिन का भी तो खौफ कुछ अपने दिल में ला! और चुगली के खाने का अभ्यास छोड़दे ॥ ६ ॥
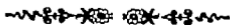
(१५)

[निन्दा-निषेध]

(तर्ज-पूर्ववत्)

आबरू बढ़ जायगी, निन्दा पराई छोड़दे। सन्त वाणी मान कर, निन्दा पराई छोड़दे ॥ टेर ॥ तेरे सर पर क्यों धरे तू, खाक ले कर और की। दानी-समंद होवे अगर तू, निन्दा पराई छोडदे ॥ १ ॥ गुलाब के गर शूल हो, माली को मतलब फूल से। धारले गुण इस तरह तू, निन्दा पराई छोडदे ॥ २ ॥ खुबसूरती कौवा न देखें, चींटी न देखे महल को। जोंख के सम मत बने तू, निन्दा पराई छोड़दे ॥३॥ पीठी * मेल इस को कहा, भगवान श्री महावीर ने। मिसाल शूकर की समझ, निन्दा पराई छोड़दे ॥ ४ ॥ गिब्बत करे नर गैर की जो, वह भाई का खाता गोश्त। कुरान में है यह लिखा, निन्दा पराई छोड़दे ॥ ५ ॥ सुन ली हो, चाहे देख ली हो, गर पूछ ली कोई शक्स से। झूठ

---

* (अ)-निन्दा करना धर्म-शास्त्रों से निषेध है.-

(ब)-ताजीरात-हिन्द में भी निन्दा का निम्न लिखित रूप से निषेध कियागया है।

(१)-बीभत्स पुस्तक बेचनेवाले को तीन मास तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा १६२

और (२)-किसी की निन्दा करनेवाले, लेख छपानेवाले, व झूठा कलङ्क देने वाले को दो साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा ४६२।

ही हो, सत्य चाहे, निन्दा पराई छोड़दे ॥ ६ ॥ गुरु-पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ल जरा। है चार दिन की जिन्दगी, निन्दा पराई छोड़दे ॥ ७ ॥

भावार्थ—सन्त महात्माओं की वाणी को मान कर तू पराई निन्दा करना छोड़दे। इसके छोड़ देने से तेरी आबरू बढ़ जायगी। अरे भाई! तू इस पराइ निन्दा के द्वारा, क्यों पराये पापों की पोटली को अपने सिर पर लादना चाहता है! अगर तू सचमुच में उत्तम विचारवाला पुरुष है; अगर तू सचमुच में ज्ञानियों में सरताज है, तो पराई निन्दा करना छोड़दे ॥ १ ॥ गुलाब के अन्दर अगर काँटे लगे हों, तो उन से माली को क्या मतलब! जिस प्रकार वह तो केवल फूलों ही से वास्ता रखता है; ठीक उसी प्रकार तू भी किसी से केवल गुण को ग्रहण कर लिया कर और पराई निन्दा को छोड़दे ॥ २ ॥ फिर यह सारा विश्व ही तो गुण—दोष युक्त है। यहां का जो पदार्थ जितना गुण कारक और हितकर है, वह ज्ञान की दृष्टि और व्यवहार की दृष्टि दोनों से, उतना ही अधिक दूषित और नाशकारक भी तो है। जैसे कहा भी है—

> जड़ चेतन गुण दोष मय; विश्व कीन्ह करतार।
> सन्त हंस गुण गहहिं पय; परिहरि वारि विकार ॥

अस्तु। यदि तू इस संसार महा सागर से आसानी

गांजा, चड़स, चण्डू, तमाखू, बीड़ी, सिगरेट, भङ्ग, को। पी पी मगन रहे सदा तू, पाप यह है सोलवां ॥ ३ ॥ ज्ञान-ध्यान-ईश्वर-भजन में, नाराज तू रहता सदा। गोठ, नाटक में मगन है, पाप यह है सोलवां ॥ ४ ॥ ऐश में मानी रती तू, अरत वेदी धर्म में। कुण्डरीक ने जन्म खोया, पाप यह है सोलवां ॥ ५ ॥ अरजुन मालाकार ने, महावीर की वाणी सुनी। चारित्र ले त्यागन किया, पाप यह सोलवां ॥ ६ ॥ गुरु पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा। चाहे भला तो मेट जल्दी, पाप यह है सोल-वां ॥ ७ ॥

भावार्थ—वीर भगवान् की आज्ञा है, कि यह कुभावना सोलहवें पाप में शुमार है। इसलिये तू कभी भी किसी भी हालत में इस के आधीन मत बन। इसी कुभावना के कारण मनुष्य को सत्सङ्गति बुरी लगती है; वह बुरी सङ्गति में दिनरात रत रहता है; और जूआँखोरी उसे दिल से प्यारी लगती है ॥ १ ॥ मनुष्य को यदि दया, दान, सत्य और सदाचारकी कोई शिक्षा देनें लगे, तो इसी कुभावना के कारण, वह उसे तनिक भी पसन्द नहीं पड़ती ठीक तो है "दैवोऽपि दुर्बल घातकः"। अर्थात् जो एक बार पतन की ओर मुंह कर चुका है उसे भला बचा ही कौन सकता है! ऐसे पुरुष के लिये तो भाग्य भी तो उलटा नाशक ही होता है ॥ २ ॥ इसी कुभावना के कार

क्यों न हो, या फिर वह झूठी हो या सच। अन्त में है तो वह निन्दा ही। इसलिए तू उस का त्याग कर ॥ ६ ॥ चौथमल तुझे समझा कर कहते हैं, कि अरे भाई! इस क्षण-भगुर, चार दिन की अस्थायी जिन्दगी के लिए क्यों तू पराई निन्दा करता है। तू उसका त्याग कर ॥ ७ ॥

(१६)

(कुभावना-निषेध)

(तर्ज—पूर्ववत्)

वीर ने फरमा दिया है, पाप यह है सोलवाँ। अस्त्यार हरगिज मत करो, तुम पाप यह है सोलवाँ ॥ टेक ॥ सत्सङ्ग तो खारी लगे, कुसङ्ग में रहे रात-दिन। जूआँ गाली बीच राजी, पाप यह है सोलवाँ ॥ १ ॥ दया-दान व्रत सत्य, शील की, गर सीख जो तुझ को करें। बिलकुल पसँद आती नहीं है, पाप यह है सोलवाँ ॥ २ ॥

*ताजीरात-हिन्द में कुभावनावाले पुरुष के लिये नीचे के दण्ड निर्धारित हैं

(अ)-प्रतिज्ञा-पूर्वक झूठी बात कहनेवाले को सात साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा १८१

(ब)-धर्मस्थान में बीभत्स कार्य करने वाले को दो साल तक की सख्त कैद की सजा। कानून धारा २६६

और (स)-आम रास्ते पर जूआ खेलने वाले को १(   ) रुपये तक दण्ड की सजा। कानून धारा १४ ।

गांजा, चड़स, चण्डू, तमाखू, बीड़ी, सिगरेट, भङ्ग, को। पी पी मगन रहे सदा तू, पाप यह है सोलवां ॥ ३ ॥ ज्ञान-ध्यान-ईश्वर-भजन में, नाराज तू रहता सदा। गोठ, नाटक में मगन है, पाप यह है सोलवां ॥ ४ ॥ ऐश में मानी रती तू, अरत वेदी धर्म में। कुण्डरीक ने जन्म खोया, पाप यह है सोलवां ॥ ५ ॥ अरजुन मालाकार ने, महावीर की वाणी सुनी। चारित्र ले त्यागन किया, पाप यह सोलवां ॥ ६ ॥ गुरु पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा। चाहे भला तो मेट जल्दी, पाप यह है सोलवां ॥ ७ ॥

भावार्थ—वीर भगवान् की आज्ञा है, कि यह कुभावना सोलहवें पाप में शुमार है। इसलिये तू कभी भी किसी भी हालत में इस के आधीन मत बन। इसी कुभावना के कारण मनुष्य को सत्सङ्गति बुरी लगती है; वह बुरी सङ्गति में दिनरात रत रहता है; और जूआँखोरी उसे दिल से प्यारी लगती है ॥ १ ॥ मनुष्य को यदि दया, दान, सत्य और सदाचारकी कोई शिक्षा देनें लगे, तो इसी कुभावना के कारण, वह उसे तनिक भी पसन्द नहीं पड़ती ठीक तो है "दैवोऽपि दुर्बल घातकः"। अर्थात् जो एक बार पतन की ओर मुंह कर चुका है उसे भला बचा ही कौन सकता है! ऐसे पुरुष के लिये तो भाग्य भी तो उलटा नाशक ही होता है ॥ २ ॥ इसी कुभावना के कार

स, ऐ संसारी तू सदा गांजा, भांग चरस, चण्डू तमाखू बीड़ी, सिगरेट आदि ही के रंग में मस्त रहता है । और तुझे हरि-भजन या सत्संगति प्यारी नहीं लगती ॥ ३ ॥ मनुष्य इसी कुभावना नामक पाप में फँसा रहने के कारण सैर सपाटे, वन भोजन, और नाटक आदि में तो सदा प्रसन्न चित्त और नाचते कूदते नजर आते हैं; परन्तु इन के विपरीत ज्ञान, ध्यान ईश्वर भजन आदि की चर्चा तनिक भी प्यारी नहीं लगती । इन कामों की ओर उन का चित्त सदा अनमना सा देखा सुना जाता है ॥ ४ ॥ देख ! इसी कुभावना के कुसङ्ग में रह कर, कुण्डरीक ने सारा जन्म ही ऐशोआराम और मान में बिता दिया; और इस के विपरीत वह आजीवन धर्म कर्म में अकर्मण्य सा बना रहा ॥ ५ ॥ अर्जुन मालाकार ने भी वीर भगवान की वाणी सुनी; और उस से इस कुभावना का त्याग कर, वह चारित्र्य पद को प्राप्त हुआ ॥६॥ चौथमल तुझे कहते हैं, कि ऐ भाई ! यदि तू अपना भला चाहता है, तो इस कुभावना का शीघ्र ही हटा ॥ ७ ॥

(१७)

[कपट– निषेध ।]

(तर्ज-पूर्ववत्)

फायदा इस में नहीं, क्यों झूठ बोले आज से ।
इन का नतीजा है बुरा, क्यों झूठ बोले आज से ॥ टेर ॥

दगाबाजी द्रोग मिलकर, पाप सत्रहवां बना ।
जाइज नहीं है ऐ सनम, क्यों झूठ बोले जाल से ॥ १ ॥
अच्छी बुरी दोनो मिला, अच्छी बता कर बेच दे ।
इसी तरह तू वस्त्र दे, क्यों झूठ बोले जाल से ॥ २ ॥
भेद लेने गैर का तू, बातें बनावे प्रेम से ।
अनजान हो कहे, जानता, क्यों झूठ बोले जाल से ॥३॥
भेष जबां दोनों को बदले, चाल भी देवे बदल ।
रुप को भी फेर देवे, क्यों झूठ बोले जाल से ॥ ४ ॥
परदेशी नृप को राणी ने, भोजन दिया था विष मिला ।
बोल कर मीठी जबां, क्यों झूठ बोले जाल से ॥ ५ ॥
गुरु पाद के परसाद से, कहे चौथमल सुन ले जरा ।
सरलता से सत्य कह, क्यों झूठ बोले जाल से ॥ ६ ॥

भावार्थ— ऐ भाई ! तू जाल से क्यों झूठ बोलता है ! इस में कोई फायदा नहीं है । इस का नतीजा बुरा है । इसलिय तू जाल से झूठ मत बोल । यह सत्रहवां पाप, जो कपट कहलाता है, दगाबाजी और झूठ से मिलकर बना है । ऐ प्यारे ! यह जाल कर के झूठ बोलना लाजिम नहीं है । इसलिए तू इस को छोड़ दे ॥ १ ॥ तू नमूने तो अच्छी चीजों के बताता है; और देता है अच्छी और बुरी दोनों को मिला कर । इसी प्रकार कपड़े में भी मेल मिलावट तू करता रहता है यों जाल से झूठ क्यों

बोलता है ॥ २ ॥ तू किसी का मद छेने के लिये, उस से प्रेम पूर्वक बातें करता है और किसी बात को न जानता हुआ भी तू कह बैठता है, कि मैं उसे जानता हूं। यों झूठ, तू जालसाजी से क्यों बोलता है ॥ ३ ॥ तू योंहीं जालसाजी से झूठ सच कर के, कभी तो अपने रूप को बदल देता है कभी जबान को पलट देता है; कभी चाल ही दूसरी चलने लग जाता है; और कभी अपनी वेष भूषा और ध्यानधाक ही कतर ब्योंत करने में चातुरी दिखाता है ॥ ४ ॥ परदेशी राजा को रानी ने मीठा बोल बोल कर विष सना भोजन दे दिया था। यों जाल क्यों झूठ का ताना बाना तू रचता है ॥ ५ ॥ चौथमल तुझे बार बार कहते हैं, कि तू सरलता पूर्वक सत्य बोला कर और यों जालसाजी से झूठ मत बोला कर ॥ ६ ॥

(१८)—(ख)

[मिथ्यात्व—निषेध।]

(तर्ज-पूर्ववत्)

सर्व पापों बीच में, मिथ्यात्व ही सरदार है।
इस के तजे बिन आवागमन से, होते नहीं नर पार हैं। टेक।
सत्य दयामय धरम को, अधरम पापी मानते।
अधरम को माने धरम, शठ डूबते मझ धार हैं ॥ १ ॥
जीव को जड मानते, असत युक्ती ठान के।

निरजीव में सरजीव की, श्रद्धा रखें हरबार हैं ॥ २ ॥
सम्यग् दर्शन ज्ञान ध्यान की कहें, ये उन्मार्ग हैं ।
दुर्व्यसनादिक उन्मार्ग को, बतलाते मुक्ति द्वार हैं ॥ ३ ॥
सुसाधु को ढोंगी समझ तू , करता कदर उन की नहीं ।
धन मान गुरु रक्खे त्रिया उनके नमे चरणार है ॥ ४ ॥
नाश कर के कर्म को, गये; मोक्ष, सो माने नहीं ।
मानता मुक्ति उन्होंकी, कर्म जिन के लार है ॥ ५ ॥
अब तो मिथ्यामत को प्राणी, त्यागना ही सार है ।
समकित रतन को धार फिर तो, छिन में बेड़ा पार है ॥६॥
साल चौरासी बीच जब, नागौर में आना हुआ ।
गुरुपाद के परसाद से, कहे चौथमल हितकार है ॥ ७ ॥

भावार्थ—झूठ बोलना यह सब पापों में सब से बड़ा पाप है । मनुष्य जब तक झूठ को नहीं छोडता, तब तक वह चक्फेरी के चक्कर से कभी नहीं निकल पाता । पापी लोगों का यह स्वभाव ही होता है, कि वे सत्य और दया धर्म को तो अधम मानते हैं, और अधर्म को अन्ध विश्वास और अज्ञान के कारण धर्म समझते हैं । इस से वे धूर्त लोग मंझ धार में जा डूबते हैं ॥१॥ वे ही अन्ध विश्वासी पापी जीव तरह तरह की झूठी झूठी युक्तियों और तर्क वितर्कों के द्वारा चेतन आत्मा को निर्जीव या जड़ मानते रहते हैं, और जो नाशवान् तथा जड़ पदार्थ हैं,

उन्हें सजीव मानकर, उन में नित्य और अविनाशी पदार्थों की भाँति श्रद्धा रखते हैं ॥ २ ॥ वे ही चित्त, और चरित्र से हीन पुरुष मनुष्य जीवन के एक मात्र सच्चे सम्बल, सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् ध्यान को तो कुपन्थ बतलाते हैं, और दुर्व्यसनादिक जितन भी सत्यानाशक पथ हैं, उन्हें मुक्ति का साधन कहते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे ही अज्ञानी और अधर्म पथ के पान्थी लोग, सच्चे साधुओं को तो ढोंगी बता कर उन की बेइज़्ज़ती करते रहते हैं; और जो नामधारी साधु पुरुष हैं, जो गुरु-पाट को कलङ्कित करनेवाले हैं जो पूरे पूरे अक्षर-शत्रु होते हैं; और जो दिन-रात धन, मान और नेत्र बाणों से विद्ध करनेवाली धनवती कामिनियों के रंग में रत रहते हैं; उन्हें अपने गुरु मान कर, उन के चरणों को नमन किया करते हैं ॥ ॥ ४ ॥ पाप-पङ्क में फँसे हुए ये पुरुष, उन लोगों का तो, जो कर्म-बन्धन को क्षय कर के मोक्ष को प्राप्त हुए, मानते नहीं हैं; किन्तु जो नारकीय कीड़े के समान रात—दिन कर्म में रत हैं, उन को मुक्ति का अधिकारी और पथी समझते हैं ॥ ५ ॥ ऐ संसारियो ! इस प्रकार के मिथ्यामतों को छोड़ना ही मनुष्य जीवन का सदुद्देश्य है । यदि मनुष्य समकित-रत्न को धारण ले, तो पल-भर में इस दुख-सागर—संसार से उस

का बेड़ा पार लग जाता है॥ ६ ॥ संवत् १६८४ विक्रमीय में जब मुनिराज का नागोर में पदार्पण हुआ, तब आपने मिथ्यात्व पर व्याख्यान अपने श्रीमुख से देते हुए, ये हितकारी वचन लोगों से कहे थे॥ ७ ॥

(१८)—(ब)—

(तर्जः-पूर्ववत्)

कहां लिखा तू दे बता, जालिम सजा नहीं पायगा। याद रख तू आकिबत की, हाथ मल पछतायगा ॥ टेक ॥ आप तो गुमराह है ही, फिर और को गुमराह क्यों ? ऐसे अजाबों से वहां पर, मुंह सिया हो जायगा ॥ १ ॥ बन बेखतर तकलीफ देता, है किसी है किसी मिसकीन को। बम्बूल का तू बीज बो कर, आम कैसे खायगा ॥२॥ रूह होगी कब्ज तेरी, जा पड़ेगा घोर में। बोल बन्दा है तू किस का, क्या नहीं बतलायगा ॥ ३ ॥ वां हुकूमत ना चलेगी, ना चलेगी हुज्जतें। ना इजार वां किसी का, रियाहि कैसे पायगा ॥४॥ जबानी जमा औ खर्च से काम वां चलता नहीं बन्दे। कहे चौथमल कर भलाई, तो बरी होजायगा ॥ ५ ॥

भावार्थ—जालिम! बता तो सही, यह कहां लिखा है, कि तू अपने किये का फल नहीं पावेगा! अरे! तू अपनी करणी के भोग की घड़ी को याद रख! नहीं तो

सिर फाड़ फाड़ कर तू पछतावेगा। तू खुद तो भूला हुआ है ही; फिर दूसरों का क्यों अपने साथ ले कर डुबोता है! अरे! ऐसे कामों से वहां तेरा मुँह काला किया जायगा! तुम्हे अपनी करणी का भाग पूरी तरह भोगना पड़ेगा ॥ १ ॥ तू ऐसा निधड़क हो कर क, किसी गरीब को तकलीफ देता है माना तेरे इन जुल्मी कामों को कोई दखनेवाला है ही नहीं! अरे! इस प्रकार मचान्ती कर के भी कभी किसने कोई सुख भोग पाया है? कदापि नहीं। जैसे, कोई बम्बूल का बिरवा रोप कर, आम कभी नहीं खा सकता ॥ २ ॥ ऐ जालिम! इन अत्याचारों क कारण म तेरी आत्मा जब एक दिन निकल जायेगी, तब तू घोराविचार नरक में आ पड़ेगा। ऐ बन्दे! उस समय जब तेरे से तेरी करणी का हिसाब पूछा जायगा, क्या तू नहीं घबरावेगा? ॥ ३ ॥ ऐ भाई! न तो वहां किसी की हुकूमत ही चलेगी; और न दलीलें ही। तथा न वहां किसी का कोई इजारा ही है इसलिये तू वहां रिहाई या छुटकारा कैसे पावेगा ॥ ४ ॥ ऐ बन्दे! वहां जबानी जमा-खर्च से कभी कोई काम नहीं चलता। चौथमल कहते हैं, कि अगर तू यहां भलाई करेगा तो वहां बरी हो जायगा। अर्थात् अन्तिम समय में आवागमन से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय, भलाई करना ही है।५।

~~~
~~~

उद्बोधन

(तर्जः-मेरे स्वामी बुलालो मुगत में मुझे)

कभी नेकी से दिल को हटाओ मती। बुरे कामों में जी को लगाओ मती ॥ टेक ॥ आये हो दुनियां बीच में, मत ऐश अन्दर रीजियो। आराम पाओ वहां सदा तुम, तदबीर ऐसी कीजिये। ऐसी वख्त अमोल गमाओ मती ॥ कभी० ॥ १ ॥ दिन चार का महमान याँ तू, इस का भी तुझको ध्यान है। दर्द दिल ये वासते, पैदा हुआ इनसान है। सख्त बन के किसी को सताओ मती ॥ कभी ॥ ॥ २ ॥ नशाखोरी, जिनाकारी, गुस्साबाजी छोड़दो। हर एक से मोहब्बत करो तुम, फूट से मुँह मोड़दो। जाहिल लोगों के झाँसे में आओ मती ॥ कभी० ॥ ३ ॥ कौन तेरे मादर फादर, कौन तेरे सजन हैं। धन-माल यहीं रह जायगा, तेरे लिए तो कफन है। ऐसा जान के पाप कमाओ मती ॥ कभी० ॥ ४ ॥ साल छियासी भुसावल, आया जो सेखेकार में। चौथमल उपदेश श्रोता-को दिया बाजार में। जाके होटलों में धर्म गमाओ मती ॥ कभी० ॥ ५ ॥

भावार्थ—नेकी से दिलको कभी मत हटाया करो; और बुरे कामों में दिल को कभी मत लगाओ। तुम दुनियां में इसलिए नहीं आयेहो, कि तुम यहां कौओं-कुत्तों की तरह विषय-भोगो में फँसे रहो। किन्तु तुम यहां इस-

लिये आये हो, यहां तुम उन उन तदबीरों को करने के लिये आये हो, जिस से तुम्हें परलोक में सुख की प्राप्ति हो। इसलिये ऐसे धनमाल और देव–दुर्लभ जीवन के एक एक पल मात्र तक को कभी व्यर्थ मत गमाओ, और बुरे कामों से दिल को दूर रखते हुए, हर घड़ी नेकी में लगे रहो ॥ १ ॥ ऐ बन्दे! तू यहां केवल चार दिन अर्थात् क्षणिक जीवन के लिये कौल करार कर के आया हुआ है। क्या, इस का भी तुमको कोई ध्यान है? ऐ भाई! इन्सान इसीलिये इस जगह में आया है, कि वह एक दूसरे के साथ हमदर्दी से रहे; प्रत्येक प्राणी के साथ दया का बर्ताव करे। इस लिये सख्त दिल बन कर कभी किसी प्राणी के दिल को भूल कर भी सताओ मत। और बुरे कामों से दूर रह कर, सदा नेकी किया करो ॥ २ ॥ नशाखोरी, रण्डीबाजी, और गुस्से बाजी को छोड़ दो। प्रत्येक प्राणी से मुहब्बत करो, और फूट को दिल से दूर निकाल कर के निकाल दो। मूर्खों और धूर्तों के धोखे से बचे रहो और बुरे कामों से दूर रह कर, सदा नेकी किया करो ।३। ऐ प्राणी! यहां कौन तो तेरे माता और पिता हैं; और कौन तेरे सजन सखा हैं! धन माल सब का सब, यहीं का यहीं धरा रह जायगा! तेरे लिये तो अन्त में कफन ही नसीब है! भाई! ऐसा जान कर के कभी पाप की ओर

पैर बढाओ मत ! और बुरे कामों से दूर रह कर सदा नेकी किया करो ॥ ४॥ संवत् १६८६ विक्रमीय में, जब मुनिराज श्री चौथमल जी का शुभागमन, सेखेकार (जिला भुसावल) में हुआ, उस समय बाजार में आप ने श्रोताओं को इस प्रकार उपदेश दिया था । ऐ भाइयो ! होटलों में जा कर धर्म को कभी खोओ मत; और बुरे कामों से सदा दूर रह कर, नेकी से नेह जुड़ाये रक्खो ॥ ५ ॥

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

❀ आदर्श मुनि ❀

इस ग्रन्थ के अन्दर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के किये हुवे सामाजिक धार्मिक, सदाचार, दयामयी आदि कई महत्व पूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। साथ ही में जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में अनेक विदेशी विद्वानों की सम्मतियों सहित व अन्य मत के ग्रन्थों के प्रमाणों से तुलना करते हुए अच्छा प्रकाश डाला गया है। पुस्तक अति उत्तम उपयोगी एवम् हर एक के पढ़ने योग्य है। इसकी तारीफ अनेक अखबार वालोंने और विद्वानों ने की है।

इस में राजा महाराजाओं के व सेठ साहुकारों के २० उम्दा आर्ट पेपर पर चित्र हैं पृष्ठ संख्या ८५० रशमी जिल्द होते हुए भी मूल्य लागत मात्र से कम रू० १।) और राज संस्करण का मूल्य रू० २) रक्खा गया है डाक खर्च अलग होगा।

पता:—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम।